

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176655

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,600.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H954.02
G975

Accession No. P.G. H6424

Author शुक्ल, मकरवल्लभ .

Title बाही दृश्य . 1926 .

This book should be returned on or before the date last marked below

मनोरंजन पुस्तक माला-४४

शाही दृश्य

अर्थात्

समरू और बेगम समरू
के जीवन-चरित्र

लेखक

मकखनलाल गुप्त गार्ग



प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।



प्रथम संस्करण]

सं० १९६३

[मूल्य १९]

ग० कृ० गुर्जर द्वारा श्री लक्ष्मी नारायण प्रेस,
काशी में मुद्रित ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	१—१०
१—मुग़लों का पतन ।	
मुग़ल बादशाहत, अधिष्ठाधिक पतन	१—४७
२—वाल्टर रैनहार्ड अथवा समरू का जीवन-चरित्र ।	
परिचय, जन्मभूमि, भारतागमन और नाम-परिवर्तन, प्राथमिक वृत्तान्त, अँगरेजों से बैर का कारण, अवध के नवाब शुजाउद्दौला का आश्रय, जाटों के राजा सूर्यमल का साहस, राजा जवाहरसिंह की विफल चढ़ाई, भरत- पुर में राव नवलसिंह के अधीन सेवा, शाही सेवा, मृत्यु, चरित्र विषयक विचार	४८—८०
३—समरू की बेगम, ज़ेबउल्निसा ।	
वक्तव्य, पैतृक गृह, आकृति और पति-सेवा, समरू की संपत्ति का उत्तराधिकार और रोमन कैथोलिक धर्म ग्रहण, जनरल पाउली, गुलाम कादिर के छक्के छुड़ाना, गोकुलगढ़ की लड़ाई, पिशाच-लीला, नष्ट देव की अष्ट पूजा, अतिशय कठोर दंड, पुनर्विवाह, हानिकारक छेड़- छाड़, चेतावनी, शान्ति-स्थापना, मराठों की सेवा, अँग- रेजी गवर्नमेन्ट से मित्रता, समरू की सन्तति, धार्मिक भावना, आचरण, अंतकाल, शासन-नीति, इमारत, राज्य का विस्तार, राजस्व, व्यय, सेना, उत्तराधिकारी, जॉर्ज थॉमस, भारतवासी अधिकारीगण, फुटकर बातें ...	८१—२४८

भूमिका

नित्यं शुद्धं निराकारं निराभासं निरंजनम् ।

नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्मनमाम्यहं ॥

प्रथम उस परम पूज्य सर्वव्यापक सर्वाधार सर्वपालक और सर्वपोषक परमेश्वर को कोटिशः धन्यवाद है जो अपने पतित-पावन नाम की सार्थकता प्रकट करने के लिये अपनी असीम दया द्वारा हम जैसे निर्बुद्धि और तुच्छ जीवों के निकृष्ट कार्यों पर दृष्टि न देकर अपने अपार अनुग्रह से सदैव हमारा निर्वाह करता रहता है । मुझ अल्पज्ञ की सामर्थ्य कहाँ कि उस सर्व-शक्तिमान् विश्वपति के गुणानुवाद गायन करने का कुछ साहस कर सकूँ !

फिर भी उसका यशोगान कर अपने कथनीय विषय पर आता हूँ ।

अब से प्रायः तैंतालीस चौवालीस वर्ष पूर्व जब मैं अपनी जन्मभूमि कस्बा टप्पल जिला अलीगढ़ में पढ़ा करता था, तब मैं अनेक वृद्ध मनुष्यों के मुख से बहुधा समरू की बेगम की कथा सुना करता था । मुझे उस समय अधिक बोध न था; इसलिये उनके कथन को तो चाव से सुनता रहता था, परन्तु उसका अर्थ नहीं समझता था । किन्तु उसके २० या २१ वर्ष पश्चात् सन् १९०० में जब मैं अलवर की जय-पलटन के साथ बाक्सर युद्ध के अवसर पर चीन देश को गया, तो वहाँ टिन-सिन नगर में एक दिन अकस्मात् एक सैनिक अफसर के पास मैंने एक ऐसी अँगरेजी पुस्तक देखी जिसमें बेगम समरू का

संक्षिप्त वर्णन था । उसका मेरी दृष्टि में आना था कि मुझे अपने बचपन का समय स्मरण हो आया और उसका समस्त दृश्य मेरी आँखों के आगे फिर गया । मेरे चित्त पर उसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मैंने उसी समय से यह धारणा कर ली कि बेगम संबंधी समाचारों की खोज करूँगा; और यदि हो सका तो मैं उसका जीवन चरित्र भी लिखूँगा ।

परन्तु बहुत काल तक मुझे इस विषय की कोई बात नहीं मिली । पर ज्यों ज्यों समय व्यतीत होने लगा, मेरी इच्छा प्रबल और दृढ़ होती गई । हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थकार और हिंदी समाचारपत्रों के अनुभवी सम्पादक पंडित नन्दकुमार देव शर्मा से, जो कुछ वर्षों तक अलवर राज्य के इतिहास कार्यालय में रहे थे, मेरा परिचय हो गया । इस संबंध में मैंने उनसे प्रार्थना की । इस पर उन्होंने अपनी हस्तलिखित समरू और बेगम समरू की जीवनियों की प्रतियाँ, जिनको मिस्टर थामस बेल साहब ने अँगरेजी भाषा में लिखा था और जो “ओरिएण्टल बायो-ग्राफिकल डिक्शनरी” (Oriental Biographical Dictionary) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई थीं, कृपापूर्वक मुझे दे दीं । तथा उन्होंने महानुभाव ने मुझे बतलाया कि समरू और बेगम समरू का वृत्तान्त मिस्टर हेनरी जॉर्ज कीनी साहब कृत अँगरेजी पुस्तक “मुगल एम्पायर” (Moghal Empire by Henry George Keene), अंतिम अंक उर्दू रिसाला “अदीब” जो सैयद अकबर अली फीरोजाबादी के सम्पादकत्व में मुफीद-इ-आम प्रेस आगरे में छपता था और पादरी कीगन साहब कृत तथा पादरी क्रिस्टोफर साहब विविद्धित अँगरेजी पोथी “सरघना

और वहाँ की बेगम" ("Sardhana and its Begum" by Rev. W. Keegan D. D., and Enlarged by Rev. Fr. Christopher, O. C.) नामक में भी मिलेगा । मुगल एम्पायर ग्रंथ में अवश्य इन दंपति के विषय में जहाँ तहाँ उल्लेख है, किन्तु वह क्रमबद्ध नहीं है । इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि "हाल-इ-बेगम साहिबा" नाम का बेगम समरू का जीवन चरित्र फारसी भाषा में उसकी मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ था । परन्तु अब यह पोथी कहीं नहीं मिलती, यहाँ तक कि वह अब स्वर्गवासी खान बहादुर मौलवी खुदाबख्श साहब के प्रसिद्ध फारसी पुस्तकालय पटना नगर में और बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के पुस्तकालय में भी नहीं है । इसी प्रकार रिसाला अदीब का वह अंक भी, जिसमें बेगम का चरित्र प्रकाशित हुआ है, बहुतेरा ढुँढ़वाया; परन्तु कहीं प्राप्त न हो सका । सरधना नामक पुस्तक भी बड़ी कठिनाई से कई वर्ष की लिखा पढ़ी के उपरान्त मेरे प्रिय मित्र लाला रामदयालु जी विद्यार्थी मुख्तार और रिसाला "वैश्य हितकारी" मेरठ के सम्पादक द्वारा प्राप्त हुई ।

इन पुस्तकों के आ जाने पर भी मेरी यह लालसा बनी रही कि फारसी भाषा की पोथियों अथवा लेखों में बेगम संबंधी जो कुछ लिखा गया है, उसकी सहायता भी ली जाय; क्योंकि बेगम के शासन काल में फारसी भाषा ही प्रचलित थी । परन्तु इसका प्रचार अब नहीं रहा है और इसके ग्रंथ भी लुप्त हो गए हैं, जो बड़ी खोज करने से कठिनातापूर्वक कहीं कहीं मिलते हैं । अलवर नगर में हकीम मुहम्मद उमर साहब फसीह ने मुसल्मानी काल

के अगणित व्यक्तियों और इमारतों आदि का नाना प्रकार का बहुमूल्य विश्वसनीय वृत्तान्त हस्त लिखित और मुद्रित पुस्तकों, शाही फरमानों, पट्टों और शिलालेखों के रूप में संग्रह किया है और अब भी वे निरंतर करते रहते हैं। उनसे बेगम के विषय के समाचार देने के निमित्त मैंने प्रार्थना की, जिस पर उन्होंने अपने विशाल लेख भंडार से फारसी और उर्दू के कुछ फुटकर वाक्य इस संबंध के नकल करके मुझे प्रदान किए। इनके अतिरिक्त मौ० मुहम्मद सईद सब ओवरसियर और उनके बुजुर्ग पिता मौलवी अब्दुल वाहिद साहब फारूकी थानवी ने कृपया अपने मित्रों को अनेक पत्र लिखे, जिनके उत्तर में केवल लाला चिरंजीलाल नायब रजिस्ट्रार कानूनगो तहसील बुढ़ाना जिला मुजफ्फरनगर ने कस्बा बुढ़ाना से, जो अंगरेजी शासन में आने के पूर्व बेगम के राज्य के अंतर्गत था, स्थानीय अनुसंधान और अन्वेषण करके कुछ समाचार डाक द्वारा मेरे पास भेजे।

इस सामग्री के हस्तगत होने पर भी मेरा हार्दिक निश्चय है कि अभी बेगम संबंधी बहुत सी बातें शेष रह गई हैं, जो मुझे प्राप्त नहीं हुई हैं; किंतु अपनी वर्तमान स्थिति देखते हुए मुझे आशा नहीं होती कि मुझे और अधिक सामग्री प्राप्त हो सके। अतः विशेष प्रतीक्षा करना व्यर्थ है; क्योंकि पहले ही मेरी इस खोज में कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इसी संगृहीत सामग्री के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की गई है। सब से पहले मेरे मन में इसका नाम रखने का विचार उत्पन्न हुआ। सब बातों को भली भाँति सोच समझकर मैंने इसका नाम “शाही दृश्य” रखना उचित समझा। इस

नामकरण का मुख्य कारण यह है कि इस पुस्तक में जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है, उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विशेषतः उस समय से संबंध है जो शाही जमाना कहलाता है।

इस शाही दृश्य नामक पुस्तक को तीन खंडों में विभक्त किया गया है।

प्रथम खंड में मुगल साम्राज्य के अधःपतन का दिग्दर्शन है, जो “मुगल एम्पायर” नामक पुस्तक से समरू के चरित्र के प्रारंभ तक कराया गया है। मुगल अधःपतन का उल्लेख करने का यह कारण है कि समरू दम्पति का जीवन मुगल अधःपतन काल में गुजरा है—उनके कार्य उस युग के कार्य हैं—जैसा कि उनके मुख्य चरित्र-लेखक पादरी कीगन साहब ने अपनी सरधना नाम की पोथी में प्रकट किया है—

“ये समाचार अनेक परंपरागत, लिखित और ऐतिहासिक आधारों से प्राप्त किए गए हैं। इनका उद्देश्य यह है कि उन दो महानुभावों की सच्ची सच्ची कथा प्रकट की जाय, जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तरीय भारत में उन कष्टों में, जो मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के कारण उत्पन्न हुए, अपना बड़ा चमत्कार दिखाया।” इसलिये मुझे इस वर्णन का सब से पूर्व लिखना उचित और आवश्यक प्रतीत हुआ। इसमें भारतीय स्वाधीनता के नष्ट होने के समय की अनेक प्रसिद्ध और महत्वशाली घटनाओं का उल्लेख है, जिनको पढ़कर वर्तमान शान्तिमय और सुखदायक युग के निरुपाय, पुरुषार्थहीन और अपाहज भारत-वासियों के मन में, जिनका जीवन अधिकतर प्रमाद, सुगम कार्यों, भोग विलास और

नाना प्रकार की सुविधाओं में रात दिन व्यतीत होता है, अत्यन्त लोभ उत्पन्न होगा। निस्संदेह भारत के इतिहास में वह घोर अंधकार और दारुण दुःख का समय गिना जाता है। जिस समय चारों ओर अराजकता, अन्याय, अत्याचार और कपट का राज्य था, उस समय मनुष्यों के साथ पशुओं की भाँति व्यवहार किया जाता था। प्रजा के कष्टों की सीमा पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। किन्तु इतिहास-वेत्ता जानते हैं कि स्वतंत्र और जीवित जातियों के जीवन में कभी कभी ऐसा कठोर युग भी आता है।

द्वितीय खंड में समरू का जीवन चरित्र है। इसके लिखने में “मुगल एम्पायर” के अतिरिक्त “सरधना”, “आरिपण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी” और मुनशी ज्वालासहाय कृत चर्दू इतिहास “विकाये राजपूताना” से भी सहायता ली गई है। समरू एक चतुर सैनिक था और अपने इसी गुण के कारण वह भारतवर्ष के इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।

तृतीय खंड में बेगम समरू के जीवन की कथा है जिसके लिखने का मेरा मूल उद्देश्य था। इसकी रचना में पुस्तक “विकाये राजपूताना” को छोड़ उस समस्त सामग्री का उपयोग किया गया है, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

अनेक अवगुण और दूषण होने पर भी भारत के प्राचीन ऐतिहासिक नायकों में वे उच्च उत्कृष्ट गुण विद्यमान थे, जिनके कारण भारतवर्ष की गिनती स्वाधीन देशों में होती थी और जिनका पीछे से उनकी संतानों में शनैः शनैः हास होकर अभाव सा हो गया है। उन पूर्वजों के जीवन का इतिहास इस घाटे की पूर्ति करने के निमित्त बड़ी प्रबल शिक्षा देता है।

अब मुझे यह और निवेदन करना शेष रह गया है कि मैं चर्दू-ख्वाँ हूँ। हिन्दी का तो मुझे इतना अल्प ज्ञान है जो न होने के समान है। अवश्य अपनी मातृ भाषा हिन्दी के लिये मेरे हृदय में बहुत श्रद्धा और प्रेम हो गया है। मुझे अपनी इस वृद्धावस्था में अनेक कार्यों से अवकाश और अवसर नहीं जो नियमपूर्वक अब इसे पढ़ूँ; परंतु यह अवश्य चाहता हूँ कि यथा सम्भव इसकी चर्चा करूँ। अतः मुझे एक यही उपाय दिखाई देता है कि अन्य भाषाओं की सहायता से हिन्दी भाषा में पुस्तकें लिखकर उसका ज्ञान प्राप्त करूँ। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है, जो प्रत्यक्ष में प्रचलित प्रथा के नितान्त विपरीत और अति कठिन है; किन्तु अन्य प्रकार से मेरे लिये इस कार्य का पूर्ण करना सम्भव ही नहीं है। ऐसी स्थिति में इस पुस्तक की रचना में नाना प्रकार की अशुद्धियों और त्रुटियों का होना एक साधारण बात है। प्रथम और द्वितीय खंडों को मैंने अपने नातेदार चिरंजीव जयनारायण (ज्येष्ठ पुत्र लाला गणेशीलाल जो तहसीलदार अलवर) और तृतीय खंड को श्रीमान पंडित श्रीमन्नारायण जी शास्त्री को दिखाकर कुछ शुद्ध करा लिया है; तो भी इसकी उस न्यूनता की पूर्ति नहीं हुई जो वास्तव में मूल लेखक के भाषा के विद्वान् और मर्मज्ञ होने के कारण ग्रन्थ में पैदा हो सकती थी; क्योंकि सुधारक महाशयों ने तो केवल लेख की वे साधारण और मोटी मोटी भूलें ठीक कर दी हैं जो वे कर सकते थे। अतः विद्वान् पाठकगण मुझे इस विषय में क्षमा करें।

अंत में मैं उनसज्जनों को अपना सत्य और हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने किसी न किसी भौति मुझे इस पुस्तक की रचना में सहायता दी है, विशेष कर पंडित नन्दकुमार देव जी शर्मा का मैं बहुत आभारी हूँ, जो मुझे इसके लिखने के लिये निरंतर उत्तेजित और उत्साहित करते रहे हैं। अपनी अयोग्यता के कारण कदाचित् ही मैं इसको हिन्दी में लिखने का साहस और प्रयत्न करता, यदि वे मुझे सदैव इसका स्मरण न दिलाते रहते।

अलवर (राजपूताना)	}	निवेदक
अषाढ़ क० १२ सं० १९८०		मकखनलाल गुप्त गुरु।

पुनश्च—उपर्युक्त भूमिका की मिति के पढ़न से विदित होगा कि यह पोथी संवत् १९७९-८० में लिखी जाकर प्रकाशानाथ काशी नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यालय में भेज दी गई थी। तदनन्तर इस बीच में निम्नलिखित पुस्तकें और मासिक पत्र इस विषय के मेरे देखने में आए—तीन अंग्रेजी निबन्ध जो महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी लिखित और कलकत्ते के प्रसिद्ध और प्रभावशाली अंग्रेजी मासिक पत्र “माडर्न रिव्यू” की अप्रैल, दिसम्बर सम् १९२४ तथा सितम्बर सन् १९२५ की संख्याओं में थे; और एक हिन्दी लेख पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० एल० टी० का लिखा आजकल हिन्दी

ठुटियाँ रह गई थी और इसकी भाषा बहुत अधिक शिथिल थी। छपने के समय मैंने उसे बहुत परिश्रम करके, जहाँ तक हो सका है, ठीक करने का प्रयत्न किया है।

रामचन्द्र वर्मा, प्रका० मंत्री।

भाषा की विख्यात मासिक पत्रिका 'माधुसी' के श्रावण तुलसी संवत् ३०२ के अंक में प्रकाशित हुआ है; तथा फारसी का इतिहास "मिप्ताहुत्तवारीख" । अब जब कि यह पुस्तक छपने के लिये जाने लगी, तो मैंगाकर इस प्रकार इसमें घटा बढ़ा दिया है—

चतुर्वेदी जी के लेख और मिप्ताहुत्तवारीख से तो केवल इनी गिनी थोड़ी सी बातें लेकर समरू के जीवन चरित्र में कहीं कहीं बढ़ा दी गई हैं। किन्तु बनर्जी महोदय के तीनों ही लेख अतीव महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य हैं; क्योंकि वे बड़ी खोज और जाँच के पश्चात् प्रकाशित किए गए हैं। उनमें बेगम समरू के उत्तर काल के बहुत से नवीन और अपूर्व समाचार दिए गए हैं; अतः एव उनमें से अनेक बातें लेकर मैंने अपनी इस पुस्तक के पूर्व-लिखित अध्यायों में जहाँ तहाँ प्रविष्ट कर दी हैं; एवं "राज्य विस्तार" शीर्षक अध्याय को नवीन सामग्री लेकर नए सिरे से फिर लिखा है। और पाँच अध्याय "राजस्व, चित्र, व्यय, सेना और उत्तराधिकारी" नए लिखकर सम्मिलित कर दिए गए हैं। "चित्र" शीर्षक में अवश्य मिश्रित सामग्री का. (अर्थात् कुछ वह वृत्तान्त जो पहले "इमारत" नामक अध्याय के अन्तर्गत था, वहाँ से निकालकर और कुछ नवीन प्राप्त समाचार का) उपयोग किया है। शेष चार अध्याय तो एक दो बातों के अतिरिक्त बिलकुल उक्त बनर्जी महाशय के लेखों के आधार पर ही रचे गए हैं।

बेगम समरू को इस असार संसार से गए हुए ९० वर्ष व्यतीत हो चुके। उसने ९० वर्ष की लम्बी आयु पाई थी जिसके अन्तर्गत ५९ वर्ष के दीर्घ काल पर्यन्त शासन

किया, जिसका यह स्पष्ट प्रभाव पड़ा कि उत्तरीय भारत और उसके निकटस्थ राजपूताने में इस समय भी जो जनता है, उसमें से ५०-६० वर्ष के वय के जो मनुष्य विद्यमान हैं, उनमें से लगभग ६० आदमी प्रति सैकड़े ऐसे हैं जो उसके नाम से परिचित हैं, चाहे उसका हाल उनमें विरले ही जानते हों।

अतएव मेरा यह कहना कदाचित् अनुचित न होगा कि इस पुस्तक में उन समाचारों का अधिकतर उल्लेख हो गया है जो पश्चिमी इतिहास-लेखकों ने उसके संबंध में लिखी हैं।

अलवर (राजपूताना)
मार्गशीर्ष कृ० ९ सं० १९८२

}

निवेदक
मकखनलाल गुप्त गुरु ।

सूचना

इस पुस्तक के आरंभ में भूल से “पहला भाग” छप गया है । वास्तव में यह पुस्तक दो भागों में नहीं, बल्कि एक ही में समाप्त हुई है । इसका कोई दूसरा भाग नहीं है ।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी ।

शाही दृश्य



पहला भाग



(१) मुगलों का पतन

मुगल बादशाहत

बादशाही ज़माने में हिंदुस्तान के निम्नलिखित सूबे कहलाते थे—

सरहिंद, राजपूताना, गुजरात, मालवा, बियाना, अवध, कट्हर (जिसको पीछे रूहेलखंड कहने लगे) और अन्तर्वेद अर्थात् दुआब ।

दक्षिण, पंजाब और काबुल को इनमें इसलिये नहीं गिना गया कि वे सर्वदा और सामान्यतया राज्य में सम्मिलित नहीं रहे । दक्षिण में औरंगज़ेब के शासन के अंत के लगभग स्वाधीन मुसलमानों रियासतें बनी रहीं । काबुल कभी ईरानियों के हाथ में आ जाता था, कभी निकल जाता था; और लाहौर से परे का पंजाब तो एक प्रकार से युद्ध-स्थल सा ही बना हुआ था, जहाँ अफगान और सिख सदैव बादशाहत के विरुद्ध तथा परस्पर लड़ा करते थे ।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा भी पहले बादशाही इलाक़े में थे; पर फिर वे भी उससे पृथक् हो गए ।

इनको मिलाकर बारह सूबे ये हैं—

(१) बंगाल, (२) बिहार, (३) उड़ीसा, (४) सरहिंद, (५) दिल्ली, (६) अवध, (७) इलाहाबाद, (८) मेवाड़, (९) मारवाड़, (१०) मालवा, (११) बियाना और (१२) गुजरात । ज़िले सरकार के नाम से, तहसील दस्तूर के नाम से और क़स्बे परगने के नाम से प्रसिद्ध थे ।

सूबे दिल्ली में ये ये सरकारें अर्थात् ज़िले थे—दिल्ली, हिसार, रेवाड़ी, सहारनपुर, सम्भल, बदायूँ, कोयल (अली-गढ़), सहार और निजारा ।

इसी एक सूबे के अनुसार और दूसरे सूबों की लम्बाई और चौड़ाई का अनुमान कर लिया जाय ।

किसानों की आवश्यकीय वस्तुएँ मौरूसी साहूकार देते थे और इसके बदले में वे उनके खड़े खेत ले लेते थे । कस्बों की आबादी में प्रधानतया किसान, साहूकार, कारीगर और अनेक कलाकौशल जाननेवाले होते थे । कोई कोई साहूकार तो बड़े ही धनाढ्य होते थे; और उन दिनों चौबीस रुपए सैकड़े सालाना व्याज अधिक नहीं समझा जाता था ।

पहले पहल भारत में ग़ज़नी और गोरी मुसलमानों ने चढ़ाई की । पुनः तैमूर लंग का भयानक आक्रमण हुआ । तदनंतर अफगानों का आक्रमण हुआ जिससे उनके घराने की

प्रबल नींव जम गई, जिसने उत्तरीय प्रांतों की बस्ती पर बड़ा प्रभाव डाला। अंत में तैमूर के वंशज बाबर ने, जो एक चतुर और तेजस्वी पुरुष था, तूरानी लोगों को जो मुग़ल कहलाते थे, अपने साथ लाकर जिहाद (मुसलमानी धर्मयुद्ध) ठाना। उसके घराने ने अफगानों से दीर्घ काल तक विषम युद्ध करके उसके पौत्र अकबर की अध्यक्षता में हिंदुस्तान के तख्त पर अपना अधिकार जमा लिया। अकबर ने पहले यह प्रशंसनीय कार्य किया कि 'जज़िया' कर जो उससे पूर्व के मुसलमान बादशाहों ने हिंदुओं पर लगा दिया था, बिलकुल उठा दिया। वह दयावान, उदार और वीर था। वह सदैव पक्षपात-रहित होकर सत्यता की खोज करता रहता था। वह अपने मित्रों के साथ बड़े प्रेम से पेश आता था। अकबर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र जहाँगीर बादशाह हुआ जो नूरजहाँ का प्रेमिक था। वह बड़ा न्यायी था। उसने ऐसी सुगम रीति स्थापित की कि प्रत्येक फरियादी उस तक पहुँच सकता था। धार्मिक उदारता में भी वह अपने योग्य पिता का पदगामी रहा। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहाँ दया और न्याय के लिये अब तक भारत में प्रसिद्ध है। अपने पिता के समान वह भी बड़ा प्रेमिक था; और उसने अपने इस स्नेह को जगत-विख्यात आगरे का ताजमहल नामक रौज़ा बनाकर चिरस्थायी कर दिया, जो इस गुण के अतिरिक्त उसकी कला-विज्ञान संरक्षकता का भी प्रत्यक्ष

द्योतक है। वास्तव में यह बादशाह महान् शिल्पकार हुआ है। दिल्ली की मसजिद और महल, जिनको इसने स्वयं निर्माण कराया, सैकड़ों वर्षों का धूप-पानी झेलकर भी अब तक विद्यमान हैं और संसार भर की अपूर्व अनुपम सुन्दरता तथा मनोहरता में श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

शाहजहाँ का पुत्र औरंगज़ेब, जिसने आलमग़ोर की उपाधि धारण की थी, अपने उच्च वंश के सिंहासन पर भारतवर्ष का बादशाह बनकर बैठा। उसमें बड़े बड़े उत्तम गुण थे। युद्ध में वह जैसा कुशल और वीर था, वैसा ही वह राजनीति में भी बड़ा निपुण और मर्मज्ञ था। उसने फाँसी के कड़े दंड की प्रथा बन्द करा दी। खेती के सम्बन्ध में भी वह ज्ञान रखता था; उसने उसकी उन्नति की; अगणित बड़ी और छोटी पाठ-शालाएँ स्थापित कीं; अच्छी अच्छी सड़कें और पुल बनवाए। वह अपनी बाल्यावस्था से ही समस्त सार्वजनिक कार्यों की दिनचर्या निरंतर लिखता था; वह अदालत में स्वयं बैठकर सब के सम्मुख न्याय करता था; और दूर से दूर प्रदेशों के हाकिमों के दुष्कर्मों का भी वह कभी पक्षपात नहीं करता था। हिंदुओं से उसे बड़ी घृणा थी। 'जज़िया' कर, जो उसके प्रपितामह अकबर ने उठा दिया था, उसने फिर लगा दिया।

एक के पीछे दूसरे ये मुग़ल बादशाह अनेक गुणों और लक्षणों में बढ़ चढ़कर होते रहे, जो बात कि पुश्तैनी बाद-

शाहों में बहुत ही कम होती है। इनमें इन असाधारण और उत्तम गुणों के निरंतर होते रहने के दो कारण हुए। पहला कारण यह था कि इन्होंने हिंदू राजकुमारियों से विवाह किया, जिससे इनका वंश नित्य नवीन और ताज़ा बनता और सुधरता गया; क्योंकि परस्पर नए रक्त के मिलने से इनके पुराने घराने के दूषण न बढ़ सके, बल्कि नष्ट होते गए। जिन परिवारों के अंतर्गत स्त्री पुरुष का आपस में विवाह हो जाता है, उनके भीतर विविध भाँति के वंशीय संक्रामक रोग तथा दुर्गुण उत्तरोत्तर बढ़ने और फैलते जाते हैं।

दूसरा कारण यह था कि बादशाह के मरने के पीछे शाही तख्त की प्राप्ति के निमित्त शाहज़ादों के बीच में युद्ध छिड़ जाता था; इसलिये उनमें जो सब से अधिक योग्य और बलिष्ठ होता था, वही राज्य का अधिकारी बनता था।

जब तक मुग़ल घराने का सितारा चमकता रहा, ये दो कारण उसकी वृद्धि और उन्नति करते रहे। पीछे जब उसके पतन का प्रारंभ हुआ, तो वे ही उसकी जड़ खोखली करने लगे।

पहले मुग़ल बादशाहों ने विवाह करके हिंदुओं के साथ जो नाता और मेल जोल पैदा किया था, पीछे से औरंगज़ेब के उनके साथ कठोर और असह्य व्यवहार करने के कारण वह सब नष्ट हो गया। हिंदू राजा महाराज भी, जो केवल शकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की ओर से स्नेह प्रकट होने से स्नेह की फाँस में बंध गए थे, अपनी इस मोह निद्रा से जागे

और फिर खिंचने लगे; यहाँ तक कि धीरे धीरे बिल्कुल स्वाधीन हो गए ।

जब जब बादशाह का देहांत हुआ, सलतनत के लिये उसके पुत्रों के बीच में रार ठनी और हिंदू नरेशों को किसी न किसी ओर साथ देने का अवसर प्राप्त हुआ । होते होते इसका फल यह हुआ कि प्रत्येक राज्याभिलाषी शाहज़ादा प्रभावशाली भूमिपतियों को अधिक संख्या में अपने विपक्षियों को ओर से उखाड़ उखाड़कर अपनी ओर मिलाकर उनसे शस्त्र उठवाने का प्रयत्न करता था । और इसके लिये फिर उसे उनको उनका अभीष्ट पारितोषक देना पड़ता था, जिसका यह शोचनीय परिणाम हुआ कि वह साम्राज्य, जो उनके पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े संकटों और उपायों से स्थापित किया था, उनकी मूर्खता और असावधानी से कट कटकर पृथक् पृथक् टुकड़ों में विभक्त हो गया ।

औरंगज़ेब जिस समय अपने बाप को कैद ❀ और अपने

* औरंगज़ेब कैद में भी अपने पूज्य पिता और पूर्व बादशाह के प्रति इतना कठोर और निष्ठुर व्यवहार करता था कि एक बार शाहजहाँ ने अति दुःख पाकर उसके पास निम्नलिखित दो शेर लिखकर भेजे थे—

آفرین باد هلدوان هوباب ❀ مرده را می دهند دایم آب ❀
ای پسر تو عجب مسلمانی ❀ زنده جانم بآب ترسانی ❀

अर्थात् हिन्दुओं को बारम्बार शाबाशी दो जो सदैव अपने मृतक पितरों की पानी देते रहते हैं । हे पुत्र, तू अनोखा मुसलमान है, जो मुझ जीते हुए की जानकी पानी तक के लिये तरसाता है ।

भाइयों ❀ को परास्त करके और मरवा कर बादशाह हुआ था, उस समय वह हिन्दुस्तान के समस्त बादशाहों से अधिक शक्तिशाली और ऐसा योग्य शासक और प्रबंधक था, जैसा पहले और कोई नहीं हुआ था। उसके राज्य-काल में तैमूर का घराना परम उन्नत दशा को पहुँच गया। काबुल और कन्धार के दुर्दांत पठान अल्प काल के लिये वश में आ गए थे; ईरान के शाह ने मित्रता कर ली थी; गोलकुंडा और बीजापुर की प्राचीन मुसलमान शक्तियाँ नष्ट भ्रष्ट हो गई थीं; और उनको शाही हकूमत के अधीन होना पड़ा था। राजपूत जो अब तक अजेय रहे थे, पराजित हुए। मरहटों से भी, जो अपना बल पश्चिमी घाटों पर जमाए हुए पड़े थे, यह आशा नहीं होती थी कि वे महान् मुगल ताक़त का देर तक मुकाबला कर सकेंगे। लेकिन इतने पर

* औरंगजेब ने अपने ज्येष्ठ भ्राता और वली अहद दाराशिकोह को पकड़वाकर पहले तो बड़े बड़े कष्ट दिए और उसको बहुत दुर्गति की। पुनः यह बहाना ढूँढ़कर कि उसने अपने इस कथन में कुफ़्र और इस्लाम को समान बताया है, उसको मरवा डालने का फ़त्वा दिला दिया—

کفر و اسلام در رهش یویان ❀ وحدو لالشریک له گویان ❀
अर्थात् कुफ़्र और इस्लाम उसी (ईश्वर) के मार्ग पर चलते हैं और “वह एक है, वह अनन्य है” इस प्रकार उसके गुण गायन करते हैं। पर यह शेर जैसा कि पुस्तक “दरबार अकबरी” से विदित है, अबुलफ़ज़ल ने उस धर्मशाला के शिलालेख में अंकित किया था, जो सम्राट् अकबर ने हिन्दू मुसलमान यात्रियों के विश्रामार्थ कशमीर में बनवाई थी।

इन्हीं के साथ क्या, उसने अपने अन्य सब भाइयों और भतीजों को भी इसी प्रकार एक एक करके मरवा डाला था।

भी उसके दीर्घ शासन के समाप्त होने से पूर्व ही उस बल का तथा उस गौरव का हास हो गया था और कोरा दिखावा रह गया था। औरंगज़ेब की मृत्यु के समय मुग़ल साम्राज्य की शोचनीय दशा उस जर्जर छुई मुई लाश के सदृश थी, जो ऊपर से वस्त्र, आभूषण, मुकुट पहने और शस्त्र धारण किए हुए हो, परंतु तनिक पवन के झकोरे अथवा हाथ के लगाने से ही चूर चूर हो जाय। इससे यह उपयोगी शिक्षा मिलती है कि देशों पर शासन का अतिशय जोर जमाना भी हानिकारक होता है। यदि औरंगज़ेब अपनी मूर्ति और अपने मत का शह-ज़ादों के महलों, पुजारियों के मंदिरों, बाजार के सिक्कों और प्रत्येक मनुष्य के मन और चित्त पर ठप्पा लगाने की इतनी चिंता न करता, तो उसको भी शासन करने में वैसी ही सफलता प्राप्त होती, जैसी उसके स्वेच्छाचारी और विलासी पूर्वाधिकारियों को हुई थी। यह जो उसके स्वभाव में कट्टरपन था, वही उसकी अपनी प्रकृति का निज गुण था। उसका उसके पूर्वजों से किञ्चित् भी संबंध न था। उसने 'मज़हबी तअस्सुब्' में मदांघ होकर हिंदुओं के साथ जो कठोर व्यवहार किए, वे अकबर और जहाँगीर की नीति के नितान्त प्रतिकूल थे।

इस घराने का यह नियम था कि पहले से राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया जाता था। तब फिर बादशाह के मरने पर हिंदुस्तान जैसे विशाल देश के प्राप्त करने की उत्कंठा किस शहज़ादे को न होती, जिसकी आय तीस करोड़ चालीस

लाख रुपए थी और जिसकी सुदृढ़ सेना पाँच लाख पराक्रमी वीरों से सुसज्जित थी !

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चान् बादशाहत के लिये उसके तीनों पुत्रों में युद्ध हुआ, जिनमें सब से बड़ा विजयी हुआ और वह बहादुर शाह की उपाधि धारण करके 'मसनद् शाही' पर आरूढ़ हुआ। परन्तु उसका शासन अधिक समय तक नहीं रहा। सैयद, जिन पर विशेष कर औरंगज़ेब की सदिग्ध दृष्टि रहती थी; दक्षिण पश्चिम के मरहटे, जिनको कुछ दे लेकर थोड़े समय के लिये टाल दिया गया था; राजपूत संघ, जिनके साथ शीघ्रतापूर्वक संधि कर ली गई थी; ब्रिटेन के साहसी व्यापारी, जिन्होंने बिना आज्ञा प्राप्त किए ही गङ्गा के मुहाने पर फोर्ट विलियम के इलाके की स्थापना कर ली थी; चीन किलीच खाँ, जो पीछे से दक्षिण के निज़ाम घराने का जन्मदाता हुआ; और ईरानी वणिक् सम्राट खाँ, जो लखनऊ के नवाबी कुल का संस्थापक था; आदि आदि सब लोगों ने, जो औरंगज़ेब के सामने दबे पड़े थे, अब अपना अपना सिर उठाया। किंतु बहादुर शाह ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह तो समस्त शाही बल का संग्रह करके सिखों का दमन करने में लगा हुआ था। इसी प्रयत्न में अपने पिता की मृत्यु के ठीक पाँच वर्ष पीछे लाहौर में उसका प्राण पखेरू उड़ गया।

कुल के प्रथानुसार शाहजादों में लड़ाई हुई। तीन परास्त शहजादों का बध किया गया, और सब से बड़े पुत्र मिरजा

मौजउद्दौन के अनुचरों ने अपने स्वामी को तख्त शाही पर बैठा दिया; और उसके सब भाई बंधुओं की, जो उनके हाथ पड़े, बिना विचार अथवा न्याय किए हत्या कर डाली ।

कुछ मास ही व्यतीत होने पाए थे कि बादशाहन के एक और दावेदार ने, जो जीता बच गया था, बिहार और इलाहाबाद के शासक सैयदों की सहायता पाकर निर्बल बादशाह को पराजित करके, उसका काम तमाम किया; और चचा के स्थान में विजयी भतीजा 'फर्रुख सिय्यर' के लक़ब से बादशाह बन बैठा ।

इन वीर और साहसी सैयदों ने दूसरा कार्य यह किया कि राजपूतों पर चढ़ाई की; और उनके अध्यक्ष महाराज अजीत-सिंह से सदा की भाँति भू-कर देने और अपनी पुत्री का बाद-शाह के साथ विवाह करने के लिये अनुरोध किया । दोनों में परस्पर संधि हो जाने पर यह निश्चय हुआ कि बादशाह का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण विवाह नहीं हो सकता । इसी समय के लगभग सन् १७१६ ई० में यह प्रसिद्ध घटना घटी कि कलकत्ते के अँगरेज़ व्यापारियों की ओर से उस समय एक प्रतिनिधि मंडली आई, जिसमें जेबरईल हेमिलटन (Scottish Surgeon, Gabriel Hamilton) नाम का एक जर्ह था । बादशाह ने उससे अपना इलाज कराया और उसके हाथ से आरोग्यता लाभ करने पर राजपूत राजकुमारी के साथ बादशाह का विवाह हो गया । इस विवाह से उसे इतना हर्ष

हुआ कि उस उन्मत्त दशा में उसने अपने आरोग्यकर्ता डाकूर हेमिलटन से मनमाना पारितोषक माँगने के लिये कहा। उस निःस्वार्थी मनुष्य ने अपने लिये तो कुछ नहीं माँगा, परंतु अँगरेज़ व्यापारियों को समस्त देश में बेरोक टोक वाणिज्य करने और अपनी कोठियाँ बनाने का स्वत्व दिए जाने की आज्ञा माँगी, जिस से ब्रिटिश शक्ति की नींव केवल बंगाल में ही नहीं जम गई, वरन् अँगरेज़ों को दूसरे प्रदेशों पर भी अधिकार प्राप्त हो गया। इसी समय के लगभग तुर्कमान सरदार चीन किलीचखाँ ने दक्षिण में अधिकार पाया, जो पीछे तक उसके घराने में रहा। इस सरदार ने बादशाह की चंचलता और छिछोरपन से तंग आकर सैयदों के संरक्षकण में एक गुप्त षडयंत्र रचा, जिसका परिणाम यह हुआ कि १६ फरवरी सन् १७१६ को फर्रुख-सिय्यर की हत्या हो गई।

थोड़े काल तक तो सर्व शक्तिशाली सैयदों ने अपना डंका इस प्रकार बजाया कि शाही खानदान का जो कोई निर्बल मनुष्य उनको अपने हित का मिला, उसे नाम मात्र के लिये तख्त पर बैठा दिया और राज-शासन की बाग अपने हाथ में रक्खी। परन्तु इस भाँति काम चलता न दिखाई दिया; और सात मास के ही बीच में दो नामधारी बादशाह क़बर के अर्पण हुए। इन कर्ता धर्ताओं को अंत में एक और पुरुष इस कार्य के लिये चुनना पड़ा, जो तनिक अधिक योग्य था। यह बादशाह बहादुर शाह के सब से छोटे शाहज़ादे का पुत्र

था, जिसका पिता अपने बाप की मृत्यु के पीछेवाली लड़ाई में मारा गया था। उसका नाम सुलतान रौशन अख्तर था। परंतु वह मुहम्मद शाह की उपाधि धारण करके बादशाह बना। यह बात प्रसिद्ध है कि वह हिंदुस्तान का अंतिम बादशाह था, जो शाहजहाँ के तख्त ताऊस पर सुशोभित हुआ।

मुहम्मद शाह को तख्त पर आरूढ़ हुए बहुत दिन न बीते थे कि उसने अपनी शक्ति का परिचय देना प्रारंभ किया, जिसकी राजसिंहासन पर बैठानेवाले सैयदों को उससे कदापि आशा न थी। अपनी माता के अनुशासन से, जो एक युद्धिमती और वीर नारी थी, उसने अपने ऐसे मुगल मित्रों की एक मंडली बनाई जो सैयदों के जानो दुश्मन थे। मुगल सुन्नी थे, और सैयदों का धर्म शिया था। इसके अतिरिक्त मुगलों

* मुसलमानों में भी हिन्दुओं की भाँति अनेक फिरके और मतमतान्तर हैं, जिनमें से सुन्नी और शिया दो जमाअते मुख्य हैं। दोनों ही मुहम्मद साहब को पैगम्बर मानते हैं और धर्म पुस्तक कुरान की आज्ञाओं को अपने अपने विचारानुसार पालन करते हैं। सुन्नत जमाअत के अनुयायी मुहम्मद साहब के बाद उनके चार खलीफाओं अर्थात् अबूबक्र, उमर, उसमान और अली को सम्मान के योग्य समझते हैं, और शिया मतवाले केवल अली को ही उसमें से पूज्य समझते हैं। शेष तीनों की वे निन्दा और अवज्ञा करते हैं। उनके पंजतन में मुहम्मद साहब, अली, मुहम्मद साहब की पुत्री और अली की स्त्री बीबी फात्मा, और इनके दो पुत्र इमाम हुसन और इमाम हुसेन सम्मिलित हैं। मुहर्रम के दिनों में शिया मतवाले ही ताजिये बनाने, तथा रुदन और विलाप की मजलिस करने को सवाब समझते हैं। किन्तु सुन्नी इन कामों का खंडन करते हैं। वे इन दिनों में खैरात करना नेक बताते हैं। सुन्नी हाथों को छाती पर रखकर और शिया हाथों को सीधे नीचे डालकर नमाज पढ़ते हैं।

को अपनी विदेशी जन्मभूमि का घमंड था और वे मंत्री सैयदों को हिंदुस्तान के निवासी कहकर उनसे घृणा करते थे, और बादशाह से, जो उन्हीं के कुटुम्ब का था, अपनी मातृ भाषा तुर्की में बातें करते थे, जिसे सैयद नहीं समझते थे। चंचल प्रपंची चीनकिलीच खाँ और नया आया हुआ ईरानी वीर सआदत खाँ भी सैयदों का नाश करनेवालों में मिल गए, यद्यपि सआदत खाँ भी शिया ही था और उनके साथ धार्मिक

जान पड़ता है कि शिया और सुन्नी का प्रश्न मुगल राज दरबार में पहले से ही भगड़े का कारण बना हुआ था। बादशाह औरंगजेब, जो कट्टर सुन्नी था, मुनशी नामतखाँ आली को, जो एक बहुत बड़ा विद्वान् था, उसकी अपूर्व योग्यता के कारण अपने मंत्री-मंडल में उपस्थित तो रहने देता था; पर वह शिया धर्म का अनुयायी था; इस कारण उसकी दृष्टि में कौंटे की भोंति खटकता था। 'हाकिमे वक्त' समझकर बादशाह को प्रसन्न करने के हेतु नामतखाँ आली ने ये दो शेर बनाकर भेंट किए थे—

اصحاب نبی چو چار یار اند * چون چار کتاب در شمار اند
دربودن آن شکے نہ شبیے * زان چار یکے نہ داشت عیبے

अर्थात् “नबी के चार खलीफा हैं और वे भी चार पुस्तकों के समान गिनती में आते हैं। इस बात के होने में कुछ संदेह और संशय नहीं है। उन चारों में से किसी में कोई दोष न था”। प्रत्यक्ष में इसी अर्थ को सामने रखकर कवि ने यह कविता रची थी और ऊपर के तीन पदों के साथ रहकर चौथे और अंतिम मिसरे का अधिकतर वही अर्थ होता भी है, जो कि प्रकट किया गया है। परन्तु मुनशी नामतखाँ आली कोई साधारण मनुष्य नहीं था, जिसने केवल बादशाह को खुश करने के लिये ही अपने धर्म के विरुद्ध ऐसा किया। नहीं, कदापि नहीं। उसके चौथे पद का वास्तविक आशय, बल्कि शब्दार्थ भी यह है—“उन चारों में से एक दूषण-रहित था” और यही शियों का सिद्धान्त है।

वैर रखने का उसके लिये बिलकुल बहाना न था। अंत में इन सब ने मिल मिलकर दोनों सैयद भ्राताओं को मरवा डाला। एक को खाँडे की धार उतारा और दूसरे को विष दिया गया।

गुप्त हत्या कराने में भी कुछ बुद्धि और राजनीतिक चतुरता की आवश्यकता होती है। पर यह चाल इतनी गहरी और बढ़िया न थी कि वे केवल इसके चलने से ही सलतनत के शासन का कार्य चला सकते। अंत में युवा बादशाह के छिछोरे मित्रों के विनाशार्थ स्वतः ही कारण उत्पन्न हो गए।

सब से पहले तो उन्हें राजपूतों से, जिनमें अब स्वदेश-प्रेम की वृद्धि हो रही थी, कुछ भूमि देकर पीछा छुड़ाना पड़ा। पर जब वृद्ध मंत्री चीन किलीचखाँ ने उनकी इस दुर्बलता पर अपनी घृणा प्रकट की, तब उन्होंने उसको कड़ी और दृढ़ प्रकृति तथा पुराने ढंग के व्यवहार का, जिसकी शिक्षा उसने औरंगजेब से ग्रहण की थी, बहुत ही ठट्ठा उड़ाया। यहाँ तक कि इस अनुभवी पुराने योद्धा को अपने पद से इस्तेफ़ा देकर दक्षिण चले जाना पड़ा। उसके इस पद-त्याग से सलतनत को बड़ा धक्का पहुँचा।

सन् १७३० में निज़ाम चीन किलीचखाँ और मरहटों के बीच में समझौता हो गया, जिनको उस वृद्ध राजनीतिज्ञ ने अपने बादशाह और देश-वासियों पर धावा करने के लिये उत्साहित किया। पहले तो उन्होंने मालवे पर चढ़ाई की और वहाँ के सूबेदार को मार डाला। निर्बल मुग़ल बादशाह ने,

जिसकी नीति टाल मटोल करने की हो गई थी, अपने मित्र और मंत्री की सम्मति से उनकी विजय और लूट मार को सहन करके निर्वलता का परिचय दिया, जिससे उनको नवीन आक्रमण करने का साहस हो गया ।

सन् १७३६ में मरहटों के दल का अगला भाग मल्हार-राव हुलकर की अधीनता में यमुना पार उतर गया । पर उसे थोड़ा नीचा देखना पड़ा । उसी समय में ईरानी सआदत खाँ (जिसकी संतान ने अवध में पीछे अंगरेजी अमलदारी के आने तक शासन किया था) अपने राज्य की नाँव जमाने में लगा हुआ था । वह गंगा और यमुना के बीच की भूमि में बढ़ आया; और उस समय में, जब कि मुग़ल मंत्री मंडल लज्जापूर्ण भेंट देने के अपमान से मुक्त होने के लिये कपट भरी संधि का पाप करने पर उतारू हो रहा था, नवाब अवध अचानक होलकर पर दूट पड़ा; और उसको बड़ी घबराहट और गड़बड़ी में बुंदेलखंड तक पीछे हटा दिया ।

बाजीराव पेशवा ने, जो मरहटों की प्रधान सेना का सेनापति था, अपनी अपकीर्ति के इस ध्वजे के भिटाने में, जो होलकर की पराजय से लग गया था, तनिक विलम्ब न किया । वह एक प्रशंसनीय और वेगवान बगली धावा करके अरक्षित राजधानी में घुस गया; और अपना झंडा ऐसे स्थान में गाड़ दिया, जो बादशाह के महल से दिखाई देता था । अब वह घड़ी आ गई कि दक्षिण के वृद्ध नवाब ने स्वयं स्थल पर

आकर बादशाहत के मुक्तिदाता बनने का गौरव प्राप्त किया। यद्यपि मरहठे दिल्ली से हट गए, परन्तु उन्होंने वह भारी चोट लगाई कि जिसके कारण साम्राज्य फिर कदापि उभर न सका। परन्तु निज़ाम को अवसर मिल गया और उसने उन लाडले छैल चिकनियों का, जिन्होंने थोड़े दिन पहले उसकी हँसी की थी, उपहास करके अपना चित्त शांत किया।

एक दृढ़ और सुंदर सेना को अपनी अधीनता में लेकर निज़ाम फिर अपने स्थान को लौट चला। परन्तु मरहठों ने उसके मार्ग में बाधा खड़ी कर दी, जिससे विवश होकर उसको भी उनके साथ संधि करना पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि मालवा हाथ से निकल गया; और परस्पर यह स्थिर पाया कि आगे को बादशाहत की ओर से मरहठों को, जिन्हें शूद्र लुटेरे कहा जाता था, कर दिया जाय।

वृद्ध सरदार के लिये, जिसने शक्तिशाली औरंगज़ेब से नोति की शिक्षा ग्रहण की थी, यह घटना हृदयविदारक और मुँह न दिखलाने के योग्य थी। अब यह बुढ़ा दोनों ओर से दबकर बीच में ऐसे फँस गया था, जैसे दाँतों के अंदर रहकर जीभ की गति हो जाती है। यदि वह निज राजधानी हैदराबाद को चला जाय, तो अपने शेष जीवन के दिनों को उसे इस प्रकार लड़ भगड़कर काटना पड़े, जिस प्रकार उसके स्वामी को करना पड़ा था। और यदि वह दिल्ली को लौट चले, तो उसे सेनापति खान दौरान के हाथों से अपार अनादर सहना पड़े।

इस भाँति शिकंजे में फँसकर उसने स्वार्थवश होकर अपने देश का पुनः सत्यानाश करना विचारा । और कदाचित् वह ईरानी सआदतखाँ के समझाने बुझाने से, जो खान दौरान की जड़ उखाड़ना चाहता था, उसके साथ मिलकर महा पाप करने पर उतारू हो गया ।

इन शठों ने मिलकर एक पत्र लिखने का अपराध किया । उस पत्र का यह फल निकला कि ईरान के लुटेरे बादशाह नादिर शाह ने सन् १७३८ में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की । उसने शाहजहाँ के महल को लूटा; दिल्ली में एक लाख मनुष्यों को मरवाया; और हिन्दुस्तान से अगणित रत्न, घोड़े, हाथी, ऊँट आदि के अतिरिक्त अस्सी करोड़ से ऊपर तो वह नकद रुपए ही ले गया । चाँदनी चौक में रोशन उद्दौला की मसजिद में वह बैठ गया और उसके देखते देखते यह भीषण हत्याकांड और लूट मार होती रही । दोनों कुटिल देश-द्रोहियों को भी अपने किए का उचित फल मिल गया । नादिर शाह के अधिकार में जब राजधानी दिल्ली नगरी आ गई, तब उसने तूरानी (चीन किलीचखाँ) और ईरानी (सआदत खाँ) दोनों को अपने सम्मुख बुलाया और उनको उनकी धूर्तता तथा नीच स्वार्थता पर अति धिक्कारा । उसने यहाँ तक उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध की अग्नि से, जो दैवी प्रकोप है, तुम्हें भस्म कर दूँगा । इतना कहकर नादिर शाह ने उनकी दाढ़ी पर थूक दिया और फिर उन्हें अपने आगे से निकलवा दिया । इस पर उन

तेजहीन धूर्तों ने परस्पर बात चीत करके यह निश्चय किया कि प्रत्येक मनुष्य अपने घर जाकर विष खा ले। इस विषय में निज़ाम ने पेशदस्ती की, जो अपने कुटुंब के सम्मुख जहर का प्याला पीकर थोड़ी देर में अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गया। सआदतखाँ के गुप्तचर ने जब इस विषय में अपना पूर्ण निश्चय कर लिया, तब वह अपने स्वामी के पास दौड़ा गया। सआदत खाँ ने उससे यह सुनकर अपने मन में बड़ी ग्लानि की कि इस मान और मर्यादा की बाजी में भी मैं पछड़ गया। उसने भी अपने वचन का पूरा पूरा निर्वाह किया; अर्थात् हलाहल पीकर अपने प्राण दे दिए। उसके मरने का समाचार पाते ही चीन किलीच खाँ तुरन्त जी उठा और उसने अपने इस कौतुक का वृत्तान्त विश्वसनीय मित्रों से पीछे हँसो में वर्णन किया कि मैंने खुरासान के व्यापारों को मात देने के निमित्त ही ऐसा किया था।

ऐसो प्रकृति का मनुष्य कैसे निश्चित बैठ सकता था ! नादिर शाह अपने देश में पहुँचा ही होगा कि निज़ाम ने अपनी चालें चलनी आरम्भ कर दीं और अब वह पहले से भी अधिक शक्तिशाली हो गया। एक ओर तो वह दक्षिण का शाह था; दूसरी ओर उसने बादशाह और उसके वजीर को सर्वथा अपनी मुट्ठी में करके “वकील मुतलक्” की उपाधि ग्रहण की। मृत्यु ने उसके वैरी पेशवा को १७४० में हर कर उसका मार्ग और साफ कर दिया।

अधिकाधिक पतन

सन् १७४१ में आफत के परकाले निजामचीन किलीच खाँ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गाजी उद्दीन को बादशाह के पास एक परम विश्वास के योग्य पद पर नियुक्त करके, तथा अपने नातेदार और भरोसे के मित्र कमर उद्दीन को वज़ीर आज़म की उच्च पदवी पर आरूढ़ हुआ समझकर दिल्ली से सदैव के लिये बिदा प्राप्त की और वह दक्षिण को प्रस्थित हुआ ।

इस वीर वृद्ध पुरुष का प्रस्थान क्या था, मानो बादशाहत को घुन लग गया । उसके अङ्ग भङ्ग होने लगे । बंगाल, बिहार और उड़ीसा को एक ततारो पुरुषार्थी मनुष्य अतावर्दी खाँ ने विजय कर लिया । बादशाह की आज्ञा तो इन प्रदेशों में नाम मात्र को मानो जातो थी । फिर उस प्रदेश की बारी आई, जो गंगा के पार रूहेलखंड कहलाता है । वहाँ अलीमुहम्मद नामक एक पठान योद्धा ने सन् १७४४ में शाही सूबेदार को पराजित करके मार डाला और स्वयोन हो गया । इस पर बादशाह स्वयं सेना लेकर युद्ध के मैदान में गया; और उसने विद्रोही को पकड़ भी लिया । परन्तु शाही अधिकार में वह भूमि लौटकर न आई, जो निकल गई थी ।

इसके कुछ दिन पीछे दुर्गानो अफ़ग़ानों के नायक अहमद खाँ अब्दाली ने, जिसने नादिर शाह का वध हो जाने के बाद ईरानो राजनीति में गड़बड़ी पड़ जाने से सीमा के प्रदेशों का अधिकार प्राप्त कर लिया था, उत्तर की ओर से नवीन

चढ़ाई की। परन्तु मुगल सरदारों की एक ऐसी नई पौद अब पैदा हो गई थी, जिसके पराक्रम ने बादशाहत के गिराव पर भी आशा की थोड़ी सी झलक दिखा दी थी। वली अहद, वजीर के पुत्र मीर मन्नू, गाज़ी उद्दीन और मृतक नवाब अवध के भतीजे अब्दुल मनसूर खाँ, जो सफ़दर जंग के खिताब से प्रसिद्ध था, इन सबकी बुद्धिमत्ता और वीरता ने उस हमले को निष्फल कर दिया। अप्रैल १७४८ में वजीर कमर उद्दीन जब अपनी छौलदारी में नमाज पढ़ रहा था, उसे गोली लगी और वह मर गया। बादशाह की गिरी हुई तबियत पर, जिसका वह पुराना और स्थिर सेवक था और जिसके भारी और महान् राज्य के हर्ष और चिंताओं में सदैव साथ शरीक रहा था, ऐसे हार्दिक मित्र की मौत की ख़बर ने अतिशय चोट पहुँचाई। बादशाह उस वक्त अपने शाही महल दिल्ली में बैठा हुआ न्याय कर रहा था कि यह खबर सुनकर उठ गया और उसी समय उसने अपने प्राण छोड़ दिए।

बहुत ही कम ऐसी सानुकूल अवस्था में राज्याधिकार की प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त होता है, जैसी अवस्था में अहमद शाह को हुआ। बादशाह अपनी पूर्ण तरुणावस्था में था। उसके मंत्री गण पराक्रम और निपुणता में विख्यात थे। दक्षिण में चीन कुलीच खाँ मराठों को रोक रहा था; और उत्तर की ओर से चढ़ाई होने का भय मिट चुका था। तथापि राज्य-प्रबंध में अनिश्चित हानिकारक तत्त्व सदैव बना रहता है।

इसमें सफलता पाना केवल मनुष्य के पुरुषार्थी गुणों पर निर्भर है। थोड़े दिन पीछे वृद्ध निजाम चीन कुलीचखाँ का देहान्त हो गया, जिससे एक बड़ा नुकसान हुआ; क्योंकि वह बादशाहत की एक बड़ी ढाल के समान था। निजाम का ज्येष्ठ पुत्र सेना और कोष का अध्यक्ष बना रहा; और उसका छोटा भाई नसीर जंग दक्षिण का नवाब हुआ। वकालत का पद रिक्त रहा। वजारत मृतक नवाब अवध के भतीजे सफदर जंग को, जो नवाबों भी करने लगा था, सौंपी गई।

यह कार्य करके बादशाह अपनी मौरूसी प्रकृति की रुचि के अनुसार चलने लगा। प्रदेशों को उनके मत पर छोड़ कर वह स्वयं भोग विलास में डूब गया। इसी बीच में बादशाहत के दो बड़े प्रदेश अर्थात् पंजाब और रुहेलखंड के मैदानों में खून बहने लगा।

रुहेलों ने शाहों लश्कर के, जिसे स्वयं वजीर अपने हाथ में रक्खे हुए था, पाँव उखाड़ दिए। यद्यपि सफदर जंग ने इस कलंक को मिटा दिया, परन्तु इस कार्य से उसे एक और बहुत बड़ा अपमान सहना पड़ा; क्योंकि हिंदू शक्तियों को जो दिन पर दिन दुर्बल होता जातो थी, बादशाहत पर, हाथ साफ करने का साहस हो गया।

मराठे, जिनका नायक होलकर था और जाट, जो सूर्यमल के अधीन थे, दोनों की सहायता से वजीर ने रुहेलों को गंगा की रेती में हराकर कुमायूँ पहाड़ की तराई तक खदेड़ा।

इतने में अफगान अहमद खाँ अबदाली फिर आ गया। इस सेवा के बदले में मराठों को रुहेलखंड के भाग पर अधिकार जमाने और शेष से चौथ वसूल करने की आज्ञा मिल गई, जिस पर उन्होंने अफगानों के मुकाबले में सहायता देने का वचन दिया। किन्तु दिल्ली में पहुँचकर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि बादशाह ने वजीर की अनुपस्थिति में अहमद खाँ को लाहौर और मुलतान के प्रांत समर्पित करके युद्ध की सम्भावना ही न रहने दी।

उस समय बादशाह के मंत्री मंडल की स्थिति उस मायावी इन्द्रजाली की सी हो गई थी, जो अपने साथियों को स्वयं अपने मारने के काम पर लगाता है और इसका भीषण दृश्य लोगों को दिखाता है; अर्थात् बादशाह ने स्वयं अपने ऐसे मंत्री बना लिए, जो उसकी जान के गाहक थे। किन्तु बखशी फौज गाज़ी उद्दीन की युक्तियों से शीघ्र ही उसके बचाव की सूरत निकल आई, जिसने यह वचन दिया कि मैं इन भयंकर अधिकारियों को, अपने तीसरे भ्राता दौलत जंग से—जो नसीर जंग की मृत्यु हो जाने से दक्षिण का नवाब बन बैठा था—उसके अधिकार छीनने में मुझे सहायता देने के बहाने से, यहाँ से निकाल ले जाऊँगा।

वजीर ने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रतिरोधी को टलते देखा; किन्तु उसको स्वप्न में भी यह नहीं सूझा कि सेनापति जिस लड़के को अपने पीछे यहाँ छोड़ गया है, वह एक आफत का

परकाला और विष की गाँठ है। पीछे यह युवा गाजी उद्दीन (सानी) के नाम से बहुत विख्यात हुआ, यद्यपि उसका नाम शहाबुद्दीन और लक़ब अहमदुल मलिक था। अहमदुल मलिक वृद्ध निज़ाम चीन किलीच खाँ के चौथे बेटे फीरोज़ जंग का पुत्र था। वजीर सफ़दर जंग ने बादशाह के प्यारे सेनापति गाजीउद्दीन की औरंगाबाद में हत्या कराके अपने विचार में पूर्णतया अपना मनोरथ प्राप्त होना और अब किसी प्रकार का खटका शेष न रहना समझ लिया था। जब दिल्ली में युवा गाजीउद्दीन के ताऊ की मृत्यु का समाचार सहसा पहुँचा, तब उसका बेटा सोलह वर्ष का था। परन्तु उसने निर्बल और चिंतित बादशाह के गुप्त रूप से उभारने पर सफ़दर जंग के विरुद्ध वही लड़ाई—तूरान और ईरान व सुन्नी और शिया की—फिर उठाई, जो पहले मुहम्मद शाह बादशाह के समय में सैयदों और मुगलों के बीच में हुई थी और जिसमें उसके पितामह निज़ाम चीन किलीच खाँ और सफ़दर जंग के चचा नवाब सआदत खाँ ने भाग लिया था। पहले और इस विवाद में अंतर यह था कि उस समय कलह मन ही मन में थी; अब खुले बन्दों भगड़ा होता था। राजधानी के गली कूचों में दोनों पक्ष वालों के बीच में प्रति दिन लड़ाई होती रहती थी। खेत मुगलों के हाथ रहा। गाजीउद्दीन ने सेना की अध्यक्षाता ग्रहण की। वज़ारत गाजीउद्दीन के चचेरे भाई और मृत वजीर क़मरउद्दीन के दामाद इतिज़ाम उद्दीन

खानखानाँ को सौंपी गई । सफ़दर जंग ने प्रत्यक्ष में विद्रोह का झगड़ा खड़ा किया और सूर्यमल के अधीन जाटों को अपने सहायतार्थ बुलाया । मुग़लों ने मराठों पर अपना अवलंबन किया; और होलकर बादशाहत का हिमायती बनकर अपने सहधर्मी जाटों और अपने पूर्व संरक्षक सफ़दर जंग के विरुद्ध लड़ने को प्रस्तुत हुआ । नवाब अवध, जो सदैव पराक्रम की अपेक्षा चातुर्य में अधिक विख्यात था, अपने राज्य में चला गया और विजयो गाज़ी को पूरी चोट अभागे जाटों पर पड़ी ।

अब खानखानाँ और बादशाह को जान पड़ने लगा कि बात बहुत बढ़ गई; और खानखानाँ ने, जो अपने बंधु गाज़ीउद्दीन के असावधान विचार और निर्दय आवेश से परिचित था, उससे वह सुरंग ले ली, जिसको भरतपुर को उड़ाने के लिये आवश्यकता थी । बादशाह इस समय ऐसी परिस्थिति में था कि जिसको अपनी सफलता और कुशलतार्थ बहुत कुछ सोच समझकर काम करने की आवश्यकता थी । उसके पिता के पुराने मित्र और सेवक कमरउद्दीन का शूरवीर पुत्र मोर मन्नु उस वक्त पंजाब के अफग़ानों के रोकने के कठिन कार्य में लगा हुआ था । परन्तु उसका बहनोई खानखानाँ भी पराक्रमी और समझदार था । ऐसी नाजुक हाजत में बादशाह की गति साँप छड़ूँदर की सी हो गई थी । यदि वह सफ़दर जंग को बुलाता और जाटों से खुल्लमखुल्ला मिल जाता, तो उसको भले प्रकार से सोची समझी हुई एक प्रबल लड़ाई करन

पड़ती। और यदि वह सेनापति की सच्चे मन से सर्वथा पुष्टि करता, तो उसको स्वयं तो निश्चिन्तता प्राप्त हो जाती, पर इसके साथ ही एक बलिष्ठ हिंदू शक्ति का सत्यानाश हो जाता। चंचल विषयी बादशाह के संमुख जब ये दोनों परामर्श रखे गए, तब वह साहसपूर्वक किसी बात का निर्णय न कर सका। दिल्ली से तो उसने यह प्रतिज्ञा करके कूच किया कि सेनापति की सहायता करूँगा, जिसकी पीठ उसने पहले से ही इस विषय के अनेक पत्र भेजकर ठोंक दी थी। उधर उसने सूर्यमल को यह लिखा कि मैं शाही लश्कर के पिछले भाग पर आक्रमण करूँगा; जाटों को चाहिए कि उस किले से, जिसमें वे घिर गए हैं, निकलकर दूट पड़ें। सफदर जंग को कुछ नहीं लिखा गया; इसलिये वह चुपचाप अलग रहा। सूर्यमल के नाम का बादशाह का पत्र सेनापति गाज़ी उद्दीन के हाथ में पड़ गया, जिसमें उसने अपनी ओर से कठोर धमकियाँ बढ़ाकर बादशाह के पास लौटा दिया। इस पर वह डरकर दिल्ली की ओर हटा, जिसका पीछा कुछ दूरी से उसके विद्रोही योद्धा ने किया। इस अवसर को उपयुक्त जानकर होलकर ने शाही शिविर पर अचानक धावा करके उसे लूट लिया। बादशाह और वजीर के हाथों के तोते उड़ गए और वे आतुरतापूर्वक दिल्ली को भागे। उन्हें इतना ही अवकाश मिला कि लाल किले में घुस गए, जिसे गाज़ीउद्दीन ने चारों ओर से अच्छी तरह घेर लिया।

गाज़ीउद्दीन के स्वभाव को जानकर, जिसके साथ उसे पाला पड़ा था, बादशाह का ऐसी गंभीर और कठिन परिस्थिति में प्रत्यक्ष रूप में निज हित के लिये केवल यही उचित कर्तव्य रह गया था कि स्वयं वीरता से मुकाबले में खड़े होकर अपने दो दो हाथ दिखलावे और नवाब अवध तथा जाटों के राजा को सहायतार्थ निवेदनपत्र भेज दे। एक विश्वसनीय फारसी तवारिख में दर्ज है कि 'वजीर बा-तदबीर' ने उस समय बादशाह को जो सम्मति दी थी, उसका आशय भी यह ही था। परन्तु बादशाह ने कदाचित् इस बात को इन कठिनाइयों के कारण कि सफदर जंग के साथ पहले से वैर है और मुगल सेना पर गाज़ीउद्दीन का बहुत अधिक प्रभाव है, अस्वीकार कर दिया। इस पर खानखानाँ निज गृह को चला गया और अपनी किले बंदी कर ली। शेष शाही अनुचरों ने फाटक खोल दिया और बख्शी फौज गाज़ीउद्दीन से सन्धि कर ली। उसने अपनी प्रकृति के अनुसार मंत्री मंडल से, जो वास्तव में उसका निजी स्वार्थपूर्ण विचार था, सम्मति दिलाई कि "यह बादशाह सल्तनत के लिये अयोग्य निकला; यह मराठों से मुकाबला करने में असमर्थ है। इसका व्यवहार अपने मित्रों के साथ मिथ्या और अनिश्चित है। इसलिये इसे तख्त पर से उतारा जाय और इसके स्थान में तैमूर के घराने का कोई अधिक योग्य पुत्र तख्त पर बैठाया जाय"। इस प्रस्ताव को तुरंत कार्य रूप में परिणत किया गया। अभागे

बादशाह को अंधा करके महल के निकटस्थ सलीमगढ़ के कारागार में कैद किया गया और जुलाई १७५४ में फर्रुख सिय्यर के प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र को आलमगीर सानी की उपाधि देकर बादशाह बना दिया गया ।

अकबर से औरंगजेब तक की जिस बादशाहत का सारे हिन्दुस्तान पर डंका बजता रहा, उसकी अब ऐसी करुणा-जनक और शोचनीय छिन भिन्न दशा हो गई थी कि नाम को तो उसका अधिकार समस्त देश पर कहा जाता था; परन्तु दुआब के ऊपर के भाग और सतलज के दक्षिण के थोड़े से जिलों के अतिरिक्त और कोई प्रदेश उसमें न बच रहा था । गुजरात के ऊपर मराठों की दौड़ धूप थी । बंगाल, बिहार और उड़ीसा अलावर्दी खाँ के उत्तराधिकारी के अधिकार में थे । अवध का नवाब सफदर जंग था । मध्य दुआब पर बंगेश की अफगानी जाति अपना प्रभुत्व जमाए हुए थी । रुहेलखंड रुहेलों का हो चुका था । और यह पूर्व में ही प्रकट किया जा चुका है पंजाब पहले ही साम्राज्य से पृथक् हो गया था । दक्षिण के उस भाग को छोड़कर, जिस पर वृद्ध निजाम के पुत्रों में घरेलू भगड़ा हुआ, शेष सब को हिंदुओं ने पुनः जीत लिया था । एक ओर अँगरेज व्यापारी भी अपनी डेढ़ ईंट की मसजिद बना रहे थे ।

इस परिवर्तन के सानुकूल समाप्त होते ही उस युवा बादशाह-निर्मायक ने अपना सिक्का जमाने का पूरा प्रबंध कर

लिया। अपने चचेरे भाई खानखानाँ को कैद करके आप वज़ीर बन बैठा। सफ़दर जंग की मृत्यु हो जाने से यह खटका मिट गया। इस बीच में उसके स्वेच्छापूर्ण व्यवहार से एक सैनिक विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, जिसका उसने इस निर्भयता और कठोरता से दमन किया कि फिर आगे किसी को ऐसा करने का साहस न हो। इतने पर भी ऐसे प्रपञ्चों का अंत न हुआ, जिनमें उच्च पदाधिकारी पुरुष लग रहे थे। इस निरंकुश मंत्री के हत्यार्थ जो षड्यंत्र रचा गया, दुर्बल बादशाह उसका सब से बड़ा प्रतिपालक हो गया। यद्यपि मंत्री ने अपने रत्नार्थ पहले से जो उपाय कर रखे थे, उनके कारण यह घटना न होने पाई, तथापि उसके राज-संबंधी प्रबंध के प्रयत्नों में विफलता होती रही; इससे उसके मन में मनुष्य मात्र से घृणा उत्पन्न हो गई।

उधर पंजाब में मीर मन्नू घोड़े से गिरकर मर गया। प्रजा उसको मन से इतना चाहती थी कि जब लाहौर और मुलतान प्रदेश अहमद शाह बादशाह के शासन काल में बादशाहत से निकल गए थे, तब नवीन बादशाह अहमद शाह अबदाली ने उनका प्रबन्ध मीर मन्नू के हाथ में ही बना रहने दिया; और उसकी मृत्यु के पीछे वही अधिकार उसके बालक पुत्र के नाम से प्रचलित रहने दिया। पुत्र की बाल्यावस्था में यथार्थ प्रबंधकर्त्ता मीर मन्नू की विधवा और अदोना बेग-जो स्थानीय अनुभव में निपुण था-थे।

गाज़ीउद्दीन ने, जो दरबार से निकलना चाहता था, इस मौके को ग़नीमत समझा और ऐसे उचित अवसर पर पंजाब पर चोट लगाने को चेष्टा की। लूटे पूटे शाही खज़ाने में जो रुपया रह गया था, उससे शीघ्रता के साथ सेना भरती करके और वली अहद मिरज़ा अली जौहर को अपने साथ लेकर उसने लाहौर को कूच किया। अचानक और बेख़बरी में नगर को जीतकर बेगम और उसकी पुत्री को अपने वश में किया और दिल्ली को लौट आया। यह घोषणा करके कि हमने अफ़ग़ान बादशाह को संधि करने पर विवश कर लिया है, वहाँ अदीना बेग को अपनी ओर से उन प्रदेशों का अधिकारी नियुक्त करके छोड़ आया।

उसने यह सब कुछ किया, तो भी राजसभा संतुष्ट नहीं हुई, जिसका विशेषकर यह कारण था कि उसकी विजय उसे और अधिक कठोर तथा निर्दय बना देगी। अहमद अबदाली भी केवल उतने समय तक ही चुप रहा, जब तक कि उसको अपने कामों से सुभीता न मिल सका; क्योंकि यह बात वह कैसे सहन कर सकता था कि उसकी भूमि पर उसके प्रबंध में बिना आज्ञा प्राप्त किए कोई और आकर हाथ डाल दे। बादशाह के पक्षियों ने दिल्ली से उसके पास जो कुछ लिख कर भेज दिया, उस पर अफ़ग़ानी सरदार ने शीघ्र ही ध्यान दिया और बेग के साथ अपने कटक को लेकर दिल्ली से बीस मील पर आकर डेरा जमाया। वजीर उस समय

नजीबख़ाँ* की सहायता लेकर उससे लड़ने के लिये बढ़ा। परंतु जो सेना नजीब के साथ थी, वह शत्रु के दल में पहुँच कर इस प्रकार मिल गई, मानों बुलाई हुई आई हो; और गाज़ी उद्दीन “ठन्ठन्पाल मदन गोपाल” की कहावत के अनुसार अपनी करतूत से अकेला अलग रह गया। तब कहीं जाकर उसकी आँखें खुलीं और उसे अपनी वास्तविक दशा का बोध हुआ।

इस विपत्ति से उसने अपनी नोति के द्वारा छुटकारा पाया। उसने भट पट मीर मन्नु की पुत्री को अपनी स्त्री बना कर अपनी सास के द्वारा अहमद ख़ाँ अबदाली से मुआफ़ी ही नहीं प्राप्त की, बल्कि उस सरल योद्धा से ऐसी गोटी जमा ली कि पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया।

तदनन्तर अबदाली ने सलतनत के कार्यों में हाथ डाला।

* नजीबख़ाँ एक धनी अफ़ग़ानी सिपाही था, जिसने रुहेलखंड के पठान सरदारों में से दुंदोख़ों की पुत्री से विवाह किया था। इस भूमि-अधिकारी ने रुहेलखंड के पश्चिमोत्तर के कोने का ज़िला उसे प्रदान किया। तदनन्तर जब वज़ीर सफ़दर जंग के अधिकार में यह भूमि आ गई, तब नजीबख़ाँ उसके पक्ष में हो गया। इसके अनन्तर सफ़दर जंग जब अपने पद से हट गया, तब उसने गाज़ी उद्दीन का साथ उसकी लड़ाइयों में दिया। वज़ीर ने जब आरंभ में बादशाहत पर आक्रमण करने का विचार किया था, उस वक्त उसने नजीब को वज़ीर खानखानों की जागीर पर अधिकार करने के लिये एक सेना की टोली के साथ भेजा था। उस वक्त वह भूमि जो सद्धारनपुर के समीप है, बाउनी महल के नाम से प्रसिद्ध थी और वह पीछे साम्राज्य से अलग होकर दो पीढ़ियों तक नजीब के घराने में रही।

वजीर को दुआब से कर लेने को भेजा। उसका एक मुख्य सरदार जहाँखाँ जाटों से चौथ लेने को गया और स्वयं बादशाह ने राजधानी को लूटा। प्रथम बार में ही गाज़ीउद्दीन बड़ी लूट लेकर लौटा। परंतु जाटों की चढ़ाई में ऐसी सफलता नहीं हुई; क्योंकि उन्होंने अपने बहुत से दुर्गों में घुसकर, जो उनकी भूमि पर ठौर ठौर बने हुए हैं, अफ़गानों की फौज के छक्के छुड़ा दिए और अचानक प्रहार करके उनके पशुओं की रसद का मार्ग बंद कर दिया। आगरे ने भी मुगल शासन की अधीनता में अपनी भली भाँति रक्षा की। किन्तु लुटेरों ने निकटवर्ती मथुरा नगर के अभागे निवासियों को अचानक ऐसे अवसर पर, जब कि वहाँ एक धार्मिक मेला हो रहा था, लूटकर अपनी कमी पूरी कर ली। घातकों ने बालक, बूढ़े या स्त्री किसी का कुछ भी विचार न करके सब का वध कर डाला।

दिल्ली के निवासियों का क्या कहना, जिन्होंने बीस वर्ष पहले नादिर शाह के साथियों के हाथ से जो दुःख भेले थे, इस समय उनसे भी बढ़कर दारुण कष्ट और आपत्तियाँ सहों क्योंकि अबदाली के पठान ईरानियों की अपेक्षा बड़े उजड़ू और असभ्य थे। जो अपार धन तथा बहुमूल्य पदार्थ नादिर शाह उस वक्त ले गया था, वे तो अब इनके लिये कहाँ रक्खे थे ! कौन सी विपदा थी, जो इस बीच में अर्थात् तारीख ११ सितंबर १७५७ से लेकर जब तक उन्होंने वहाँ प्रवेश किया, और उसके दो मास पीछे तक, दिल्लीवालों पर नहीं पड़ी।

इस द्रव्य-संचय के कार्य से निवृत्त होकर अबदाली गंगा किनारे अनूपशहर की छावनी को चला गया। वहाँ बैठकर उसने बादशाहत को उन हिन्दुस्तानी सरदारों में विभक्त किया, जो उसके प्यारे थे। नजीबखाँ को अमीर उल्-उमरा के पद से, जिसके अधीन महल और उसमें वास करनेवालों का समस्त प्रबंध था, विभूषित किया। तदनन्तर वह स्वदेश को लौट गया, जहाँ से उसे हाल में एक विपद का समाचार मिला था। परंतु अपने गमन से पूर्व उसने पुराने बादशाह मुहम्मद शाह की पुत्री की प्रशंसा सुन कर, जिसके साथ आलमगीर सानी अपना विवाह करना चाहता था, उसे अपने निकाह में ले लिया; और अपने पुत्र तैमूर शाह का विवाह वलीअहद की कन्या से किया, जिसके अधिकार में अपने पीछे पंजाब को छोड़कर आप अपनी सेना और दल बल सहित कंधार को प्रस्थित हुआ।

वजीर गाजीउद्दीन की ज्यों ही इस चिंता से, जो अबदाली के आने से उसके लिये उत्पन्न हो गई थी, मुक्ति हुई, त्योंही वह उन्मत्त होकर अति कठोर अत्याचार करने लगा, जिस पाप कर्म से उसकी प्रकृति सर्वथा बुद्धि-हीन और मलीन होकर कलंकित और दूषित हो गई थी। उसने अपने बहुत से वैरियों से अपनी रक्षा करने के निमित्त मराठों की बड़ी फौज को रूपय देकर अपनी शरीर-रक्षक टोली अर्थात् गार्ड नियत किया, जिसके व्यय के लिये प्रजा के साथ नाना प्रकार की

दारुण कठोरताएँ और निर्दयताएँ करके उनसे बलपूर्वक रुपया चसूल किया। उसने नजीबखाँ को, जो अमीर उल् उमरा की उपाधि से अलंकृत होने के पीछे नजीब उद्दौला कहलाने लगा था, बाहर निकाल दिया; और उन सरदारों को, जो बादशाह के पक्षपाती थे, मार डाला या भीषण कारागार में डाल दिया। इसी से वह निर्दय संतुष्ट नहीं हुआ, वरन् उसने वली अहद अली गौहर पर भी हाथ साफ करना चाहा। शाहजादे की अवस्था सैंतीस वर्ष की थी। उसने अपनी जाति के वे समस्त उच्च गुण प्रकट किए, जो उसमें रनवास के भोग विलास में लिप्त होने से पहले देखने में आते थे। यमुना के तट पर जो दुर्ग किसी समय अलीमरदानखाँ की हवेली था, उसमें वह इस प्रकार रहता था, जैसे लोग खुली हवालात में रहते हैं। यहाँ उसने यह सुना कि वजीर मुझे शाही कारागार में, जो महल के घेरे में सलीमगढ़ के नाम से विख्यात था, कड़ी कैद में डालना चाहता है। इस पर उसने अपने संगी साथियों अर्थात् राजा रामनाथ और एक मुसलमान सज्जन सैयद अली से सभ्यता ली, जिन्होंने प्रतिज्ञा की कि हम चार घरेलू सवारों के साथ उस भीड़ में से, जो चारों ओर से घेरती हुई आ रही थी, शाहजादे को लड़ भिड़कर निकलने में सहायता देंगे। बड़े सवेरे वे चौक में उतरकर चुपके से घोड़ों पर चढ़ गए। विलंब के लिये तनिक भी अवकाश नहीं रह गया था; क्योंकि शत्रु के पराक्रमी सिपाही निकटवर्ती

झुत्तों पर चढ़ चुके थे, जहाँ से उन्होंने शाहजादे के साथियों पर गोली चलानी शुरू की। उधर प्रधान सेना फाटक की रक्षा कर ही रही थी। परंतु नदी की ओर जो भीतें थीं, उनमें एक दरार हो गई थी। उसमें से होकर छलाँग मारकर और तनिक भी अपने मन में भिन्नक न मानकर तुरन्त उन्होंने अपने घोड़े यमुना के चौड़े पाट में डाल दिए। अकेला सैयद अली पीछे ठहर गया; और जब तक शाहजादा भली भाँति बचकर बहुत दूर न निकल गया, उनके साथ ऐसी वीरता से लड़ा कि वे उसी से लड़ने में फँसे रहे और पीछा करने का अवकाश ही न पा सके। इस सच्चे सेवक ने स्वामी के रक्षार्थ अंत में अपने प्राणभोनिछावर कर दिए। ये भगोड़े नजीब को नवीन जागीर के केन्द्र सिकन्दरा में पहुँचे और कुछ दिन अमीर उल्-उमरा के पास ठहरकर लखनऊ चले गए। वहाँ शाहजादे ने बहुतेरा चाहा कि नया नवाब मुझसे मिलकर अँगरेजों पर आक्रमण करे, परन्तु उसे इस विषय में कुछ भी सफलता न प्राप्त हुई। इसलिये हारकर उसने विदेशीय शक्ति की शरण ग्रहण की।

दिल्ली के पत्रों से अहमदखाँ अबदाली को सब समाचार विदित हुए। इसलिये उसने फिर चढ़ाई की तैयारी की। विशेषतः यह कारण और हुआ कि मराठों ने उसी समय उधर उसके पुत्र तैमूर शाह को लाहौर से हटाकर खदेड़ा। उधर सेना भेजकर नजीब को उसकी नई जागीर से निकाला। इस कारण वह अपनी पुरानी भूमि बाउनी महल में आश्रय लेने

को विवश हुआ। नए नवाब अवध ने उसकी सहायता के हेतु रुहेलों को खड़ा किया और अफगानों ने, दिल्ली के उत्तर में नजीब के इलाके में यमुना पार करके, पुनः सितम्बर सन् १७५६ में अपनी पुरानी छावनी अनूपशहर में पड़ाव जमा दिया। वह निर्दय वजीर अब ऐसा हताश हो गया था कि उसको कहीं सहारा नहीं दिखाई देता था। अतः उसने अपने जीवन की चौसर का अंतिम पासा फेंकने की चेष्टा की। या तो वह अपने इस घोर दुष्टतापूर्ण उपाय से सारी बाजी जीत ले, या उसे सर्वथा हारकर कहीं चला जाय।

बादशाह कभी कभी अपने मुसाहिबों में बैठकर फकीरों और वलियों की पूजा करने की इच्छा प्रकट किया करता था। इस बात से अपना हित साधने के आशय से एक कश्मीरी ने, जो गाज़ी उद्दीन का शुभचिन्तक था, आलमगीर से यह वर्णन किया कि एक 'रसीदह वली अल्लाह' ने हाल में फीरोजाबाद के ऊजड़ किले में, जो नगर से दक्षिण की ओर दो मील से अधिक दूर यमुना के दाहिने किनारे पर है, निवास किया है। दीनदार बादशाह ने उस संत के साथ सतसंग करने का संकल्प किया और पालकी में बैठकर उस खँडहर को प्रस्थित हुआ। हुजरे के द्वार पर पहुँचकर, जो फीरोज शाह की मस्जिद के उत्तर पूर्व कोने में था, उस कश्मीरी ने बादशाह के शस्त्र ले लिए और द्वार बन्द करके अँदर ले गया। जब सहायतार्थ खिल्लाहट सुनने में आई, तब बादशाह के जमाई मिरजा बाबर ने अपूर्व

वीरता का परिचय दिया। उसने हमला करके संतरी को घायल किया; और उसे पकड़कर बादशाह की डोली में सलीमगढ़ को भेज दिया गया। जब बादशाह अकेला और असहाय रह गया, तब एक राक्षस उज़बक ने, जो अंदर घुसा हुआ था, उसको कसकर पकड़ लिया और अभागों का सिर छुरे से काटकर धड़ से पृथक् कर दिया। मृत शरीर से शाही पोशाक उतारकर शिरविहीन धड़ को उसने खिड़की से यमुना की रेती में फेंक दिया, जहाँ से उसे घंटों पड़े रहने के बाद कश्मीरी ने उठाया।

गाज़ीउद्दीन ने जब अपने इस जघन्य कार्य की निर्विघ्न समाप्ति का संवाद सुन लिया, तब उसने सैयदों की सी चाल चलकर किसी को नाम मात्र का बादशाह बनाना चाहा। परन्तु अबदाली के सिर पर आ जाने से वह विवश होकर भरतपुर के जाटों के राजा सूर्यमल की शरण में चला गया। इसलिये अबदाली का कोप बेचारे निर्दोष दिल्ली-वासियों पर पड़ा, जिनका उसने तलवार और बन्दूक से विध्वंस कर डाला। अबदाली ने कुछ सेना लाल क़िले में रखकर उस उजड़े नगर का पीछा छोड़ा और अपनी पुरानी छावनी अनूपशहर को चला गया, जहाँ बैठकर उसने रुहेलों और अवध के नवाब से संधि की, जिसका अभिप्राय यह था कि हिंदुस्तान के समस्त मुसलमानों को मिलाकर इस्लाम के रक्षार्थ एक भारी और गहरी चोट चलाई जाय।

उधर मराठों और जाटों ने कदाचित् भगोड़े वजीर के फुसलाने से और विशेषतः देशभक्ति के उत्कृष्ट भाव से, जो हिंदू राजाओं में बढ़ रहा था, प्रेरित होकर एक विशाल सेना एकत्र की; और दिल्ली में आकर सुगमता से अपना अधिकार जमा लिया और नगर को पूर्णतया नष्ट कर डाला ।

अभी वर्षा ऋतु पूर्णतया समाप्त भी नहीं हुई थी कि अब-दाली ने अपनी छावनी उखाड़ दी और दुआब के ऊपरवाले भाग से कूच करके शत्रु के सम्मुख अपनी सेना को यमुना में डाल दिया; और उसे पार करके उसने करनाल के समीप नादिर शाह के पुराने रणक्षेत्र पर अपने मोरचे जमा दिए । इधर मराठों ने कुछ दूर दक्षिण को हटकर पानीपत में किला-बन्द पड़ाव डाला । बाहर के शत्रु का बल भी बिलकुल ही कम न था । इधर मराठों के पास पचपन हजार उत्तम घुड़-सवार रिसाले की भीड़, पन्द्रह हजार पैदल पलटन के साथ थी, जिनमें से अधिकतर दक्षिण में फ्रांसीसी ढंग की कवायद सीखे हुए थे । इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या बे-कवायदो बेड़ों की थी; और इन सब की संख्या तीन लाख सिपाहियों तक पहुँच गई थी । तोपों की श्रेणी भी उनके पास बड़ी भारी थी । उधर अफगानों के पास पचास हजार घुड़सवार सेना थी, जिसके सामने चालीस हजार हिन्दु-स्तानी पैदल पलटन थी । तोपों की दृष्टि से वे निर्बल थे ।

परन्तु लड़ाई के परिणाम में अफगानों की तोपों की न्यूनता

कुछ भी बाधक नहीं हुई। उन्होंने जो छावनी डाली, वह पोछे की ओर को खुली रखी थी। और उनके युद्ध करने की परिपाटी ऐसी श्रेष्ठ थी, जिसके कारण वे मराठों को चारों ओर से घेरने में समर्थ हुए और निरन्तर रसद भी बहुतायत के साथ पंजाब से मँगाते रहे। दो मास बहुत सी अनिश्चित छोटी छोटी लड़ाइयों का क्रमस्थिर रहने पर भूखों मरते हुए हिंदुओं ने अंत में तंग आकर तारीख ६ जनवरी सन् १७६१ को प्रातःकाल के समय एक बड़ा धावा करके भीषण मार काट की। किन्तु ऐसे विषम समय में एक साथ सब जाट उन्हें छोड़ कर चले गए। होलकर भी, जिसका सदैव नजीब उद्दौला के साथ मेल रहता था, थोड़े काल पोछे युद्ध स्थल से बिदा हो गया। पेशवा का पुत्र मारा गया; और सेनापति सहसा ऐसा गायब हुआ कि फिर उसकी कभी सुध ही नहीं मिली। मराठों को हटकर पानीपत ग्राम में शरण लेते ही बना, जहाँ दिन निकलते निकलते उनको मार काटकर रक्त की नदी बहाई गई। इस समस्त संग्राम में मराठों की हानि दो लाख के लगभग हुई।

अबदाली ने तुरन्त दिल्ली को कूच किया, जहाँ उसके पहुँचने पर मराठों की जो छावनी थी, वह टूट गई। वहाँ रहने का उसका यह अभिप्राय था कि अनुपस्थित अली गौहर के पास बुलाने के लिये दूत भेजे, जिसके बादशाह होने की उसने तोपों की सलामी करा दी थी। उसके लौटने तक

अस्थायी प्रबन्ध उसके सब से बड़े पुत्र मिरजा जघाँबस्त को समर्पित किया गया। नजीब उद्दौला पुनः अमीर उलूउमरा के पद पर बहाल किया गया। जो घजार्त खाली पड़ी थी, उस पर नवाब अवध को नियत किया। इस प्रकार प्रबन्ध करके अहमद खाँ अबदाली स्वदेश को लौट गया।

शाहजादे अली गौहर के लखनऊ पहुँचने का वर्णन पहले हो चुका है। लखनऊ में उस समय (सन १७६०) प्रसिद्ध सफदर जंग का पुत्र शुजा उद्दौला नवाब अवध था। वह योग्यता में अपने पिता के समान और वीरता में उससे बढ़ चढ़कर था। अपने पिता को स्वाधीन जागीर की गद्दी पर बैठने के समय वह तरुण था। भोग विलास में उसका मन बहुत लगता था; इसलिये पहले उसने उन वासनाओं को ही तृप्त किया। कहा जाता है कि वह बड़ा ही रूपवान, छुरहरा, लम्बा और सुडौल शरीर का था। उसकी बुद्धि भी अति तीव्र थी परन्तु मन तनिक चलायमान और चंचल था। मंत्र सभा में गम्भीर विचार प्रकट करने की अपेक्षा उसका स्वभाव रण के करतबों की और हो अधिक झुका हुआ था। शुजाउद्दौला को अपना प्रयोजन सिद्ध करने की नीति की अच्छी शिक्षा दी गई थी और वह उसे ग्रहण करने में तत्पर भी रहता था। शुजा का व्यवहार पिछले रहेले युद्ध में प्रशंसनीय नहीं रहा। वह अपने बिगड़े हुए बादशाह के भगोड़े पुत्र के पक्ष में निन्दा रहित रूप में होने के कारण उससे विशेष करके अप्रसन्न था। शाहजादे

ने उससे निराश होकर अपना मुँह एक और मनुष्य की ओर फेरा, जो नवाब के ही कुटुंब का था; और इलाहाबाद का जिला तथा किला जिसके अधिकार में था। उसका नाम मुहम्मद कुलीखाँ था। इस सरदार को शाहजादे ने अपने हस्ताक्षर से बिहार, बंगाल और उड़ीसा की नवाबी का शाही फरमान प्रदान किया। उस समय में ये प्रदेश कलकत्ते के अंगरेज व्यापारियों और नवाब अलावर्दी खाँ के पोते के बोच में होने-वाली लड़ाई के स्थल बने हुए थे। शाहजादे ने मुहम्मद कुलीखाँ को यह परामर्श दिया कि वह शाही झंडा खड़ा करके दोनों प्रतिरोधियों को दबा दे। यह शासक स्वयं ही साहसी और पराक्रमी था; और दूसरे उसके बन्धु नवाब अवध ने उसकी और भी पीठ ठोक दी थी। यह कार्य उसने बहुत ही पसंद किया, जिसका कारण आगे विदित हो जायगा। उधर बिहार में कामगारखाँ नामक एक शक्तिशाली कर्मचारी ने भी सहायता का वचन दिया। इस प्रकार सहारा पाकर नवंबर सन् १७५६ में शाहजादा सीमा की नदी करमनासा के पार उतर गया। यह ठीक वही समय था, जब उसके अभागे पिता के प्राण कष्टपूर्वक हर लिए गए थे, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

जब बिहार प्रांत के कुनोती ग्राम में शाहजादे के डेरे लगे हुए थे, तब वहाँ एक मास से अधिक व्यतीत हो जाने पर सन् १७६० में इस शोकजनक घटना का समाचार पहुँचा। शाहजादा तुरंत बादशाह बन गया; और उसने अपने उच्च साहस के

अनुकूल ही “शाह आलम” की उच्च उपाधि धारण की। उस समय के शाही लेखों से विदित होता है कि उसने यह आज्ञा दी कि उसके राज्याधिकार का प्रारंभ उसके पिता के बध होने के दिन से गिना जाय और इसको पुष्टि के निमित्त उसने फरमान जारी किए। सब पक्षवालों ने शीघ्र ही उसे बादशाह मान लिया। उसने अपनी ओर से भी शुजाउद्दौला को हत्यारे गाजीउद्दोन के स्थान में वज़ीर स्वीकार किया; और नजीबउद्दौला को, जो अबदाली का नियुक्त किया हुआ था, हिन्दुस्तान की सेना का अधिकार समर्पित किया।

इस प्रबंध से निवृत्त होकर बादशाह राजस्व संचय करने और बिहार में अपना जमाव जमाने में प्रवृत्त हुआ। वह इस समय एक लंबा शानदार पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था के लगभग का था, जिसकी चालढाल अपनी जाति की सी थी; और कुछ उसके निज स्वभाव की विशेषताएँ भी विद्यमान थीं। अपने पूर्वजों के सदृश वह पराक्रमी, धीर, तेजस्वी और दयालु था; परन्तु उसके जीवन के समस्त इतिहास से यह विचार प्रकट होता है—जिसकी पुष्टि उसके सब समकालीन वृत्तान्त भी करते हैं—कि उसके अवगुण इन गुणों की अपेक्षा कहीं अधिक थे। उसका साहस, उद्योग और शोल उचित पुरुषार्थ की अपेक्षा धैर्य के रूप में विशेषकर पाया जाता था, जिस बात की उस स्थिति में, जिसमें कि बादशाह उस समय था, पूर्णतया आवश्यकता थी। उसकी इस नम्रता ने, कि जिस किसी

ने जो चाहा, उसके साथ किया और उसने उसे क्षमा या उपेक्ष कर दिया, और प्रबल स्वभाववाले जो जो मनुष्य उसके निकट आते रहे, उनके कहने पर उसने तत्काल अपने कान दिए और कार्य कराया, बड़ी हानि को। उसका इस प्रकार का स्वभाव था कि जिसका सितारा जब चमका, उसके साथ वह तभी मिल बैठा। उसकी इन क्षणिक दुर्बल वासनाओं की पूर्ति ने उसकी आगामी उच्च आशाओं पर पानी फेर दिया।

पूर्वी सूत्रे इस समय क्लाइव के नियुक्त नवाब मीर जाफर खाँ के अधिकार में थे; और बिहार में रामनारायण नामक एक हिंदू व्यापारी राजा शासन करता था। इस अधिकारी ने मुर्शिदाबाद और कलकत्ते से अँगरेजों की मदद मँगाकर अपने बादशाह के कार्यों में बाधा डालने का प्रयत्न किया। परंतु बादशाही सेना ने उसे हराकर बड़ी क्षति पहुँचाई, जिसके कारण वह अभाग्य व्यापारी शरीर से घायल और मन में डरा तथा घबराया हुआ पटने में जा पड़ा, जिस पर मुगलों ने उस समय चढ़ाई करना उचित न समझा। इसी बीच में नवाब की फौज एक छोटी सी अँगरेजी सेना से मिलकर बादशाह के मुकाबले को चली, जिसने उस लड़ाई में, जो तारीख १५ फरवरी सन् १७६० ई० को हुई, बहुत नीचा देखा। इस पर बादशाह ने साहसपूर्वक बंगाली धावा करना विचार, जिसके द्वारा वह बंगाल की सेना का मार्ग उसकी राजधानी मुर्शिदाबाद के साथ काट दे और उसे उसके रक्षकों को अनु-

पस्थिति में अपने अधिकार में कर ले। परंतु उसके मुर्शिदाबाद पहुँचने से पहले ही तारीख ७ अप्रैल को अंगरेजों ने आक्रमण करके उसके पाँव उखाड़ दिए। उस समय फरांसीसों की एक लघु सेना, जो एक प्रसिद्ध सेनानो के अधीन थी, बादशाह के साथ मिल गई; इसलिये उसने बिहार में ही रहने और पटने पर घेरा डालने की चेष्टा की।

यह फरांसीसी टुकड़ी जो, बादशाह के साथ सम्मिलित हुई, लगभग सौ अफसरों और सिपाहियों की थी, जिन्होंने अब से तीन वर्ष पहले चन्द्रनगर को अंगरेजों के हाथ सौंपने से नहीं कर दी थी; और तब से वे चारों ओर देश भर में मारे मारे फिर रहे थे; और निर्दय विजयी क्लाइव उनको कष्ट देने के लिये उनका पीछा करता फिरता था। उनका प्रमुख चोर ला (Law) था, जिसने अपना और अपने अनुयायियों का कौशल और पुरुषार्थ बादशाह के चरणों में समर्पित करने में अधिक शीघ्रता की। उसका साहस उच्च और वह निर्भय था, परन्तु वह ऐसा न था कि ऐसा काम करने लग जाता, जिसके करने की योग्यता की उसकी बुद्धि साक्षी न देती। उसको शीघ्र ही बादशाह की दुर्बलता और मुगल सरदारों के कपट और नोच भावों का हाल भली भाँति मालूम हो गया; और जो भरोसा उसने कर रक्खा था, वह सब जाता रहा। ला ने फारसी इतिहास “सैर उल् मुताखरीन” के लेखक गुलाम हुसेन से इस प्रकार कहा था—

“जहाँ तक मुझे दृष्टिगोचर होता है, यही प्रतीत होता है कि पटने और दिल्ली के बीच में कोई राज्य स्थिर नहीं है। यदि ऐसा ही कोई मनुष्य, जैसा शुजाउद्दौला है, तन, मन, धन से मेरी मदद पर हो जाय, तो मैं न केवल अंगरेजों को ही मारकर भगा दूँगा, वरन् साम्राज्य का प्रबन्ध भी अपने हाथ में ही ले लूँगा।”

जब बादशाह अपने फ्रांसीसी साथियों सहित पटने पर घेरा डाले हुए पड़ा था, तब कप्तान नौक्स (Captain Knox) एक पलटन की छोटी सी सेना लेकर, जिसमें दो सौ गोरे भी थे, तेरह दिन के समय के अंदर तीन सौ मील की दूरी, जो मुर्शिदाबाद और पटने के बीच में है, तै कर गया और शाही कटक पर टूट पड़ा। उसने उसके बिलकुल पाँव उखाड़ दिए और उन्हें दक्षिण की ओर गया को भगा दिया। उस वक्त शाही सेना पर कामगारखाँ का अधिकार था: क्योंकि मुहम्मद कुलीखाँ इलाहाबाद को लौट गया था, जिसको शुजाउद्दौला ने मरवा डाला और जिसका प्रदेश तथा दुर्ग ले लिया। बादशाह जब दक्षिण की ओर पीछे को हट रहा था, तब अपने मन में इस आशा के पुल बाँधता जाता था कि समस्त देश को अपने पक्ष में खड़ा करूँगा। उसकी आशा इतनी तो सफल हुई कि खादिम हुसेन नामक एक और मुगल सरदार उसके साथ मिल गया। इस प्रकार कुमक पाकर उसने फिर पटने पर चढ़ाई की। नौक्स ने उसका मुकाबला किया,

जिसके साथ भी एक हिन्दू राजा, जिसका नाम शिताबराय था, सम्मिलित हो गया था। फिर भी बादशाह की हार हुई, जो अंत में इस भूमि को छोड़कर उत्तर की ओर भागा। अंगरेजों तथा बंगाल के नवाब की समस्त संयुक्त सेना उसका पीछा किए चली आ रही थी। परन्तु नवाब का पुत्र जूलाई में बिजली गिरने से मर गया; इसलिये यह मित्र दल पटने की छावनी को लौट गया। उधर हठीले बादशाह ने फिर अपने मोरचे पुरानी छावनी गया में लगा दिए।

इस कारण सन् १७६१ के आरम्भ में संयुक्त अंगरेजी और बंगाली फौज फिर मैदान में उतरी; और उसने शाही लश्कर से उसके शिविर के समीप मुकाबला करके उसे पुनः पराजित किया। इस लड़ाई में ला कैद कर लिया गया, जो अंत समय तक बराबर लड़ता रहा। इस पर भी उसने अपनी तलवार देने से नहीं कर दी, जो उसके पास रहने दी गई।

दूसरे दिन प्रातः काल अंगरेजी सेनाध्यक्ष ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम किया, जो दो वर्ष से अधिक काल तक निरन्तर व्यर्थ युद्ध करते करते थक गया था, और जिसने प्रसन्नतापूर्वक हिन्दुस्तान की ओर प्रस्थान किया। इस समय उसने पानोपत के युद्ध और अबदाली द्वारा साम्राज्य के फिर जीत लेने के विचार का वृत्तान्त सुना। और निश्चय ही बादशाह अंगरेजों की संरक्षता में दिल्ली में तुरंत पुनः स्थापित हो गया होता, किंतु मीर कासिम को ईर्ष्या

के कारण ऐसा न हो सका. जिसे अंगरेजों ने परिवर्तन करके मीर जाफर के स्थान में नवाब बना दिया था । सूबेदारी मीर कासिम के नाम बादशाह ने भी स्वीकार कर ली और आर्थिक प्रबन्ध भी उसको सौंपा गया । यह समस्त कार्य अंगरेजों के इच्छानुसार ही हुआ था । बादशाह को तो केवल चौबीस लाख रुपए वार्षिक कर की आय का दिया जाना स्थिर हुआ था ।

उस समय इससे पूर्व कि अंगरेजों को हिन्दुस्तान के मामलों में हाथ डालने का अवसर प्राप्त हो, उनको बहुत काम करना और बड़ा कष्ट सहना पड़ा था । बादशाह को भी अनेक विलक्षण परिवर्तनों में होकर निकलना पड़ा; तब कहीं वह उनसे अपने बाप दादों के महल में मिल सका । उत्तर पश्चिम के मार्ग में जाते हुए वह अधर्मी वज़ीर अब्दुल के नवाब के फन्दे में फँस गया, जिसको अब्दाली का यह आदेश मिला था कि सब प्रकार से बादशाह की सहायता करना । परन्तु उसने इस आज्ञा का इस भाँति पालन किया कि उसको दो वर्ष से ऊपर आदरपूर्वक हवालात में बादशाहत के उपरी चिह्नों से सुसज्जित कर कभी बनारस में, कभी इलाहाबाद में और कभी लखनऊ में रक्खा ।

इसी बीच (सन् १७६३) में अखेट मूर्ख सैनिकों ने, जो भारत में अंगरेजी साम्राज्य की नींव जमा रहे थे, अपने पुराने यन्त्र मीर कासिम को बंगाल की मसनद पर से हटाना उचित

समझा। उनकी समझ में इस परिवर्तन का मूल कारण वह कठोर पत्र था, जो क्लाइव के पक्ष वालों ने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors, अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी की सदर कचहरी, जो लन्दन में थी) के नाम भेजा था और जिसने उन्हें सेवा से निकलवा दिया था। उनका जो प्रतिरोधी नवाब के दरबार में प्रतिनिधि के रूप में शक्ति को प्राप्त हुआ, वह मिस्टर एलिस (Mr. Ellis) था, जो उन सब में अत्यन्त उग्र स्वभाव का था, और जिसके व्यवहार का थोड़े ही दिनों में यह परिणाम हुआ कि रेजिडेंट, और उसके समस्त कर्मचारियों तथा अनुचरों की अक्तूबर सन् १७६३ में हत्या हो गई। यह घोर हत्या कांड पटने में हुआ, जिस नगर पर अंगरेजों ने चढ़ाई की और गोले बरसाए। इस घटना का वास्तविक कारण फ्रांसोसी और जर्मन मिश्रित वंश से उत्पन्न वाल्टर रेनहार्ड (Walter Renhardt) नामक एक मनुष्य था, जो पीछे समरू के नाम से बहुत विख्यात हुआ।

(२) वाल्टर रैनहार्ड अथवा समरू का जीवन चरित्र

परिचय

पिछले अध्याय में जो कुछ वर्णन हो चुका है, वह मुगल साम्राज्य और उसके पतन का संक्षिप्त इतिहास उस स्थल तक है, जहाँ से हमारे उपर्युक्त नायक के कार्यों का उल्लेख प्रारंभ होता है। तथापि समरू के जीवन की सभी घटनाएँ जो इस खंड में लिखी जायँगी, प्रायः मुगलों के पतन के अंतर्गत हुई हैं, तथापि उन सब का घनिष्ठ संबंध विशेषतः उस क्रम की अपेक्षा जो पीछे प्रचलित रहा है, अधिकतर उसके अस्तित्व के प्रति ही है। इसलिये यहाँ से दूसरा प्रसंग आरंभ होता है।

जन्मभूमि, भारतागमन और नाम-परिवर्तन।

वाल्टर रैनहार्ड का जन्म ट्रेवज़ ✽ (Treves) स्थान में जो

* “मुगल एम्पायर” नामक पुस्तक के लेखक हेनरी जार्ज क्रीन साहब और “ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी” के रचयिता थामस विलियम वेल साहब ने उपर्युक्त समरू के केवल निवास का नाम लिखा है, परंतु पादरी डब्ल्यू कींगन साहब अपनी पुस्तक “सिधनी” नामक में इसके अतिरिक्त यह और प्रकट किया है कि हसी ने उसको वेवेरिया देश के टिरोल के इलाके (Bavarian Tyrol) ज़ुबर्ग (Saizburg) का निवासी भी बतलाया है।

लक्ज़म्बर्ग की जागीर (Grand Duchy of Luxemburg) के अंतर्गत हुआ था। खेद है कि उसकी जन्म-तिथि का पता नहीं मालुम हो सका। उसका जन्म दो भिन्न वंशों के माता पिता से हुआ था, जिसके विषय में अँगरेज़ लेखकों ने बहुत विष उगला है।

वाल्टर रैनहार्ड फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़ांजी बेड़े में मल्लाह बनकर भारतवर्ष में आया था। उसका रंग कुछ काला और धुँधला सा था, जिस कारण उसके साथी उसके सौम्रे (Sombre, जिसका अर्थ काला या धुँधला होता है) कहते थे। उनको देखादेखी भारतवासी भी उसे समरू अथवा समरू कहने लगे। अतएव भारतवर्ष में सर्वत्र उसका नाम समरू ही विख्यात हो गया। पादरी कीर्गन के मतानुसार उसका यह दूसरा नाम उस समय प्रचलित हुआ, जब वह नवाब मोर कासिम के यहाँ था।

प्राथमिक वृत्तान्त

समरू ने भारतवर्ष आने पर जहाज़ी बेड़े की सेवा त्याग दी और वह बंगाल को चला आया। बंगाल में उस समय पहले पहल जोरों की एक पल्टन खड़ी हुई थी। समरू उसमें भरती हो गया। परंतु उसने उसकी सेवा भी छोड़ी और फ्रांसीसी छावनी चन्द्रनगर में पहुँचकर वह वहाँ साज़ेंट हो गया। जब क्लाइव ने मई सन् १७५७ में उदासीनता स्थिर

रखने की संधि भंग करके चन्द्रनगर का फरांसीसी उपनिवेश जीत लिया था, उस समय समरू उन फरांसीसियों में से था, जिन्होंने ला साहब की अध्यक्षाता में आत्म-समर्पण करने से नाहीं कर दी थी और जो फिर बहुत समय तक मारे मारे फिरते रहे थे ❁। जब सन् १७६१ में वीर चूड़ामणि ला पकड़ा गया, जिसका वर्णन पीछे हो चुका है, तब समरू ने बिहार के शासक मीर कासिम के आरमी जनरल ग्रैगोरी (Gregory) अथवा गुर्जनिसाँ की सेवा ग्रहण की। उस समय बिहार प्रान्त की राजधानी पटना में थी। समरू ने नवाब मीर कासिम की सेना को यूरोपियन ढंग की शिक्षा दी। एक ब्रिगेड (Brigade) वह स्वयं अपने अधिकार में रखता था। जब नवाब और अंग्रेजों के बीच में भगड़ा हुआ, तब वह समस्त सेना का सेनापति नियुक्त हुआ।

२ अगस्त सन् १७६३ को वह गैरियाह (Geriah) की लड़ाई लड़ा। यह युद्ध उन सब से अधिक भयंकर था, जो अब तक अंगरेजों को देशी सेनाओं से करने पड़े थे। निरंतर चार घंटे तक संग्राम होता रहा। अंगरेजों पंक्ति तोड़ दी गई; दो तोपें उसके हाथ से निकल गई और ८४ वीं गोरो पलटन नष्टप्रायः हो गई।

* इसी बीच में समरू सन् १७६० में पुरनिया के फौजदार खादिमहुसैन खॉ के पास रहा था।

अंगरेजों से बैर का कारण

जिन लोगों को इंग्लैंड के इतिहास का परिचय है, वे भले प्रकार जानते हैं कि अंगरेजों और फ्रांसीसियों के बीच में बड़ी पुरानी शत्रुता है और एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। इन दोनों जातियों की प्रतिद्वन्द्विता भारत में भी हो गई; इस कारण इनमें यहाँ भी नित्य नया उपद्रव होने लगा।

कुछ भी हो, समरू भी फ्रांसीसी हो था। उसके स्वभाव में भी न्यूनाधिक वही गुण विद्यमान थे, जो उसके जातिवालों में थे; इसलिये उसका अंगरेजों से बैर भाव रखना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त चन्द्रनगर के अंगरेजों के अधिकार में आ जाने पर उसने अपने देशवासियों की जो शोचनीय और करुणाजनक दशा देखी थी; और वीरवर ला के साथ स्वयं बराबर तीन वर्ष के दीर्घ काल तक इधर उधर क्लाइव के डर से मारे मारे भटकते फिरने में नाना प्रकार के जो दारुण कष्ट सहें थे, वे भी कदाचित् उसकी स्मृति से लुप्त नहीं हुए थे। उसको नवाब मोर कासिम की सेवा में प्रविष्ट होने का अवसर सहज ही में मिल गया, जो अंगरेजों के अपने साथ विश्वासघात करने, उनके कपट करके पटना ले लेने और पुनः पीछे से मुँगेर खो बैठने से अपार क्रोध के आवेश से अंधा हो रहा था। तभी तो उस पर यह लोकोक्ति सर्वथा चरितार्थ हो गई थी कि “एक तो कड़वा करेला और दूसरे नीम चढ़ा”। जो अंगरेज कैदी गैरियाह की

लड़ाई में नवाब के हाथ पड़ गए थे, उन्हें वह अपने साथ पटने ले आया और फिर उनका बध कर दिया। कहते हैं कि इस भीषण हत्या-काण्ड का करनेवाला समरू ही था। यद्यपि यह घोर अपराध समरू के माथे मढ़ा जाता है, परन्तु पादरी वकील साहब का कथन है—“वास्तव में इस घृणित अभियोग की पुष्टि में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है *।” पटना नगर

* इस दुर्घटना के विषय में प्रिंसिपल श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० एल० टी० ने प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका “माधुरी” की आवण तुलसी संवत् ३०२ धी संख्या में निम्न लिखित वर्णन किया है—

“पटने में मुख्य अंगरेज कर्मचारी मि० एलिस थे। इन्हीं की स्वार्थपूर्ण नीति और कट्टरपन के कारण इस युद्ध का आरंभ हुआ था; क्योंकि यह चाहते थे कि मीरकासिम अंगरेजों के माल पर कर लगावे। किंतु जब मीरकासिम ने हिन्दुस्तानियों के माल पर से भी कर उठा लिया, तब वे बड़े नाराज हुए; क्योंकि इससे अंगरेज और हिन्दुस्तानी व्यापार में समान हो गए और अंगरेजों को नाजायज लाभ उठाने का मौका न रहा। अतएव बहुत से अंगरेजों ने मीरकासिम के विरुद्ध होकर उन्हें गद्दी से उतार देने का प्रयत्न करना शुरू किया। मि० एलिस उन अंगरेजों में मुख्य थे। कलकत्ते की कौंसिल में उनका प्रभाव था और मीर कासिम का विश्वास था कि उन्हीं के कारण यह युद्ध छिड़ा है। अतएव जब पटने की विजय के बाद मि० एलिस प्रायः दो सौ अंगरेज पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के साथ कैद हो गए, तब मीर कासिम ने सब विपत्तियों के मूल कारण को उसके साथियों समेत मार डालने का निश्चय किया। उन अंगरेज कैदियों में सिर्फ डाक्टर फुलर्टन छोड़ दिए गए; क्योंकि मीर कासिम उनके अनुगृहीत थे। किंतु किसी हिन्दुस्तानी ने यह हत्या करना स्वीकार नहीं किया। अंत में मीर कासिम ने समरू से कहा। समरू तत्काल राजी हो गया और उसने अपने कुछ साथियों की सहायता से उन सब का बध कर डाला। स्वयं उसने प्रायः छेड़ सौ अंगरेजों का बध किया।”

में उस समय अंगरेजों की जो गोरी और काली सेनाएँ थीं, उनमें भयंकर विद्रोह उत्पन्न हो गया। ११ फरवरी सन् १७६५ को गोरी पलटन के सिपाहियों ने शस्त्र उठा लिए। उन्होंने अपनी बन्दूकें भरकर और संगीनों चढ़ाकर तोपखाने के मैदान को अपने अधिकार में कर लिया और बनारस को कूच कर दिया। यद्यपि उनमें से अंगरेज सैनिकों को जैसे तैसे समझा बुझाकर जाने से रोक लिया और लौटा लिया गया, तथापि अन्य दो सौ से अधिक देशी विदेशी सैनिकों ने न माना और अपना कूच जारी रक्खा। तब उनको समरू ने उपदेश देकर नवाब की सेना में नियुक्त कर लिया। अंगरेजों की दृष्टि में समरू का यह अपराध अक्षम्य था, जिससे वह उनका चिर-शत्रु हो गया; और इसके पीछे अंगरेजों ने देशीय शक्तियों से जो सन्धियाँ कों, उनमें सब से पहली शर्त यही थी कि समरू को सौंप दो, अथवा पकड़वा दो। नवाब मोरकासिम और अंगरेजों के मध्य में जो जो सग्राम हुए, उनमें सदैव समरू की जीत हुई। परन्तु अंत में बक्सर* की जो अशुभ लड़ाई तारीख २३ अक्तूबर

* ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के लेखक ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है कि बक्सर वाले युद्ध के कुछ समय पहले समरू धोखा देकर कासिमअली खाँ के पास अपनी पलटन सहित चला गया था और नवाब शुजा उद्दौला की सेवा में प्रविष्ट हो गया था। नवाब शुजा उद्दौला ने उसे घूस देकर अपनी ओर कर लिया था। बक्सर में नवाब का पराजय होने पर बेगमों की रक्षा का कार्य उसको सौंपा

सन् १७६५ को हुई, उससे नवाब का बल टूट गया और समस्त बंगाल पर अंगरेजों का अधिकार हो गया ।

अवध के नवाब शुजाउद्दौला का आश्रय

बक्सर में पराजय हो जाने से नवाब मीरकासिम के पाँव बंगाल से उखड़ गए और उसने इलाहाबाद का मार्ग पकड़ा । समरू भी अपना पटना को लेकर उसके साथ चला । जब वे वहाँ पहुँचे, तो उन्हें सम्राट् शाह आलम और वज़ीर (अवध का नवाब शुजाउद्दौला) छावनी डाले हुए मिले । इतने समय के लिये, जब कि शान्ति के निमित्त सन्धि की बात चलती रही, समरू को बुँदेलखंड के उन राजाओं को, जो बादशाह से फिर गए थे, दंड देने और भू-कर एकत्र करने के प्रयोजन से नियुक्त किया गया । बादशाह और वज़ीर ने अंगरेजों के साथ अहद पैमान तो कर लिए, परन्तु नवाब मीरकासिम को उन्होंने उसके भाग्य पर ही छोड़ दिया, जो लाचार रुहेलखंड के सरदार रहमतखाँ के पास भाग गया । समरू भी अपने गोरे साथियों को लेकर वहीं गया । नवाब के ज़िम्मे फौज का जो शेष वेतन था, वह उसने वहाँ से प्राप्त किया । तदनन्तर वे यह सोचने लगे कि किस प्रकार

गया । नवाब के यहाँ से समरू उस समय डर के मारे चला गया, जब कि उसने अंगरेजों से संधि कर ली । फारसी की “मिफताह-उत्तबारीख” बक्सर उसकी लड़ाई की जो नवाब शुजा उद्दौला और अंगरेजों में हुई थी, पुष्टि करती है ।

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के डाह भरे द्रोह से छुटकारा मिले, जो उनके रहने के स्थानों के नवाबों और राजाओं को बलपूर्वक दबा रही थी कि वे उन्हें पकड़कर हमें सौंप दें। इस विषम परिस्थिति में भिन्न भिन्न जातियों के उन तीन उ

समरू की आह्वा से भरतपुर को कूच किया ; क्योंकि यह स्थान उस समय अंगरेजों के प्रभाव से बहुत दूर और अलग था । इस काल में मुगल साम्राज्य के अधिकार से बंगाल और दक्षिण के प्रदेश निकल चुके थे; और मराठे, जाट, रुहेले तथा सिख हिन्दुस्तान में भी उसको तोड़ फोड़ रहे थे और एक दूसरे के विरुद्ध अधिक भूमि दबाने के हेतु भगड़ रहे थे समरू ने अपने लिये यह अच्छा अवसर देखा और अपने आप एक सेना दल खड़ा किया, जिसमें चार बलटन, एक रिसाला और चार तोपें थीं । इस सेना की कमायद, परेड और सजावट युरोपियन ढंग पर की गई और इसके समस्त अफसर भी युरोपियन ही नियुक्त किए गए । समरू अपनी इस फौज को किराए पर चलाने लगा । कभी उसने अपनी फौज एक राजा को दे दी, कभी दूसरे राजा को दे दी। परन्तु सात आठ वर्ष तक वह अधिकतर भरतपुर या जयपुर के राजा से ही वेतन लेता रहा ।

* फारसी मिफ्ताह उतबारोख में लिखा है कि समरू समस्त शर्कों अर्थात् तोप, बन्दूक, गोले-गोली और बारूद को, जो नवाब कासिम अली खॉ उसके अधिकार में दे गया था, लेकर आगरे की ओर चलता हुआ ।

• जाटों के राजा सूर्यमल का साहस

पिछले पृष्ठों में अब तक समरू के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, उसमें विशेषकर स्वयं उसके निजी विषय में ही अधिक वर्णन हुआ है। परन्तु जब उसने भरतपुर नरेश की सेवा ग्रहण कर ली, तब उसके उस समय के जीवन का वृत्तान्त जो कुछ प्राप्त होता है, वह उस राज्य के इतिहास में ही अधिक सन्निविष्ट है; इसी लिये अब उसका उल्लेख किया जाता है। इस दृष्टि से यह कदाचित् प्रसङ्गान्तर न समझा जायगा।

जब जाटों का राजा सूर्यमल पानीपत की विपदा से अपने मित्र हुलकर की भाँति बचकर चला गया, जिसका वर्णन पहले पृष्ठ ३८ में हुआ है, तब उसने शीघ्र ही वहाँ के भराटे शासक से आगरे के महत्त्वशाली दुर्ग को खाली कराने का प्रयत्न किया, और मेवाड़ देश में अनेक सुदृढ़ स्थान अपने अधिकार में कर लिए। प्रायः इसी समय के लगभग उस बुद्धिमान् और व्यवहार-कुशल राजा ने गाज़ी-उद्दीन के पराजित पक्ष को विसर्जन किया; क्योंकि उसकी नीति की रीति सूर्यमल को अति कठोर प्रतीत होती थी। इसी अवसर पर समरू अपने दल बल सहित आकर उससे मिल गया।

सूर्यमल को यह सहायता क्या प्राप्त हुई कि वह फूलकर कुप्पा हो गया, जिसके कारण उसकी दूरदर्शिता और कुशल

बुद्धि का हास होने लगा। उसने बादशाह के सामने पेसी माँग पेश की, जिससे रहे सहे मुगल साम्राज्य के छोटे छोटे टुकड़े भी नष्ट हो जायँ। परन्तु नजीबउद्दौला ने पेसी गहन परिस्थिति में बड़ी तत्परता और कार्य-कौशल का परिचय दिया। निकट-वर्त्ती मुसल्मान सरदारों के पास इस्लाम और सल्तनत के सहायतार्थ आने का निमंत्रण भेजकर वह स्वयं मुगलों की एक छोटी सेना, परन्तु सुशिक्षित सेना अपनी अध्यक्षता में लेकर रण-क्षेत्र में उतर पड़ा; और उसे पेसा अवसर भी प्राप्त हो गया कि लड़ाई की मार से ही निर्णय कर दे।

इस संग्राम में वजीर का फर्रुखनगर और बहादुरगढ़ के बिलोची सरदारों से बड़ा मेल हो गया, जो यमुना के दोनों तटों पर उत्तर की ओर दूर तक, अर्थात् पूर्व में सहारनपुर तक और पश्चिम में हाँसी तक, उन दिनों सर्व शक्तिशाली थे। सूर्यमल और मुगलों के बीच में बैर उत्पन्न होने का यह कारण था कि सूर्यमल ने फर्रुखनगर के छोटे जिले की फौजदारो (सैनिक अधिकार) माँगी थी। नजीबख़ाँ ने जाट राजा से शोध ही बिगाड़ करना ठीक नहीं समझा; इसलिये उसने पहले अपना एक दूत सूर्यमल के पास यह समझाने के हेतु भेजा कि जिस भूमि का अधिकार वह चाहता है, उसमें वह भूमि सम्मिलित है, जो बिलोची सरदार के अधिकार में है; इसलिये पहले उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाय। मुगल दूत और जाटपति के बीच में जो अद्भुत वार्त्ता हुई, वह भी

उल्लेख योग्य है। एलची जब राजा के समीप गया, तब उसने प्रचलित प्रथा के अनुसार अपनी भेंट उपस्थित की, जिसमें एक सुंदर फूलदार छींट का थान भी था, जिसे देखकर गँवार नरेश इतना अधिक मग्न और मोहित हुआ कि तुरंत ही उसने उसके वस्त्र सिलवाने की आज्ञा दे दी। जाट महीपति ने उस समय जो कुछ वार्त्तालाप किया, वह केवल उस थान के विषय में ही किया; और दूसरी बात करने का दूत को अवसर ही नहीं दिया। इसलिये दूत ने अपने मन में यह सोचकर बिदा माँगी कि संधि के संबंध में किसी दूसरे समय चर्चा करूँगा। चलते समय उसने कहा—“ठाकुर साहब, जल्दी में कुछ न कर बैठना। मैं कल तुम से फिर मिलूँगा।” परन्तु मुग्ध नरेश ने उत्तर दिया—“जो तुम्हें ऐसी ही बातचीत करनी है, तो फिर मुझ से मत मिलो।” अप्रसन्न दूत ने जान लिया कि जो यह कहता है, वही करेगा; इसलिये लौटकर नजीबउद्दौला के पास आ गया और भेंट की समस्त कथा उस से वर्णन की। मंत्री ने कहा—“अगर ऐसा मामला है, तो हम अवश्य काफिर से लड़ेंगे और उसे दंड देंगे।”

परन्तु मुगलों का प्रधान सेना दल अभी दिल्ली से बाहर निकलने भी न पाया था कि सूर्यमल ने शाहदरे के निकट हिंडुन पर, जो दिल्ली से छः मील की दूरी पर ही है, आकर अपने चरण आरोपित किए। यदि उसमें पूर्व काल की सो दत्त बुद्धि स्थिर रही होती, तो वह तुरंत ही शाही लश्कर

को दिल्ली की शहर-पनाह की दीवारों के अंदर घेरकर बंद कर देता। किंतु जिस स्थान पर वह आया था, वह पुरानी शाही शिकारगाह थी। उसका विशेषतया इस भूमि पर आने में अपने पराक्रम का यह कौतुक दिखाने का प्रयोजन था कि हमने शाही शिकारगाह का शिकार कर लिया। इस कारण उसके साथ केवल उसके शरीररत्नक अनुचर वर्ग ही आए थे। जब वे अचेत होकर टटोल और खोज कर रहे थे, तब मुगल रिसाले का एक दस्ता भागता हुआ आ पहुँचा। उसने राजा को पहचान लिया और अचानक जाटों पर दूटकर सब के सब को मार डाला और राजा की लाश उठाकर नजीब-खाँ के पास ले गया। पहले तो वजीर ने इस अकस्मात् सफलता पर विश्वास ही नहीं किया। पर जब उस दूत ने, जो थोड़े समय पहले जाटों के शिविर से लौटकर आया था, लाश के उन कपड़ों को देखकर अनुमोदन किया, जो उस छींट के थान के बने हुए थे जिसको उसने स्वयं भेंट किया था, तब उसे निश्चय हुआ।

इसी बीच में जाट सेना अपने मनमाने झूठे संरक्षण में सूर्यमल के पुत्र जवाहरसिंह के नीचे सिकन्दराबाद से कूच कर रही थी कि उस पर अचानक मुगल सेना के हिरावल या अगले भाग ने छापा मारा जिसके एक सवार के बल्लम पर सूर्यमल का कटासिर भंडे के स्थान में लगा हुआ था। इस अमङ्गल दृश्य के देखने से जो हलचल मची, उसने सब

जाटों के पाँव उखाड़ दिए, जिससे वे हटकर अपने देश को आ गए ॥ ।

राजा जवाहरसिंह की विफल चढ़ाई

जाटों को अपने प्रयत्नों में इस प्रकार विफलता होने पर एक और उलटी सूझ सूझी । उन्होंने मल्हारराव होलकर से मित्रता कर ली, जो गुप्त रूप में मुसलमानों से मिला हुआ था । पहले तो उनको बड़ी सफलता प्राप्त हुई और तीन मास तक मंत्री को दिल्ली में उन्होंने घेर रक्खा †; किन्तु होलकर उन्हें सहसा छोड़कर चलता फिरता बना । तब तो उनका घमंड

* वह स्त्री जो पीछे समरू की बेगम के नाम से प्रसिद्ध हुई, इसी समय दिल्ली में समरू के हाथ आई, जिसका सविस्तर वृत्तान्त आगे मिलेगा ।

† उपर्युक्त वृत्तान्त अंगरेजी पुस्तक “मुगल एम्पायर” के अनुसार है । परन्तु इस घटना का वर्णन मुनशी ज्वालासहाय जी—भरतपुर राज्य के स्थानीय इतिहास-वेत्ता—अपनी पुस्तक “विकाये-राजपूताना” में इस भाँति करते हैं—

“नजीबख़ाँ ने जिसको नजीबउद्दौला भी कहते थे, याकूब अलीख़ाँ बिर दर बज़ीर शाह अब्दाली को मय राजा दिलेरसिंह खेतकी के सुलह के वास्ते महाराजा सूरजमल के पास भेजा । वह एक थान छोट मुलतान का लेकर हाजिर हुआ । महाराजा साहिब उस तोहफे से इस कदर खुश हुए कि उसी बक्त पोशाक तैय्यार कराई; मगर सुलह मंजूर न की । करम अल्लख़ाँ मौलमिद नजीबउद्दौला ने कि याकूबख़ाँ के साथ आया था, वापस जाकर नवाब नजीबउद्दौला को जंग पर आमदा किया । उसने अपने अजीज़ व अकारब मिस्ल अफ़ज़लख़ाँ व सुल्तानख़ाँ व ज़ास्ताख़ाँ बगैरह व नीज़ अफ़सरान फौब शाही मिस्ल सभादतख़ाँ अफरीदी व सादिक् मुहम्मदख़ाँ बंगरा बगैरह को लड़ाई के वास्ते आसूब दर्याय जमन भेजा । महाराजा सूरजमल साहिब ने

टूट गया और दबकर सन्धि करनी पड़ी और वे अपना सा मुँह लेकर घर लौट आए * ।

मय लाला नाहरसिंह साहब उसी तरफ जाकर हिंदन नदी पर मोरचे लगाए । फौज शाही का कयाम शाहदरे में रहा । मनमाराम हिरावल फौज महाराजा साहब का अब्बल मुकाबला हुआ । अफजल खों उससे शिकस्त खाकर भागा । महाराजा साहब कलील जमैय्यत के साथ एक तरफ मैदान जंग से अलहदा खड़े हुए तमाशा देख रहे थे । बावजूदे कि इकीम अल्लहखों व मिर्जा सैफअल्लाह ने अर्ज की कि इस मौके पर आपकी मुस्तसर जमैयत से ठहरना मुनासिब नहीं है, मगर बदस्तूर खड़े रहे । इत्तफाकन् सेदूखों बिलोक पचास सवारों से मफरूर होकर उसी तरफ से लशकर-ए-नजीबउदौला को जाता था कि उसके राहियों में से किसी ने महाराजा साहब को पहचान लिया और सब एक बागगी हमला-आवर हुए । उनके हारवे से महाराजा सूरजमल साहब ने व मिति पूस वदी १२ संवत् १८२० इस जहान फानी से रहलत फरमाई । इस वाके से दिल शिकस्ता होकर लाला नाहरसिंह साहब ने कुम्हेर को मुराजअत की ।”

* बिकाये राजपूताना में इस युद्ध का उल्लेख इस रीति से किया गया है—
लाला साहब मौसूफ (अर्थात् जवाहरसिंह) मय फौज दीग को खाना हुए और बाद अदाय मरासम मातमी मसनद नशीन रियासत हुए । संवत् १८२१ में महाराजा जवाहरसिंह साहब ने नबाब नजीबउदौला से इन्तकाम लेने की नोअत से देहली पर अजीमत की । चूँकि उस ज़माने में सिखों का फौज की बहादुरी व जवाँ-मर्दी की बहुत शोहरत थी, महाराजा साहब ने बघेलसिंह व जस्तासिंह व चरसासिंह सिख सरदारान को बज्मैय्यत पैंतीस हजार सवारों के ब तक्रूर फी सवार एक रुपिया यूमिया तलब किया, और उन्हीं अय्याम में समूह साहब फरसीस को नौकर रक्खा, और बक्रार दाद मुबलिय पाँच लाख रुपए महाराजा मल्हारराव होलकर व दांगर सरदारान दक्कन को शामिल किया । इस फौज से महाराजा साहब ने देहली का महासरा किया और अर्सह दो साल तक हंगामह-ए-कारज़ार गरम रक्खा ।

१ सन् १७६८ ई० में राजा जवाहरसिंह पुकर के ज्ञान के लिये गए। वहाँ जोधपुर के राठ्याधिपति महाराज विजयसिंह से उनकी भेंट हुई। लौटती बार उनका विचार था कि जयपुर राज्य पर आक्रमण करें; किंतु जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह को उनके इस संकल्प की सूचना पहले ही राव राजा प्रतापसिंह* द्वारा मिल गई थी; और इसलिये उन्होंने सत्तर

आखिरकार नवाब नजीबखॉ मल्हारराव होलकर की मारफत महाराजा साहेब ने आकर और शमशेर नज़र करके सुलह की।

* महाराव राजा प्रतापसिंह जी राव राजा मुहम्मदसिंह जी के पुत्र थे, जिनका जन्म मिति ज्येष्ठ कृष्ण ३ संवत् १७६७ को हुआ था। कहा जाता है कि महाराव राजा प्रतापसिंह के प्रताप उदय होने के विषय में एक सती ने उनके पूर्व पुरुष राव कल्याणसिंह से पहले ही सं० १७२८ में यह भविष्यवाणी की थी—

दोहा—जाओ बसो अब देश में राव कल्याण जी आप।

आगे कुल में होंगे प्रतापीक प्रताप ॥

राव प्रतापसिंह की जयपुर राज्य में ढाई गाँव की (अर्थात् राजगढ़, माचहड़ी और आधा रामपुर की) मौरूसी जागीर थी। “होनहार बिरवान के होत चोकने पात” वीली लोकोक्ति के अनुसार वे बाल्यावस्था से ही बहुत चतुर और योग्य प्रतीत होते थे; और शीघ्र ही उन्होंने जयपुर राज्य में बड़ा सन्मान और उच्च आसन प्राप्त किया। संवत् १८२२ में ज्योतिषियों ने जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह जी से विनय की कि राव प्रतापसिंह जी माचहड़ीवाले की आँखों में चक्र है; और यह चिह्न प्रतापी और ऐश्वर्यवान् होने का है। निश्चय ही वे आपके राज्य में उपद्रव खड़ा करके स्वाधीन होंगे। यह सुनकर महाराजा माधवसिंह जी दुःखी हुए और राव राजा प्रतापसिंह जी से मन में ईर्ष्या रखने लगे। एक दिन साथ साथ दोनों आखेट करने गए थे। किसी ने महाराज की अनुमति से इस प्रकार गोली चलाई कि वह

हज़ार के लगभग सेना तैयार करके घाटे मानोडह और मँडोली में, जो जयपुर से चौदह कोस पर है, भेज दी थी जिसने अचानक जाट राजा पर आक्रमण किया। राजा जवाहरसिंह को ओर से जो सेना इस समय अपनी रक्षा के निमित्त लड़ी, उसमें समरू भी अपनी चार पल्टनें व आठ तोपें लिए उपस्थित था। इस युद्ध में भरतपुर को जयपुर ने बड़ी हानि

राव राजा महोदय के शरीर से लगती हुई गई, जिससे वे बाल बाल बच गए। तब उन पर बैर की समस्त वार्त्ता खुल गई और वे प्राणों के भय से जयपुर छोड़कर अपनी जागीर को चले गए। थोड़े दिन पीछे वे भरतपुर पहुँचे। भरतपुर नरेश महाराज जवाहरसिंह जी ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया और उनके लिये वेतन नियत करके दहड़ा ग्राम में, जो भरतपुर से सात कोस की दूरी पर पश्चिम में है, ठहराया। जब संवत् १८२४ में महाराज जवाहरसिंह जी ने पुष्कर जाना चाहा, तब उन्होंने बहाना करके विदा माँगी; क्योंकि उनको ज्ञात हो गया था कि पुष्कर जाने की चेष्टा जयपुर राज्य पर आक्रमण करने के हेतु है। यद्यपि महाराज माधवसिंह जी ने उनके प्रति असह्य व्यवहार किया था, परन्तु कुल मर्यादा की ओर ध्यान देकर उन्होंने उसका कुछ विचार न किया और सीधे जयपुर पहुँचकर उक्त जयपुर नरेश को सूचित और सचेत किया। इस पर वे बड़े प्रसन्न हुए और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। जब मानोडह के मैदान में जयपुर और भरतपुर की सेनाओं से लड़ाई हुई, तब रावराजा प्रतापसिंह जी ने भी जयपुर के पक्ष में बड़ा वीरता से युद्ध किया। नरूका ठाकुर तो इस संबंध में यहाँ तक कहते हैं कि यदि उनकी सहायता न मिलती, तो जयपुरवालों को पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता, जो ठीक ही है। तदनन्तर राव राजा प्रतापसिंह जी ने अलवर राज्य की नींव डालना प्रारम्भ किया और जयपुर तथा भरतपुर राज्यों की भूमि दबाकर स्वाधीन नरेश हो गए।

पहुँचाई। राजा जवाहरसिंह जान बचाकर अलवर होता हुआ अपनी राजधानी भरतपुर को लौट गया।

इस समय समरू ने राजा जवाहरसिंह का साथ छोड़ दिया और विजयी जयपुराधिपति की सेवा में प्रविष्ट हो गया। परंतु जयपुर में रहते हुए उसे अधिक समय व्यतीत न होने पाया था कि अंगरेज जनरल के जोर देने पर महाराज जयपुर ने उसे जयपुर से विदा कर दिया और वह पुनः भरतपुर में लौट आया।

भरतपुर में राव नवलसिंह के अधीन सेवा

राजा जवाहरसिंह का मितो श्रावण शु० १५ सं० १८२५ को देहांत हो गया था, जिसका संवाद पाकर राव रत्नसिंह दीग में आकर गद्दी पर बैठा। परंतु वह कुछ योग्य मनुष्य नहीं था; उसका समय व्यर्थ के कार्यों में नष्ट होता था। उसको वृन्दावन में एक गुसाई ने कपट से सं० १८२६ में मार डाला। तदनन्तर राजा जवाहरसिंह का दो वर्ष का दूध-पीता बालक कुम्हेरसिंह राजा हुआ। परंतु भरतपुर राज्य उन दिनों दोनों भ्राता राव नवलसिंह और राव रणजोतसिंह को लड़ाइयों का अखाड़ा बना हुआ था। पहले समरू राव नवल की ओर हुआ। राव रणजोतसिंह ने भी अपनी सहायता के लिये भारी पुरस्कार देकर मराठों और सिखों को बुला लिया। परंतु राव नवलसिंह के एक धावे ने सिखों की बीस हजार फौज को परास्त किया।

संवत् १८२८ में एक करोड़ रुपयों का वचन पाकर रामचंद्र गणेश ज़री टीका पेशवा, तुकोजी होलकर और महादजी सिंधिया की एक लाख सवारों की सेना ने लालसोट और बसोली के मार्ग से भरतपुर पर चढ़ाई की। यह समाचार पाकर राव नवलसिंह भी पचास हजार सवार और भारी तोपखाना समरू और मूसी की अध्यक्षता में और बीस हजार नागों की भीड़ लेकर उस स्थान पर शत्रु के संमुख आ डटा। पाँच छः दिन तक निरन्तर युद्ध होता रहा। बहुत से आदमी मारे गए। तदनन्तर राव नवलसिंह ने मराठों के अगुवों से यह कहला भेजा कि तुमको तो रुपए से प्रयोजन है; चाहे हम से लो अथवा राव रणजीतसिंह से। यदि यहाँ से कूच कर जाओगे, तो नियत रुपया तुमको हम मथुरा में दे देंगे। इस पर उन्होंने मथुरा को कूच किया। दानसहाय ने, जो गोवर्धन में स्थित था, मराठों की सेना पर आक्रमण किया। इसमें राव नवलसिंह का कपट समझकर मराठों ने धावा किया। राव नवलसिंह दोपहर तक लड़ाई करने के पश्चात् परास्त होकर भागा और अकेला दीग के दुर्ग में घुस गया। अंत में सत्तर लाख रुपए मराठों को देने ठहरे, जिसके बदले में उस ओर यमुना तट की भूमि का भू-कर उनको दिया गया।

सन् १७६६ ई० में समरू सुहृद् महान दुर्ग आगरे का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। आगरे में उस समय कैथोलिक मिशन के

* य. पि. अंगरेज इतिहास-लेखकों ने भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के साथ

अनुयायी देशों ईसाइयों की बड़ी संख्या थी; क्योंकि उसका प्रचार अकबर के दिनों से हो रहा था। समरू ने अपने पास से धन देकर नए सिरे से गिरजा बनवाया। वह पुराना गिरजा अब तक अच्छी दशा में स्थित है, जिसमें प्रति रविवार को देशी ईसाई निरन्तर ईश्वर की उपासना करते हैं। उस गिरजे के अंदर की महाराज के ऊपर एक छोटे से पत्थर पर एक शिलालेख लैटिन भाषा में खुदा हुआ है, जिसमें वाल्टर रैनहार्ड का भी नाम है।

कुछ दिनों पीछे भरतपुर के सरदारों ने नवाब नजफख़ाँ से, जो अब वजीर हो गया था, निवेदन किया कि आप यहाँ आकर राव नवलसिंह से अधिकार छीन लें; और अपने अधिकृत देश में से जितना चाहें, राव रणजीतसिंह को देकर शेष अपने अधिकार में रखें। नजफख़ाँ ने आकर बहुत सी भूमि पर अपना आधिपत्य जमाया और पुनः नई सेना भरती करके चढ़ाई की। राव नवलसिंह ने समरू की अध्यक्षता में छः पलटनों और तोपखाना मुकाबले के लिये भेजा। कोल और जलेसर के बीच में जन-पथ पर लड़ाई हुई। नजफख़ाँ की सेना अनाड़ीपन से पीछे को लौटो और नवाब नजफख़ाँ की बाँह

समरू के अधिकार में किले आगरे का होना लिखा है, परन्तु विकाये राजपूताना के अनुसार वे दोनों राव नवलसिंह के अधीन थे; इसलिये इस सम्बन्ध में इस कारण 'क वह स्थानीय इतिहास है, उसके कथन को अन्य लेखकों की अपेक्षा विशेष प्रामाणिक समझा जाता है।

में गोली लगी। घायल होने पर नजफ़खाँ ने क्रोध में आकर सवारों के साथ आक्रमण करके समरू को सेना को परास्त किया। तदनन्तर बादशाह को सेवा में आगरे को सूबेदारी दिए जाने के निमित्त नजफ़खाँ ने अपना प्रार्थनापत्र भेजा। आगरे में बहुत दिनों से बादशाह का कुछ अधिकार न था; इसलिये वहाँ की सूबेदारी देने में मुक्त का एहसान था। इसके अतिरिक्त हिसामुद्दीन और अब्दुल्लाखाँ आदि शाही अधिकारियों को, तो नवाब नजफ़खाँ से मन में द्वेष-भाव रखते थे, यह आशा थी कि आगरा विजय ही हो जायगा; इसलिये उन्होंने तुरंत प्रतिक्रिया भेज दी। उसका भाग्य उदय हो रहा था। डेढ़ मास तड़ाई करके उसने आगरा खाली करा लिया। इस अवसर पर मिर्जा नजफ़खाँ ने धन का तनिक भी लालच न करके तत्पश्चात् पूर्वक लोगों को खूब रुपया बाँटा, इस कारण सहस्रों अनुप्य उसके साथ हो गए। आगरे के क़िले में तो उसने अपनी सेना मुग़ल सरदार मुहम्मद बेग़ हमदानी के अधीन रखी और प्रतिज्ञानुसार भरतपुर-राज्य की शेष भूमि पर तब रणजीतसिंह का अधिकार करा दिया; और वह स्वयं हेलखंड को चला गया।

इस पराजय से राव नवलसिंह का तनिक भी मन मैला न हुआ, बल्कि उसने निर्भय होकर राजधानी दिल्ली पर चढ़ाई की। दस हजार सवारों से सिकंदराबाद को अपने अधिकार कर लिया और आगे वह फरीदाबाद तक बढ़ गया। परंतु

अपने ही सरदारों की ओर से षडयंत्र होने के भय से उसे लौटना पड़ा। पुनः समरू की शिक्षित सेना और तोपखानों की कुमक अपने साथ लाकर उसने आक्रमण किया। अब मिर्जा नजफ़ख़ाँ वज़ीर रूहेलखंड से आ गया था, जो हरियाने के सरदार नजफ़कुली ख़ाँ * की दस सहस्र से ऊपर सेना की कुमक लेकर मुकाबले को बढ़ा और शत्रु की सेना के पाँव उखाड़ दिए।

राव नवलसिंह और समरू ने भागकर कस्बा होडल में अपने मोर्चे लगाए। जब वह भी खाली करा लिया गया, तब वे पीछे हट आए और कोटमन ग्राम में जम गए, जहाँ मिर्जा नजफ़ख़ाँ ने उनको घेरे में ले लिया। पंद्रह दिन के लगभग तो उनके साथ छोटी छोटी लड़ाइयाँ करके छेड़-छाड़ होती रही।

* वक्राये राजपूताने के लेखक सरदार नजफ़कुलीख़ाँ के स्थान में राजा हीरा-सिंह बल्लभगढ़वाले और राव रणजीतसिंह की कुमक होना लिखते हैं। परन्तु मुगल साम्राज्य के संबंध में हम उसकी अपेक्षा मिर्जर कीनी साहब को अधिक प्रामाणिक मानते हैं, जिन्होंने विशेष अनुसन्धान और खोज करके इस विषय में लिखा है।

सरदार नजफ़कुलीख़ाँ पहले हिन्दू राठौर राजपूत बीकानेर राज्य का निवासी था। वह मुहम्मद ग़ोरों के पिता की सेवा में इलाहाबाद को बदल गया, जो मिर्जा नजफ़ख़ाँ का नातेदार और संरक्षक था। मिर्जा की संगत में रहकर वह मुसलमान हो गया और उसके गुरु ने उसे अपना दत्तक पुत्र भी बना लिया। पीछे वह सदैव मिर्जा के साथ रहा, जिसने उसको बीस लाख की जागीर और सैफ़-उद्दौला की उपाधि दी। वज़ीर नजीबउद्दौला के पुत्र जान्ता ख़ाँ की पुत्री से उसका विवाह हुआ।

तदनंतर राव नवलसिंह वहाँ से भी हटकर दीग के दृढ़ किले में आ घुसा। जब मिर्ज़ा ने देखा कि जाटों की ओर से प्रहार नहीं होता, तब वह शत्रु को धोखा देकर बरसाने में खींच लाया, जहाँ डेरे डालकर संग्राम होने लगा।

शाही दल का अग्र भाग नज़फ़कुली खाँ की आज्ञा में था; मध्य में प्रधान सेना पर स्वयं मिर्ज़ा नज़फ़खाँ की अध्यक्षता थी; और दोनों पार्श्वों पर सिपाहियों की पलटनें और तोपखाने ऐसे अफसरों के नीचे थे, जिनको अंगरेजों द्वारा बंगाल में शिक्षा मिली थी। पीछे की ओर मुग़लों का रिसाला था। राव नवलसिंह की ओर से पाँच सहस्र शिक्षित पैदल सैनिकों की प्रबल सेना समरू की आज्ञा में मुकाबले के लिये अग्रसर हुई, जो जाटों की लड़ाइयों की धूल से ढकी और भारी तोपखाने के गोलों की मार से पुष्ट थी। इसका मिर्ज़ा के तोपखाने की ओर से भी वेग के साथ उत्तर दिया जा रहा था। परंतु तो भी उसकी मार से मिर्ज़ा के कई सर्वोत्तम अफसर खेत रहे और वह आप भी घायल हुआ। क्षण भर तक तो हुल्लड़ मचा रहा, किंतु मिर्ज़ा उत्साहपूर्वक “अल्लाह अकबर” का उच्च घोष कर मुग़ल रिसाले को लेकर तुरंत जाटों के ऊपर दूट पड़ा, जो उसके निजी अनुचरों का दल था। नज़फ़कुलीखाँ शिक्षित पलटन को बड़ी तेज़ी से दौड़ाता हुआ पीछे से अपने साथ ला रहा था। इससे जाटों के छक्के छूट गए और धुरें उड़ गए। केवल समरू की पलटनों के हठपूर्वक मुकाबला करने

के कारण शेष सेना के मार्ग की रक्षा हो सकी: और जब वह धीमी चाल से दीग को लौटा, तब कुछ दृश्य अनुकूलता का प्रतीत हो सका। विजेताओं के हाथ बहुत सी लुट आई। उन्होंने शीघ्र ही खुले मैदान को जीत लिया और हारी सेना को किले में चहुँ ओर से दृढ़तापूर्वक घेरे में ले लिया। किंतु दीग के किले में इतनी अधिक रसद की मात्रा थी कि यह कड़ा घेरा बारह मास तक भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। वह क़िला मार्च सन् १७७६ के अंत तक जीता ही न जा सका। जब घिरे हुए जाटों को निकलने का उपाय मिल गया, तब वे ले जाने योग्य वस्तुओं को हाथियों पर लादकर निकटवर्ती कुम्हेर के महल में जा चुसे। राव की शेष सम्पत्ति अर्थात् उसके चाँदी के थाल, बढ़िया और बहुमूल्य नाना प्रकार के अनेक पदार्थ, और उसके सन्दूक, जिनमें छः लाख रुपए नगद थे, विजेताओं ने ले लिए।

इन सफलताओं के पश्चात् जब वह इस जीतो हुई भूमि की व्यवस्था कर रहा था, तब मिर्ज़ा को दरबार से यह समाचार मिला कि जाबताखाँ * ने मजीदउद्दौला पर सुगमतासे विजय कर सिवखों को नौकर रख लिया है: और वह अब उनको साथ लेकर राजपाली की ओर कूच करनेवाला है।

* यह पूर्व वज़ीर नजीबउद्दौला का पुत्र था और अपने पिता का पद प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के उपाय करता फिरता था।

पुरुषार्थी सचिव तुरंत दिल्ली को लौटा, जहाँ बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत हुआ। इस समय उसके साथ समरू भी था, जिसने अपनी पल्टनों को बरसाने की लड़ाई के पश्चात् शीघ्र ही प्रबल पक्ष की ओर मिला दिया था।

शाही सेवा

भरतपुर राज्य को छोड़कर मिर्जा नजफ़ख़ाँ के साथ चले आने के कारण समरू पर अंगरेज इतिहास-लेखकों ने यह कटाक्ष किया है कि वह सदैव हरी हरी चुग रहा था; जिधर जीत हुई, उधर ही हो गया। उनका यह कथन चाहे सत्य ही हो, परंतु इस बार इसका दूसरा हेतु भी था। मिर्जा नजफ़ख़ाँ, जो बंगाल में शाह आलम के साथ रहा था, वहाँ समरू के पराक्रम के कार्यों से परिचित हो गया था, जो उसने नवाब मीरकासिम की सेवा में रहकर दिखाए थे। इसके अतिरिक्त अब उसकी पल्टनों की धाक चहुँ ओर बँध गई थी। भरतपुर राज्य की बहुत सी भूमि मिर्जा नजफ़ख़ाँ के हाथों में आ गई थी; इसलिये जब मिर्जा ने समरू को बुलाया, तब वह अपने दल बल सहित उसकी सेवा में उपस्थित हुआ।

भरतपुर से दिल्ली पहुँचने पर वज़ीर ने समरू को ज़ाबता-ख़ाँ के साथ युद्ध करने के निमित्त भेजा। समरू की सेना को मुक़ाबले पर आते हुए देखकर ज़ाबताख़ाँ हटकर पहाड़ों में घुस गया। समरू ने सेवालिक की पहाड़ी में दृढ़ गोसगढ़ के दुर्ग को घेरे में ले लिया। ज़ाबताख़ाँ ने अपना बचाव करने में

बड़ी वीरता का परिचय दिया। तिस पर भी वह उस सेना के सम्मुख, जो उससे लड़ने को आई थी, ठहरकर मुकाबला करने में असमर्थ था। इस कारण थोड़े से अनुचरों को अपने साथ लेकर वह भागा और गङ्गा पार करके अवध पहुँचकर उसने शरण ली। वह अपने कुटुंब और कोष को पहले ही पहरिगढ़ में छोड़ आया था। वे सब समरू के हाथ आ गए।

राव नवलसिंह मर गया। राव रणजीतसिंह ने रूहेलों को दीग के किले से निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। यह समाचार सुनकर मिर्जा नजफ़खाँ दिल्ली से दीग को आया और चार मास तक लड़ाई लड़कर दीग को विजय किया।

नजफ़खाँ ने आगरे में शाही दरबार किया। उस महोत्सव के अवसर पर केवल भक्तिमान् मुग़लों और ईरानियों का दल ही उसकी सेवा में उपस्थित नहीं था, बल्कि दो ब्रिगेड सेना अर्थात् एक पल्टन समरू की अव्यक्तता में, और एक तोपखाना मेडौक (Medoc) या मूसो की अधीनता में विद्यमान था। उस समय मिर्जा का मुख्य हिन्दुस्तानी सरदार अर्थात् उसका नौ मुसलिम दत्तक पुत्र नज़फ़कुली खाँ, मुहम्मद बेग़ हमदानी और उसका भतीजा मिर्जा शफीअ इस दरबार को सुशोभित कर रहे थे।

अंगरेज़ों ने मिर्जा नजफ़खाँ से मित्रता करनी चाही; परन्तु उनकी यह इच्छा इस कारण पूर्ण न हो सकी कि वे

सन्धि की प्रतिज्ञाओं में एक शर्त यह भी रखते थे कि समरू हमें दे दिया जाय । परन्तु वजोर ने इसे स्वीकृत नहीं किया ।

नवाब नजफ़ख़ाँ ने बादशाह को यह सम्मति दी कि समरू को पल्टनों को नियमानुसार राजकीय सेवा में रख लिया जाय । उसका यह परामर्श स्वीकृत हुआ । समरू को सेना के व्यय के लिये विद्रोही नवाब ज़ाबताख़ाँ के इलाके को सब भूमि जागीर में दी गई, जिसकी वार्षिक आय छः लाख रूपए थी । समरू ने अपना निवास अपनी जागीर के केन्द्र सरधना ग्राम में किया । इस प्रकार सन् १७७३ ई० में उसकी नींव जमो, जो पीछे से राज्य सरधना विख्यात हुआ । इस राज्य को चौड़ाई गङ्गा से जमुना तक थी और लम्बाई मुज़फ्फरनगर के परे से लेकर अलीगढ़ के पड़ोस तक थी ❀ ।

मंत्रो मिर्ज़ा नजफ़ख़ाँ ने अपने मन में यह ठान लिया कि जो प्रदेश राजकीय अधिकार से बाहर निकल गए हैं, उनमें से जितने

* इक़ोम मुहम्मद उमरज़ा फ़र्सीह के पास मैंने उर्दू में यह लिखा देखा था कि जब समरू भरतपुर राज्य में राव नवलसिंह को सेवा में था, उस वक्त वह राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था । राव नवलसिंह ने समरू को भुज्जर, भाड़सा आदि अनेक परगने दिए थे, जिनको पंछे नवाब नजफ़ख़ाँ ने, जब समरू भरतपुर से आकर उसके अधीन हो गया था, उसके नाम बहाल रक्खा और ज़ाबताख़ाँ के इलाके की निकटवर्ती भूमि और दी । कदाचित् यह विस्तार उस राज्य का है, जिसकी सीमा ऊपर दी गई है । उसी लिखावट में यह भी वर्णन है कि समरू को बादशाह ने ज़ाबताख़ाँ का इलाका विजय करने पर जफरयाबख़ाँ की उपाधि के सहित यह जागीर बख्शी थी ।

अधिक हो सकें, पुनः विजय किए जायँ। इस कारण समरू की पल्टनों को दीर्घकाल तक विश्राम में नहीं रहने दिया गया। उनकी नौकरी भरतपुर राज्य के विरुद्ध बोली गई, जिसकी सेवा में वे पहले रह चुकी थीं। समरू ने बरसाने की दृढ़ और कठोर लड़ाई लड़कर भरतपुर के राजा को पराधीन कर दिया। इसके उपरान्त मिर्ज़ा नजफ़ख़ाँ ने मराठों से उसकी रक्षा करने को उसे आगरा भेजा, जहाँ का वह मुलकी और फौजी शासक नियत हुआ। इस नवीन सेवा को उसने अत्यन्त प्रशंसनीय निपुणता और साहस के साथ सम्पन्न किया।

मृत्यु

इस क्षणिक, अनित्य और नाशवान् जगत में जो वस्तु उत्पन्न हुई, वह अवश्य नाश को प्राप्त हुई और होगी, यह ईश्वर का चिरस्थायी और अभंग नियम है। इस संसार का प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक कार्य किसी न किसी रूप में स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि मैं परिवर्त्तशील हूँ—मैं नाशवान् हूँ। बिलकुल सत्य और संशय रहित है। एक विद्वान का कथन है—

“There is nothing more certain than the uncertainty of all Sublunary things.”

अर्थात्, समस्त सांसारिक वस्तुओं के अनिश्चित होने की अपेक्षा और अधिक कोई बात निश्चित नहीं है। इसलिये सब को, जो इस जगत में पैदा हुए हैं, एक न एक दिन मृत्यु का कलेवा बनना पड़ेगा। कहा है—

“जो आया सो जायगा क्या राजा क्या रंक ।”

अंत में तारीख ४ मई सन् १७७८ ई० को जब समरू आगरे में बादशाह की ओर से वहाँ का शासन कर रहा था, मृत्यु ने उसको ग्रस लिया । उसको आगरे में पुराने कैथोलिक ईसाई कब्रिस्तान में गाड़ा गया ❀ । समरू के परिवार की

* ब्रिटिश जाति को समरू के प्रति कितनी अधिक घृणा और ईर्ष्या थी, इसका परिचय इस बात से मिलता है कि अंगरेज इतिहासवेत्ताओं ने जहाँ कहीं उसके संबंध में कुछ लिखा है, उसमें उन्होंने निरन्तर कटु और कठोर शब्दों का प्रयोग किया है । यहाँ तक कि ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता मिस्टर थोमस विलियम बेल साहब ने उसकी मृत्यु के विषय में लिखा है—

He died or was murdered, in the year A. D. 1778. A. H. 1192 at Agra where his tomb is to be seen in the Roman Catholic burial ground with a Persian inscription in verses mentioning the year of his death and his name.

अर्थात् वह सन् १७७८ ईसवी तदनुसार सन् ११९२ हिजरी में आगरे में मरा या मारा गया, जहाँ उसकी कबर रोमन कैथोलिक कबरस्तान में दृष्टिगोचर होती है, जिस पर एक फारसी कुतबा शेरों में लिखा हुआ है और जिसमें कि उसकी मृत्यु के वर्ष और उसके नाम का वर्णन है” । इसके अतिरिक्त समरू के बन्धु कपि जाने का उल्लेख देखने में नहीं आया । वह फारसी कुतबा इस प्रकार है—

فوت شمرو صاحب آن سرکرده نیگو سرشت*
 سیلئه آفاق را در آتش جهرت برشت*
 سال تاریختش ز تشریف مسیحا بر فلک*
 باه صبح گفت از ”بوی گل باغ بهشت*
 سنه ۱۷۷۸ع

सुन्दर समाधि अठ-पहलू बनी हुई है, जिसके ऊपर एक छोटा सा गुंबज है, जो कँगूरों से ऊपर निकल गया है। इसके साथ चिकने पत्थर का पानी से बचाने का एक ऊपरी द्वार

अर्थ—हम पुण्यात्मा नायक समरू साहब को मृत्यु ने संसार की छाती को पश्चात्ताप की अग्नि से भून डाला। मसीह के आकाश पर पधारने से अर्थात् सन् ईसवी के हिसाब से उसके मरने के वर्ष की तारीख इस फारसी वाक्य के अक्षरों के अंकों से, जिनकी प्रातःकाल की वायु ने कथन किया है, अर्थात् “باغ بهشت بوی گل بیخود—बैकुंठ के बाग के गुलाब की महक” से अब्जद की रीति से सन् १७७८ के अंक निकलते हैं।

बे	ب	—	—	२	—	—	२	
वाव	و	—	—	१	—	—	६	
ये	ے	—	—	१	+	—	१०	
गाफ़	گ	—	—	२	+	—	२०	
लाम	ل	—	—	३	+	—	३०	
बे	ب	—	—	२	—	—	२	
अलिफ	ا	—	—	१	—	—	१	
यौन	غ	—	—	१	+	+	+	१०००
वे	ب	—	—	२	—	—	२	
हे	ه	—	—	५	—	—	५	
शीन	ش	—	—	३	+	+	—	३००
ते	ت	—	—	४	+	+	—	४००

۱۷۷۸ १७७८

फारसी की निम्नलिखित तारीख में समरू की मृत्यु के विषय में मिस्टर थामस जेल से भी अधिक स्पष्ट यह लिखा है—

“از ترغیب زوجہ خود کشته شد”

अर्थात्—“समरू का बध उसकी स्त्री के प्रयत्न से हुआ।”

यदि वास्तव में यह कथन सत्य है, तो अपने पति को हत्या करानेवाली

कुस्तुंतुनिया के सोते के समान है। उस पर जो लेख है, वह पुर्तगाली भाषा में है, जिससे विशेषतः यह सिद्ध होता है कि उस के बनने के समय कोई फ्रांसीस वा अंगरेज़ आगरे में उपस्थित न था। लेख का आशय यह है—“यहाँ वाल्टर रैनहार्ड दफन है, जो तारीख ४ मई सन् १७७८ ई० को मरा था।” फारसी में भी उस पर कुब्बा अंकित है।

आगरे के पेडरैटोला (Padretola) अर्थात् ईसाई धार्मिक इतिहास के मूल में समरू की समाधि का वर्णन है। उसमें कहा है कि यह एशिया के अत्यन्त प्राचीन ईसाई कब्रिस्तानों में उस भूमिके टुकड़े पर बना हुआ है, जो न्यालयों के पिछवाड़े स्थित है; और जो मूल रक्बा नि कटवर्ती क़स्बा लशकरपुर का है, उसके अन्तर्गत है। यह पृथ्वी रोमन कैथलिक मिशन को सम्राट् अकबर अथवा उसके पुत्र और उत्तराधिकारी के शासन-काल के प्रारंभ में प्रदत्त हुई थी। इस कब्रिस्तान में बहुत सी क़बरें दो सौ वर्षों से ऊपर की पुरानी हैं, जिन पर आरमेनी और पुर्तगाली भाषाओं में लेख लिखे हुए हैं। वायु और धर्ती के अधिक सूखेपन के कारण साधारण देख भाल करने से ही यह दीर्घ काल तक स्थिर रह सकता है।

और उसकी सेना तथा सम्पत्ति की उसको कनिष्ठ भार्या जेबुल्निसा हुई, जिसका सविस्तर चरित्र आगे दिया जायगा। क्योंकि समरू को बड़ा खो अर्थात् जफरयाब ख़ाँ को माता तो पागल हो गई थी। किन्तु इस बात की सिलोमेन साहब और जार्ज थामस आदि समकालीन स्पष्टवादी इतिहास-लेखक पुष्टि नहीं करते।

चरित्र विषयक विचार

समरू के चरित्र और स्वभाव के विषय में विविध लेखकों ने विविध अच्छे और बुरे विचार प्रकट किए हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं।

पादरी डब्लू कीगन साहब की समझ में “समरू एक वीर, कर्कश, सैनिक, पुरुषार्थी पुरुष था, जिसको दिखावे से घृणा थी। उसकी प्रकृति सादा पहनने की और अपने सिपाहियों में वे रोक टोक आने जाने और उनसे सदैव मिलने जुलने की थी। उस में बहुत से ऐसे गुण भी थे, जिनसे सिपाहो अपने नायकों के भक्त बन जाते हैं। उसका शासन दीर्घ काल तक आगरे के निवासियों को स्मरण रहा; क्योंकि उसके वक्त वे सब ओर से लड़ाई भगड़ों से घिरे हुए थे; परन्तु उनको उसके दृढ़ प्रबन्ध से शांति और सुख प्राप्त हुआ था।”

अंगरेजी पुस्तक मुगल एम्पायर के ग्रंथकार मिस्टर हेनरो जार्ज कीनी साहब ने समरू के संबंध में केवल अपनी ही सम्मति नहीं प्रकट की है, वरन् इस विषय में और सज्जनों के मत का भी उल्लेख इस भाँति किया है—

“वह एक ऐसा मनुष्य प्रतीत होता है, जिसमें कोई सद्गुण न था। कठोर और लहू का प्यासा, अपने स्वामी के निमित्त भक्ति या प्रेम का जिसमें लेश नहीं”। फ्री लैन्स (Free Lance)*

* उन शूर वीरों और शस्त्रधारियों की घूमनेवाली टोलियों का मनुष्य फ्री लेन्स के नाम से प्रसिद्ध थे, जो धार्मिक युद्ध के पश्चात् युरोप में इधर उधर जी चाहे

का यही एक आवश्यक लक्षण है। समरू का यह चरित्र स्किनर साहब के जीवन चरित्र से लिया गया है; परंतु उसमें इतना और लिखा है कि वह उन गुणों से शून्य न था, जिनसे सिपाही अपने अफसरों के भक्त हो जाते हैं। परंतु इसमें भी संदेह होता है, जब हम स्वर्गवासी सर डब्लू० स्लीमेन साहब के कथन में (जो दन्तकथा के विषय में देशियों के बोच में जाने आने के कारण एक उत्कृष्ट प्रमाण हैं) यह उल्लेख पाते हैं कि उसको सदैव अपने सिपाहियों के हाथों पकड़ धकड़ में, धमकी फट्कार सहते, यंत्रणा भोगते और भयभीत होते देखा गया ॥

जिसके हाथ अपना सेवा बेचते फिरते थे।

समरू और समरू को बेगम के विषय में हमारा दृष्टि में अब तक जो लेख आए हैं, उनमें उनके कुटुम्ब का वृत्तांत पति के विवरण में न देकर लेखको ने उसे पत्नी का जीवनी में दिया है। अतः इस पुस्तक में हम भा इस नियम का भंग करने की चेष्टा नहीं करते; वरन् समरू परिवार का वर्णन आगे चल कर करेंगे, जहाँ समरू की बेगम का जीवन चरित्र लिखेंगे।

* पण्डित श्रानारायण चतुर्वेदा भा समरू का प्लेटनों के मैनिको के विषय में किसी आधार पर यह बात लिखते हैं—‘इन बटालियनों के अफसर युरोपियन थे; किंतु भले मानस युरोपियन समरू जैसे आदमी के अधीन रहना पसंद न करते थे। इसलिये समरू को बहुत हा निम्न श्रेणी के, अपठ और अभद्र युरोपियन मिला करते थे। इन अफसरों ने उसकी सेना का शासन बिगाड़ रक्खा था। सिपाही बड़े उच्छृंखल और उर्दंड हो गए थे। उनको समय पर तनखाह नहीं मिलती थी। वेतन वसूल करने के लिये उन्हें अपने अफसर को तग करना पड़ता था। कभी कभी वे उसे कैद कर लेते थे; और जब तक वह अपना गढ़ा हुआ धन न निकालता या कर्ज लेकर उनका वेतन न चुकाता, तब तक उसे न छोड़ते थे। यदि अफसर बहमारा

वही विद्वान् लिखता है कि समरू अपने सैनिकों को अति सुरक्षित मार्ग से रणक्षेत्र में प्रवेश करने और एक बार छोड़ देने के अनंतर चतुर्भुज रूप में पैर जमाकर खड़े होने की शिक्षा दिया करता था। उसे इसकी परवाह न थी कि उनकी गोली शत्रु तक पहुँचेगी या नहीं। इसके बाद वह लड़ाई का ढंग देखता। यदि शत्रु की विजय होती, तो वह अपनी संपूर्ण सेना की शक्ति शत्रु के हाथ बेच देता। और यदि उसकी विजय होती, जिसके पक्ष में वह लड़ने आया था, तो वह शत्रु का माल असबाब लूटने में बड़ी सरगमीं दिखलाता।

ओरिण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के लेखक मिस्टर थामस विलियम वेल साहब के मतानुसार समरू में कुछ सैनिक योग्यता तो थी, परंतु वह छली, कपटी और लहू के प्यासे होने की प्रकृति रखने के कारण सर्वथा कलुषित था।

इस प्रकार समरू का जीवन चरित्र समाप्त हुआ, जिसने अपने पुरुषार्थ, पराक्रम, तत्परता और समयानुसार कार्य कर के भारत के इतिहास में नाम पाया। अवश्य ही उसमें दोष भी थे, परंतु दोष किस मनुष्य में नहीं होते! प्रत्युत् उसके गुणों की ओर दृष्टि देनी चाहिए, जिसने परदेस में आकर अपने साहस तथा परिश्रम से एक लम्बा चौड़ा राज्य स्थापित कर दिया।

होता, और उन्हें रूप की अधिक आवश्यकता होती, तो वे उसे नंगा करके गरम तोप के ऊपर जबरदस्ती बैठा देते।”

(३) समरू की बेगम जेबउल्निसा

स्त्री वर्ग का महत्त्व संसार में भली भाँति विदित है। वे रूप-लावण्य, मधुरता, नम्रता, कोमलता आदि अनेक उत्कृष्ट गुणों की खानि हैं। वे इस दुःखमय जगत में हर्ष और आनन्द प्रदान करनेवाली और मनुष्य को सुख तथा प्रसन्नता देनेवाली हैं। वे उन उत्तम लक्ष्णों और गुणों से भी सर्वथा वंचित नहीं हैं, जिनके प्राप्त करने और प्रयोग में लाने के कारण पुरुष को इतना गौरव और सम्मान प्राप्त है। प्रयाः प्रत्येक देश में नारियाँ विद्या, साहस, धैर्य, वीरता, शासन-योग्यता आदि गुणों के लिये सदा से विख्यात होते आई हैं और अब भी विख्यात हैं। अपने पवित्र भारत देश के प्राचीन इतिहास को ही देखिए। उससे पता चलता है कि यहाँ की वीर रमणियों ने कैसे अनुपम और अतुलित साहस तथा पराक्रम का परिचय दिया था। कौन नहीं जानता कि जब सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी ने महारानी पद्मावती के प्रेम में अन्धे होकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की और वीर राजपूतों पर अपना वश न चलता देखकर कपटपूर्ण उपाय द्वारा महाराणा भीमसिंह को कैद कर लिया, तब उस अति प्रवीण और चतुर महारानी ने उस कुटिल कुचाली के साथ वैसी ही कपटमय चाल चली और महाराणा को कैद से छुड़ाकर बादशाह को

नीचा दिखाया। ताराबाई भी वीरता और योग्यता के विचार से कुछ कम नहीं हुई। जब उसके पिता सूर्यसेन का टोडा राज्य, बादशाह अलाउद्दीन ने छीनकर अपने अधिकार में कर लिया, तब उस निपुण राजपूत कन्या ने वही उपाय किया, जो सूर्यसेन का कदाचित् कोई पुत्र होकर करता। उसने अपने बहुमूल्य रत्नजटित आभूषणों और रंग बिरंगे रेशमी वस्त्रों का परित्याग करके पुरुषों की भाँति पुरुषार्थ का परिचय दिया। उसने शस्त्र विद्या और घोड़े की सवारी सीखी। फिर उसने रण-कुशल और उत्साही राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज से यह प्रतिज्ञा करके विवाह किया कि तुम मेरे पिता का राज्य बादशाह के फंदे से निकलवा दो। मरदाना बाना पहन कर और घोड़े पर सवार होकर ताराबाई स्वयं संग्राम में अपने पति के साथ गई। और यह सब उसी के परिश्रम तथा पराक्रम का फल था कि उसके पिता की राजधानी टोडा पुनः उसके पिता को प्राप्त हुई।

जब प्रसिद्ध बादशाह अकबर ने विशाल सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब जयमल और सोलह वर्ष के बालक पुत्तू घोर लड़ाई लड़कर और अपना नाम चिरस्मरणीय करके इस असार संसार से चले गए। उस समय राजकुमार पुत्तू की माता कर्णदेवी, स्त्री कमलावती और बहन कर्णवती ने मुगल सेना पर निरंतर गोलियों की जो बाढ़ छोड़ी थी, उसे देखकर स्वयं अकबर भी दंग रह गया था।

प्रातःस्मरणीय नारीभूषण महारानी अहिल्याबाई का राज्य तो राम-राज्य था। वह आदर्श हिंदू महारानी थी, जिसके सुप्रबंध, उदारता, सुरक्षणता, उच्च धार्मिक भाव, प्रजा-पालन, सरल जीवन, अनंत पुण्य आदि गुण सर्वथा प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं।

भारतीय इतिहास के पृष्ठ केवल आर्य महिलाओं के वृत्तांत से ही प्रकाशमान नहीं हैं, वरन् मुसलमान बेगमों की कीर्ति भी उनको इसी प्रकार प्रदीप्त करती है।

नूरजहाँ बेगम जैसी रूपवती और सुंदर स्त्री और बादशाह जहाँगीर की प्रणयिनी थी, वैसी ही वह बुद्धिमती और पराक्रमशालिनी भी थी। उसने एक बार अपने कौशल से अपने पति को शत्रु के फंदे से छुड़ाया था। जब उसने गोली से सिंह को मारा, तब तत्काल कवि ने उसकी इस प्रकार प्रशंसा की—

نور جهان گرچه بظاهر زن است—

درصف مودان زن شیر افکن است—

अर्थात्—यद्यपि नूरजहाँ देखने में स्त्री है, तथापि पुरुषों की पंक्ति में वह स्त्री शेर को पछाड़नेवाली है *।

अहमदनगर के नव्वाब अली आदिल शाह की प्रसिद्ध बेगम चाँद बीबी भी अति सुंदरी होने के अतिरिक्त सर्वगुण सम्पन्न थी। सवारी, युद्ध और शिकार करना बहुत अच्छा

* इसका दूसरा अर्थ “शेर अफगन की स्त्री” भी है; क्योंकि नूरजहाँ का पहला पति शेर अफगन खों था।

जानती थी। अरबी, फारसी और तुर्की बोलियों से, जो उसकी सेना में सिपाही बोलते थे, वह परिचित थी। कनारी और मराठी भाषाओं का भी उसे ज्ञान था। वीणा बजाने और नाना प्रकार के गीत गाने का उसे अभ्यास था। उसने रणस्थल में शाही सेना के छुके छुड़ा दिए और ऐसी विचित्र वीरता और विलक्षण निपुणता दिखाई, जिसे देख कर लोग उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसी भाँति और भी बहुत सी स्त्रियों के उदाहरण हैं, जिनकी ज्वलन्त कीर्ति पर भारत भूमि उचित रीति से गर्व कर सकती है।

आगे जिस नारी का वर्णन किया जायगा, वह भी एक ऐसी ही रूपवती, चतुरा, नोतिज्ञा और सुशासिका अधिकारिणी हुई है, जिसने मुगल अधःपतन के समय में, जबकि चारों ओर घोर क्रान्ति और कोलाहल मचा हुआ था, अपने पति की सेना और राज्य को स्थिर रखा और ऐसी अपूर्व दक्षता तथा निपुणता दिखाई कि जिससे भारत के इतिहास में उसका नाम भी विख्यात हो गया। उस स्त्री का नाम जेबुल्लिसा जॉना नोबिलिस है, जिसको सर्व साधारण समरु की बेगम या समरु बेगम के नाम से पुकारते थे।

इस समय में जब कि देश की स्त्रियों में जाग्रति के चिह्न उत्पन्न हो रहे हैं, बेगम समरु का जीवन चरित्र हिन्दी में पुस्तकाकार संग्रह किया जाना अनुपयुक्त न होगा। इस

पुस्तक में उसके गुणों के वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है ।

पैतृक-गृह

यह प्रसिद्ध स्त्री अरब के लतीफ अलीखाँ❀ नामक एक मुसलमान की पुत्री थी, जो एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। लतीफ अलीखाँ ने अपना निवास करबा कुताना में (जो मेरठ से तीस मील की दूरी पर उत्तर पश्चिम की ओर है) स्थिर किया था। बेगम का जन्म सन् १७५० ई० के लगभग हुआ था। जब उसकी अवस्था छः वर्ष की हुई, तब उसके पिता लतीफ अलीखाँ का देहान्त हो गया। पीछे उसके बड़े भाई ने, जो विमाता से पैदा हुआ था, उसकी माता को छोड़ दिया और उसको तंग करने लगा; इसलिये वह कुतानी से अपनी कन्या सहित दिल्ली चली गई। दिल्ली में जब समरु भरतपुर के महा-

* पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने बेगम के पिता का नाम असदखाँ लिखा है। लाला चिरंजीलाल नाथब रजिस्ट्रार कानूंगो तहसील बुढ़ाना, बिला मुजफ्फरनगर ने स्थानीय अनुसन्धान के आधार पर अपने पत्र में लिखा है कि बेगम मुगल खानदान से थी। किन्तु ऐतिहासिक ग्रंथों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। यह भी ठीक तरह से पता नहीं चलता कि बेगम का बाल्यावस्था में क्या नाम था। यद्यपि अनेक पोथियों में उसका नाम जेबउलनिसा लिखा है और आद्यापत्रों पर भी फारसी में इसी नाम के उसके हस्ताक्षर होते थे, परन्तु यह भी निश्चित है कि इस बेगम को बादशाह शाह आलम ने सन् १७८८ ई० में गोकुलगढ़ के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पीछे प्रसन्नतापूर्वक यह उपाधि प्रदान की, जिसका वर्णन आगे उस प्रसंग में होगा।

राजा के साथ घेरा डाले पड़ा हुआ था, यह युवती उसको प्राप्त हुई, जिसको कुछ समय तक तो उसने वैसे ही अपने पास रखा; और तदनन्तर उसके साथ उस प्रकार विवाह कर लिया, जिस प्रकार मुसलमानी स्त्री का किसी विधर्मी के साथ होता है ॥

आकृति और पति-सेवा

बेगम का कद छोटा बूटा सा था, परन्तु शरीर भरा हुआ था। रंग रूप गोरा चिढ़ा और सुन्दर था। उसको आँखें बड़ी कटीली और चमकीली थीं; मुख ललित और रूपवान् था। वह फारसी भाषा बहुत शुद्धतापूर्वक धड़के से बोलती थी और लिखती भी थी। उसकी बोल चाल मनभावनी और सुहावनी थी।

अपने विवाह से लेकर अपने पति समरू के मरने पर्यन्त बेगम सदैव उसके साथ उसके भ्रमण और समस्त लड़ाइयों में उपस्थित रही। खेद है कि उसको कोई बालक नहीं उत्पन्न

* बेगम के जन्म, दिल्ली आने और विवाह होने के विषय में भिन्न भिन्न इतिहास वेत्ताओं के भिन्न भिन्न मत हैं। मुगल एम्पायर नामक अंगरेजी पुस्तक में उसका जन्म सन् १७५१ ई० में होना और दिल्ली को सन् १७६० ई० में जाना लिखा है। परन्तु दूसरी अंगरेजी पुस्तक “सर्पना और उसकी बेगम” नामक में जन्म का वर्ष सन् १७५० ई० और विवाह सन् १७६७ ई० में होना लिखा है। एक अन्य उर्दू लेख से सन् १७७० ई० में बेगम का कुताना से दिल्ली को प्रस्थान करना प्रकट होता है। ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता ने बेगम को ही रण्डी कहा है।

हुआ। परन्तु समरू का एक पुत्र ज़फ़रयाब खाँ नाम का दूसरी मुसलमानी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। पीछे वह स्त्री पागल हो गई और उसी दशा में सत्यने में सन् १७८८ ई० में मर गई।

समरू की सपात का उत्तराधिकार और रोमन कैथोलिक धर्म-ग्रहण

सन् १७७८ में जब समरू की मृत्यु हुई, तब उसका पुत्र ज़फ़रयाब खाँ अबोध बालक था। अमीर उल् उमरा नवाब ज़फ़रखाँ ने बेगम समरू की * ॥ ॥ ॥ ॥ योग्यता देखकर, जिसने अपने मृतक पति की गोरी और काली सेना को बड़ी तत्परता और सावधानी के साथ सँभाल लिया था और जिसका समस्त प्रबन्ध वह अति-साहसपूर्वक स्वयं करने लगी थी, उसको अपने पति की उत्तराधिकारिणी मान लिया, जो सर्वथा उचित ही हुआ।

समरू की मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात् न जाने किस प्रभाव अथवा कारण से तारीख ७ मई सन् १७८१ ई० को पादरा श्रीगोग्रिओ साहब (Revd Fr. Gregario) द्वारा, जो एक कारमेलाइट * (Cormeline) भिक्षु थे, बेगम ने रोमन कैथो-

* कारमेलाइट ईसाइयों का वह सम्प्रदाय है जो प्रभु ईसा की माता बीबी मरियम के उपासकों के लिये शाम देश के कारमेल पर्वत के नाम से सन् ११५६ ई० में स्थापित हुआ और सन् १२४७ ई० में भिक्षुओं में परिणत हुआ। वे भूरा रूप धारण करते हैं और श्वेत कफनी तथा कन्धों पर अंगोझा रखते हैं। इस कारण लोग विशेषतः उन्हें श्वेत साधु भी कहते हैं।

लिक सम्प्रदाय का ईसाई मत आगरे में धारण करके अपना नाम जोना (Joanna अथवा Johnna) रक्खा। इसी अवसर पर समरू के पुत्र ज़फ़रयाब खाँ ने भी बपतिस्मा लिया और उसका नाम वाल्टर बालथज़्ज़र रेनहर्ड (Walter Balthazzar Reinhard) पड़ा।

जनरल पाउली

In the world's broad field of battle,

In the bivouac of life

Be not like dumb, driven cattle,

Be a hero in the strife.

अर्थात्—जग की विस्तृत रणस्थली में

जीवन के झगड़ों के बीच।

नायक बनकर करो काम सब

पशुओं के से बनो न नीच ॥

बेगम समरू अबला नारी होने पर भी बहुत मनचली

* स्लीमैन साहब की पुस्तक 'भ्रमण और स्मृति' (Sleeman's "Rambles and Recollections" vol. II.) के अनुसार ईसाई होने के समय बेगम का वय ४० वर्ष के लगभग था। उस वक्त उसकी सेना में सिपाहियों की पाँच पलटनें, लगभग ३०० के गोरे अफसर और तोपची, ४० जोड़ी तोपों सहित और मुगलों का एक रिसाला था। उसने सरधने में ईसाई मिशन की स्थापना की, जिसने शनैः शनैः बढ़कर मठ (Convent), बड़ा गिरा (Cathedral) और महा विद्यालय (College) का रूप धारण किया। तब से सइसों गोरे और काले ईसाई सरधने में अब तक निरन्तर रहते चले आते हैं।

और जोड़ तोड़ लड़ानेवाली शासिका थी । उसकी दृष्टि केवल अपनी सेना या अपने राज्य की व्यवस्था करने तक ही परिमित नहीं थी, प्रत्युत् उससे परे वह बड़ी दूर दूर तक पहुँचती थी । वह सदैव निकटवर्ती राजाओं और नवाबों की चाल ढाल निरखती परखती रहती थी और मुग़ल साम्राज्य के कार्यों और उसके परिवर्तनों पर, जिनका उसके राज्य और अधिकार पर गहरा प्रभाव पड़ता था, और भी विशेष ध्यान रखती थी । उसका सैन्य दूत राजधानी दिल्ली में रहा करता था और अवसर पड़ने पर राजकीय कामों में हस्तक्षेप भी करता था ।

तारीख २६ अप्रैल सन् १७८२ ई० को जब मुग़ल सल्तनत की ढाल, शूर वीर, परम विचारशील और राजनीति-विशारद अमीर उल्-उमरा मिर्ज़ा नजफ़ुखाँ की मृत्यु हो गई, तब उसके पद की प्राप्ति के हेतु उसके नातेदार मिर्ज़ा शफी खाँ और अफरासियाब खाँ के बीच में भगड़ा पैदा हुआ । सब प्रकार विद्वान् और बुद्धिमान होने पर भी बादशाह शाह आलम मोम की नाक और बेपेंदे की हाँडी की भाँति बना हुआ था । जो उसे जिधर को खींचता था, उधर ही को वह खिंच जाता था । कभी वह मिर्ज़ा शफी खाँ के पक्ष का समर्थन करता था, तो कभी अफरासियाब खाँ को विज़ारत की खिलअत से सुशोभित करता था । इस कारण भगड़ा बढ़ता ही जाता था और उसका अंत नहीं होने पाता था ।

इसी खींचातानी में मिर्जा शफी ने आकर अफरासियाब खाँ के मित्रों और सहायकों का घेर लिया और अबदुल अहिद खाँ को तारीख ११ सितम्बर १७८२ ई० और नज़फ कुली खाँ को उसके दूसरे दिन पकड़कर हवालात में कैद कर दिया। यद्यपि अफरासियाब खाँ दिल्ली से चला गया था, और उसके मुख्य मुख्य सरदार पकड़े गए थे, तथापि उसके अनेक हितचिन्तक दरबार में विद्यमान थे। उन्होंने कह सुनकर पावली साहब (Mr. Paoli) को, जो उस अवसर पर दिल्ली में बंगम समरू की सेना का सेनानी था, और लताफत खाँ को, जो अवध के नवाब की शाही सेवा के लिये दिल्ली में रहनेवाली फौज का अध्यक्ष था, अपने पक्ष में कर लिया। मिर्जा शफी ने यह निवेदन किया कि पावली साहब और लताफत खाँ को सन्धि करने के सम्बन्ध में अधिकार सौंपकर मेरे पास भेज दिया जाय। उसको यह प्रार्थना स्वीकृत हुई। ये दोनों दूत बनकर गए, परन्तु फिर लौटकर न आए। पावली साहब की हत्या हुई और अवध के सेनापति को अन्धा करके कैद में डाल दिया गया।

गुलाम कादिर के छक्के छुड़ाना

Heaven helps those who help themselves.

अर्थात्—कुछ कर लो कि उम्र बे वफ़ा है।

हिम्मत का हिमायती खुदा है ॥

परमेश्वर परमात्मा सत्याधार है। इसलिये उसकी रचना अर्थात् इस जगत को भी प्रत्येक वस्तु, क्या बड़ी से बड़ी और क्या छोटी से छोटी, सत्य ही का उपदेश करती है। कपट, या छल-प्रपंच का दिव्य ईश्वरीय सृष्टि में कहीं नाम निशान नहीं है। इन दोषों का ग्रहण करना और उन्हें अपना अवलम्ब बनाना मिथ्या कल्पना और माया है। जो कोई इस माया का सहारा लेता है, वह सत्यरूप जगदीश से सर्वथा विमुख हो जाता है। भूटे का कहीं ठिकाना नहीं है। यदि कोई प्रपंची मायावी कुछ सफलता भी प्राप्त कर ले, तो वास्तविक और सच्चे अर्थ में वह सफलता सफलता कहलाने के योग्य नहीं। और यदि कोई भोला भाला मनुष्य उसे भूल से ऐसा समझ ले, तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह अति क्षणिक और अस्थायी है। संसार की लम्बी दौड़ में वह स्थिर नहीं रह सकती; ढोल की पोल अन्त में खुल ही जाती है।

यही बात गुलाम कादिर को हुई। नजीबउद्दौला (जिसका वर्णन पिछले खण्डों में हो चुका है) अमीर उल् उमरा अथवा प्रधान मंत्री का कार्य बड़ी योग्यता से अपने समय में चलाया था। उसकी मृत्यु के पीछे इस पद की प्राप्ति के निमित्त उसका पुत्र ज़ाबताखाँ सदा लड़ता और भगड़ता रहा, परन्तु कृतकार्य न हो सका। गुलाम कादिर ज़ाबता खाँ का पुत्र था।

सन् १७८७ ई० की वर्षा ऋतु के अंत में गुलाम कादिर

दिल्ली के समीप पहुँच गया और यमुना नदी पर शाहदरे को ओर उसने अपना शिविर खड़ा किया। उसके इस प्रकार अब आने का अभिप्राय अपने मृत पिता के अपूर्ण प्रयत्न की पूर्ति अर्थात् अमीर उल् उमरा के पद के ग्रहण करने के अतिरिक्त और कुछ न था। गुलाम कादिर का प्रत्येक कार्य शाही नवाब नाजिम ज्योद्दी गनजूर अली खाँ को अनुमति के अनुसार होता था, जिसका आशय यह था कि यदि युवक पठान को राज शासन में अधिकार मिल गया, तो इस्लाम को बहुमूल्य सहायता प्राप्त होगी। उस समय दिल्ली में मराठों का जो दल था, उसका अफसर पटेल का जमाई देशमुख और एक मुगल शहजादा ये दोनों थे। उन्होंने गुलाम कादिर की ओर नदी के पार तोपों का दागना शुरू किया जिनका, उत्तर युवा रुहेले ने सन्मुख के तट से दिया और मुगल लश्कर के सिपाहियों को घूस देकर उनमें फूट पैदा कर दी। मराठों ने मामूली मुकाबला किया। गुलाम कादिर यमुना के पार उतर आया और शाही अफसर अपने शिविर और सामग्री छोड़ छोड़कर वल्लभगढ़ के जाट दुर्ग को भाग गए। गुलाम कादिर ने लाल किले की ओर गोली चलाकर अप्रतिष्ठा और विद्रोह करने में कोई कसर नहीं रखी थी। उधर कुटिलतापूर्वक दिखावे की खुशामद करना भी आरम्भ किया। अपने मित्र मंजूर अली को पत्र लिखा, जिसके द्वारा वह दीवान खास में प्रविष्ट हुआ और बादशाह को उसने पाँच

मोहरें भेंट कीं, जो सम्राट् ने अनुग्रहपूर्वक स्वीकृत कर लीं। पुनः गुलाम कादिर ने अपनी क्रूरता प्रकट करने के निमित्त यह प्रार्थना की कि मुझे श्रीमान् की सेवा करने के लिये अति उत्ताप था; इसलिये मुझसे यह अपराध हुआ। तदनन्तर उसने नियमपूर्वक अमीर उल् उमरा का फ़रमान प्रदान करने के लिये निवेदन किया और प्रतिज्ञा की कि मैं सदैव पूर्णतया आज्ञा पालन करता रहूँगा। फिर वह दरबारियों से परिचय करने के लिये चला गया और रात्रि को अपने शिविर में लौट गया। दो तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए। गुलाम कादिर के चित्त को इस कारण श्रैर्य नहीं हुआ कि इस बीच में कोई ऐसी वार्ता नहीं दिखाई दी जिससे उसका मनोरथ सिद्ध होता। वह अपने साथ सत्तर अस्सी सवार लेकर लाल क़िले में घुसा और अपना निवास उन महलों में किया, जिनमें अमीर उल् उमरा रहा करता था।

इसी बीच में समरू की बेग़म, जो अपनी सेना समेत सतलज नदी के इधरवाले तट पर सिखों को आगे बढ़ने से रोकें हुए पड़ी थी, पानोपत से भापटी और लाल क़िले में आ उपस्थित हुई। बेग़म और उसकी युरोपियन सेना से भयभीत होकर और यह समझकर कि बेग़म के विरुद्ध होकर अब कोई मुग़ल दरबारी मुझ से मेल करने के लिये प्रस्तुत नहीं है, रुहेल निराश होकर यमुना पार चला गया और कुछ दिन अपने शिविर में चुपचाप बैठा रहा। बादशाह ने भी इस बार अपने

पुराने समय की सी हिम्मत दिखाई। गुलाम कादिर की देख रेख के लिये अब उसने मुगल अफसर नियत किए और अपनी कौटुम्बिक सेना में ६००० घुड़सवार बढ़ाए, जिनके वेतनार्थ अपने निजी सोने चाँदी के पात्र गलवा डाले। नजफ कुली खाँ को भी उसकी जागीर रिवाड़ी से बुलवा भेजा, जो तुरन्त शाही बुलावे पर दिल्ली पहुँचा। उसने बेगम समरू के निकट खास किले के राजद्वार के सम्मुख तारीख २७ नवम्बर सन् १७८७ ई० को अपने डेरे लगाए। समस्त बादशाही सेना सम्राट् के द्वितीय पुत्र मिर्जा अकबर के अधीन हुई। तदनन्तर गुलाम कादिर के शिविर पर गोले बरसाए गए*।

* ऊपर जो वृत्तान्त लिखा गया है, वह अंगरेजी पुरतक “मुगल एम्पायर” के अनुसार है और एक उर्दू इतिहास-लेखक के वर्णन से मिलता जुलता है, जिसने इस प्रकार लिखा है—

“सन् १७८७ ई० में जब बरसात खतम होने को आई, तो गुलाम कादिर ने दिल्ली के करीब शाहदरे में खेमा इस सबब से डाला कि अपने बाप का जाह व मनसब हासिल करे। इसी असनाय में शमरू की बेगम जो सिखों से लड़ने गई हुई थी, पानीपत से जलदी करके किले में आ गई। अब गुलाम कादिर इस खैरखवाह बेगम और उसको फिरंगस्तानी अफसरों की सिपाह से डरा। और कोई मुगल अफसर उसके साथ भी न हुआ। २७ नवम्बर सन् १७८७ ई० को किले के बड़े दरवाजे के सामने शमरू की बेगम के पास नजफ कुली खाँ खेमा-जन हुआ। दोनों के सिपह सालार मिर्जा अकबर मुक़र्रर हुए। गोला-जनी की। असनाय में मुखालि-फैन ने मुलह कर ली।”

शमरू की बेगम के जीवन चरित्र के लेखक पादरो कोहन साहब ने इस घटना का वृत्तान्त इस भाँति लिखा है—

गुलाम कादिर ने भी उत्तर में ऐसी गोलियाँ चलाई जो लाल किले में पहुँचकर दीवान खास में पड़ीं।

“१७८७ ई. की वर्षा ऋतु के अंत में पुराने विद्रोही जाब्ता खॉ का पुत्र गुलाम कादिर इन प्रदेशों में हलचल फैलती हुई समझकर बैर भाव से दिल्ली के समीप आया। उसका अभिप्राय बलात् अपने पिता को अमीर उल् उमरा की पदवी प्राप्त करना था। अपने मनोरथ में सफल न होकर उसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और मराठों की सेना का मुँह घूँस से भरकर (क्योंकि वास्तव में सिंधिया ही दिल्ली का स्वामी था) लाल किले को अपने अधिकार में ले लिया और सम्राट को कैद कर दिया। इस गहन परिस्थित में बेगम शीघ्रता के साथ पानीपत से आई जहाँ कि वह सिक्खों से लड़ रही थी; और उसने लाल किले के लाहौर दरवाजे के आगे अपने डेरे खड़े किए। गुलाम कादिर की इन प्रार्थनाओं और प्रस्तावों को कि मुगल साम्राज्य को टुकड़े करके हम आपस में बाँट लें, तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करके किले के आगे उसने अपना तोपखाना खड़ा किया और उससे गुलाम कादिर के भारी गोलों का उत्तर दिया। उस राजभक्त बेगम के इस व्यवहार और दृढ़ निश्चित प्रतिज्ञा पर कि बादशाह को छोड़कर ही रहूँगी, गुलाम कादिर पुनः नदी के पार जाने को विवश हुआ। उस दिन के पीछे बादशाह सदैव उसे “साम्राज्य की सबसे अधिक प्रिय पुत्री” (The most beloved daughter of the Empire) इन शब्दों द्वारा सम्बोधित करता था।”

परंतु एक फारसी इतिहास-लेखक ने इस विषय में जो लिखा है, वह बिल्कुल भिन्न है; इसलिये उस यथार्थ लेख को अर्थ सहित नीचे उद्धृत किया जाता है।

هرگاه امیرالامرا بهادر از ریوازی بیاراده عبور چنبل رفت
جناب همایون بے اتفاقی امرایان حضور ملاحظہ فرمودہ شقہ
خاص در طلب بیگم شہر شرف اصدار یافت کہ زون امدہ در
حضور حاضر گردید۔ بیگم رسیدن شقہ حضور را تفاخر عظیم دانستہ
و سعادت دوجہان انکاشتہ بفرار جائدان شتافتہ سعادت

इसी अवसर पर सैधिया का अति विश्वसनीय सेना-
पति अम्बा जी इंगिया अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँचा ।

قدمبوس فائز گردید۔ راجہ ہمت بہادر کہ از امیرالامرا
بہادر دیگ وقت روانہ گردیدن بطرف انور جدا شدہ و رفاقت
گذاشتہ رفتہ بود در جناب ہمایون آمدہ حاضر گردید۔ غلام
قادر کہ در آن طرف چمن دایرہ داشت از رفتن امیرالامرا وقوف
یافتہ و عبور چمن کردہ در فضائی قلعہ کہلنہ خیمہ کرد و ہر روز
در حضور انور حاضر میشد و خیال خہام داشت کہ اگر قابو
فرست یابد بلندوبست قلعہ نمودہ در حضور انور حاضر باشد۔
منظور علیخان و رام رتن مودی را بہ خان از ابلہ فریبیہ فریب
وادہ کہ رائے آنها ہم براین آمدہ بود کہ غلام قادر محیط
گردد۔ جناب ہمایون نیز حرکات ناشایستہ اینہا دیدہ بمقتضائے
وقت متعطل شدہ مہر سکوت بر لب نہادہ تماشاے قدرت
ایژدی بودند۔ الغرض غلام قادر از اغوی این بد اندیشان
بسیار خواست کہ در شہر و قلعہ بلندوبست نماید از بودن
پلاٹین بیگم دسترس یافتہ از راہ تزویر بحضور ہمایون بعرض
رسانید کہ غلام برائے بلندوبست میان دو آبہ مہرود۔ اگر بیگم
مشہر از حضور اقدس ہمراہ غلام گردد باسانی در آن ضلع
متصرف شدہ بطرف اکبرآباد میل نماید۔ حاضران حضور
نیز کہ از تہ دل رفیق او بودند بہ عجز و الحاح در حضور عرض
کردند کہ غلام قادر از خانہ زادان موروثی است۔ عرض او پذیرا
گردد۔ آن حضرت بزمانہ سازی قبول فرمودند۔ بیگم سمر بر
طبق ہمایون از قدسیہ باغ کوچ نمودہ در باغ شاہ نظام الدین
دایرہ کردہ بہ غلام قادر پیغام داد کہ بموجب حکم اقدس برائے
امداد حاضر است۔ غلام قادر از حضور انور خلعت رخصت گرفتہ

उसके आने पर मुख्य मुख्य शाही दरबारियों और गुलाम कादिर के बीच में मिलाप हो गया । गुलाम कादिर को बादशाह की

در فرود گاه رفتۀ از بیگم سسر و برای عبور چمن تقید کود-ان عاقله زنان که از بد و انکشاف صبح اقبال گاهے در دام تذویر کسے نیامده گفتہ فرستاد کہ اول نواب صاحب گزارہ فرماید۔ بعد از آن گزارہ فوج ما بہ آسانی خواهد شد۔ القصہ غلام قادر عبور کردہ و آن مرغ زیرک در مکر و فریب او نیامده بال پرواز گشود و زور بازوے شہیر خود و انمودہ برکنار دریا مورچہ مستحکم گردانیدہ مستعد بکار گردید۔ دہم معہم الکرام غلام قادر را ارادہ عبور چمن کردہ بیگم ازین معنی خبردار شدہ مستعد جنگ شد و چنان توپہاے رعد مہال غریدن گرفت کہ زمین و آسمان در لرزہ افتاد۔ در آن روز مردم شہریار بسبب ہنگام و فساد راہ در شاہ مردان بردن صلاح ندیدہ بردیا چمن آوردند و نعرہ ہاے و ہوے اہل اسلام و خلیق کہ لاتعداد تحطای بودند القدر بلند بود کہ گویا از رستخیز نمودار گشت۔ غلام قادر ازین غوغا خائف و ہراسان گردید کہ از حضور ہمایون بہادر نیغ گزار نہنگان خونخوار بارادہ شنآوری رسیدند سراسیمہ از خیال باطل خود برگشت و در چند روز علیگدہ را بتصرف آورد و در محاللات گرونواح تہانجات خود قائم کردہ از عذر و حیلہ در پی دوستی اخلاص و ارتباط محمد اسمعیل خان گردید۔ خان کہ مرد سپاہی بود دوستی این افضان بے ایمان در یلوقت کہ آمد آمد فوج مرہتہ بود غنیمت پنداشتہ اساس دوستی محکم گردانید۔

अर्थात् जिस समय प्रधान मन्त्री रेवाड़ी से चम्बल पार करने के अभिप्राय से गया, उस समय बादशाह ने अपने सरदारों में फूट देखकर एक बत्र बेगम समर

सेवामें उपस्थित किया गया और उसको अमोरउल् अमरा को पदवी प्रदान की गई। शाह आलम ने उसके सिर पर निज करों से रत्नजटित डोरी अर्थात् दस्तूर उल् गोश्वारा बाँधा।

के बुलाने को लिखा कि शीघ्र आकर उपस्थित हो। बेगम ने बादशाह के पत्र पहुँचने का अपना बड़ा सम्मान और सोभाग्य समझा। कपट अपनी जागीर से प्रस्थान कर शुभ चरणों में पहुँचा। राजा हिम्मत बहादुर, जो प्रधान मन्त्रा से डींग में अतार का ओर जाने के समय पृथक् होकर और साथ छोड़कर चला गया था, बादशाह का सेवा में आ गया। गुलाम कादिर को, जो यमुना के उस पार डेरा डाले पड़ा था, प्रधान मन्त्री के गमन की सूचना मिली। वह यमुना पार करके आया और पुराने किने के मैदान में उसने अपना डेरा डाला। वह प्रतिदिन बादशाह के पास आता था और इस तक में रहता था कि यदि वश चले और अवकाश मिले, तो किने का प्रबन्ध करके बादशाह के पास चला आवे। मनजूर अली खाँ और रामरत्न मोदी को खान द्वारा कपट जाल में ऐसा फँसाया कि उनका मन भी यह हो गया कि गुलाम कादिर सफलता प्राप्त करे। बादशाह सलामत भी इनके दुराचार को देखकर समय के अधीन होकर धैर्य धारण कर और मने साधन करके देवों प्रकृति का कौतुक अवलोकन करने लगा। गुलाम कादिर ने इन अशुभ चिन्तकों के बहकाने से बहुतेरा चाहा कि नगर और किले का प्रबन्ध करे। बेगम समरू की पलटनों के विद्यमान होने से उसे यह अवसर मिला कि छल से उसने बादशाह से यह प्रार्थना की कि दास दुआब का प्रबन्ध करने के हेतु जाता है। यदि बेगम समरू श्रीमान् की सेवा से दास के साथ चले, तो सुगमतापूर्वक उस प्रान्त को अधिकृत करके आगरे को चली जाय। उपस्थित जनों ने, जो हृदय से उसके हितचिन्तक थे, बड़ी नम्रता से बादशाह से निवेदन किया कि गुलाम कादिर इस घराने का पुराना पला हुआ है; अतः उसकी विनय स्वीकृत की जाय। बादशाह ने यह स्वीकार कर लिया। बेगम समरू ने बादशाह की अनुमति से कुदसिया बाग से कूच करके शाह निजाम उद्दीन के बाग में अपना डेरा लगाया और गुलाम कादिर के

गोकुलगढ़ की लड़ाई

रुस्तम रहा ज़मीं पै न कुछ साम रह गया ।

मर्दों का आसमाँ के तले नाम रह गया ॥

पाम सँदेसा भेजा कि मैं बादशाह के आज्ञानुसार सहायतार्थ उपस्थित हूँ। गुलाम कादिर जब बादशाह से बिदाई की खिलअत प्राप्त करके अपने स्थान पर आया, तब उसने यमुना पार उतरने के लिये बेगम समरू से अनुरोध किया। उस चतुर नारी ने, जो जब से उसके भान्य का उदय हुआ था, कभी किमी के प्रपंच में नहीं कँपी थी, यह कहला भेजा कि पहले नवाब साहब ही पार उतरें। तदनन्तर मेरी सेना सुगमता से उतर जायगी। गुलाम कादिर अंत में पार उतर गया; और वह निपुण स्त्री उसके धोखे और कपट में न आई। पुनः उसने अपना साहस और बल प्रकट किया। यमुना-तट पर उसने अपने दृढ़ मोरचे लगाए और संग्राम की तैयारी कर ली। तारीख़ इसवी मुहर्रम उल्हराम को गुलाम कादिर यमुना पार उतगा। बेगम को जब उसकी खबर हुई, तब वह लड़ाई करने को तैयार हो गई। उसकी नौपो की गर्जना का इतना घोर शब्द हुआ कि पृथ्वी और आकाश थरथराने लगा। उस दिन नगर के मनुष्यों ने उपात और उपद्रव के कारण शाह मरदान के मार्ग में बाहर जाना उचित न समझकर यमुना पर आश्रय लिया। अगणित मुसलमानों और प्रजा की चिल्लाहट और दायः दाय इतनी अधिक हुई कि मानो प्रलय आ गई। गुलाम कादिर इस से बहुत भयभीत और उदास हुआ और यह समझा कि बादशाह की आज्ञा से तलवार चलानेवाले योद्धा रक्त के प्यासे मगर-मच्छों की भाँति तैरने के हेतु आए हैं। अतः अपना मिथ्या विचार छोड़कर चल दिया। थोड़े दिनों के अंदर उसने अलीगढ़ पर अपना अधिपत्य जमाया और चारों ओर स्थानों में अपने थाने नियत किए। पुनः चाल चलकर और चमामाँगकर मुहम्मद इस्माईल खाँ से गहरी मित्रता करने की ठानी। खान एक सिपाही आदमी था। इससे उसने इस अफगान बेईमान को ऐसे समय पर जब कि मराठों की सेना आने-वाली थी, उचित समझकर उसके साथ मिलाप कर लिया।

पुरुष हो या स्त्री हो, यदि वह गुणवान् और योग्य है, तो उसका जीवन सार्थक है; और नहीं तो अगणित प्रकार के जीव जन्तु इस संसार में पैदा होकर मर जाते हैं। उनके जन्म, जीवन और मृत्यु का हाल इसी प्रकार लुप्त हो जाता है, जिस प्रकार वे आप इस जगत् में वे जाने पृछे रहकर मर जाते हैं। यदि यह संसार किसी की कुछ परवाह करता है, किसी को स्मरण रखने योग्य समझता है, प्रशंसा करता है, अपना आदर्श बनाकर अनुकरण करता है, तो वह केवल गुणवान् ही है।

वीरता स्त्री या पुरुष की बपौती नहीं है। जो उसे धारण और प्रकट करता है, वही वीर कहलाता है।

वीर राजपूत नौ मुसलिम नजफ़कुली खाँ और समरू की बेग़म ने मिलकर अफ़ग़ान गुलाम कादिर के छक्के छुड़ा दिए थे और बादशाह शाह आलम के मान की उससे रक्षा की थी। इसका वर्णन पीछे हो चुका है। परन्तु इस लेख में उन दोनों मित्रों को शत्रुओं के रूप में दिखाने का वर्णन आता है। इस बैर का यह कारण हुआ कि जो मंत्री मण्डल इस वक्त शक्तिशाली था और जिसके हाथ में साम्राज्य की बाग डोर थी, उसने वीर नजफ़ कुली खाँ को उसकी जागीर के कुछ भाग से वंचित कर दिया और उसके स्थान में मुराद बेग को नियुक्त किया। मुग़ल मुरादबेग उस जागीर को अपने अधिकार में लेने को आ रहा था। वीर नजफ़ कुली खाँ भले ही मुसल-

मान हो गया था, परन्तु फिर भी उसकी नाड़ियों में जो पवित्र राजपूती रक्त विद्यमान था, वह क्रोध से उबल आया। उससे यह अपमान सहन न हो सका। यद्यपि उसकी जागीर का कुछ अंश ही छीना गया था, तथापि उसने इसमें अपनी सर्वथा अप्रतिष्ठा समझी। जब मुराद बेग जाने लगा, तब नजफ़ कुली खाँ ने, जो उसकी घात में लगा हुआ था, उसको मार्ग में रोककर पकड़ लिया और रेवाड़ी में कैद कर दिया।

तारीख ५ जनवरी सन् १७८८ ई० को शाह आलम ने बहुत सी शाहज़ादियों और शाहज़ादों को अपने साथ लेकर जयपुर और जोधपुर जाने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। बादशाह ने संधिया से तोते की तरह आँखें फेर लीं। मार्ग में उसको यह उचित प्रतीत हुआ कि नजफ़ कुली खाँ को, जिसका यह निश्चय है कि मेरा गोकुलगढ़ का दृढ़ दुर्ग टूट ही नहीं सकना और जो अपने मन में यह प्रण ठाने बैठा है कि बिना सचिव बनाए मैं अधीनता न स्वीकार करूँगा, दमन करने का अब अच्छा अवसर है। इस वक्त बादशाह के लश्कर में नजीबों को पलटनें, जो थोड़ी कवायद जानती थीं, शरीर-रक्षक सेना, जो लाल कुर्ती कहलाती थी, बहुत बड़ी संख्या मुगलों के रिसाले की, और तीन शिदित पलटनें, जिनको स्वर्गीय समरू ने खड़ा करके कवायद परेड सिखाई थी और जो अब तोप-खाने और दो सौ के लगभग गोरे तोपचियों के साथ समरू की बेग़म के अधीन थी, सम्मिलित थीं। इसके अतिरिक्त

बादशाह के साथ वल्लभगढ़ का जाट राजा हीरासिंह और इस्माइल बेग की सेना की एक छोटी टोली राजा हिम्मत बहादुर की अध्यक्षता में भी थी ॥

तारीख ५ अप्रैल सन् १७८८ ई० को बड़े तड़के नजफ़ कुली खाँ की ओर के लोगों ने, जो घिर गए थे, बड़ा प्रबल प्रहार किया। शाही खरगाह उस समय इतनी अधूरी और अप्रस्तुत थी कि बादशाह के कुटुम्ब सहित मारे जाने या पकड़े जाने का बड़ा डर था। जब बेगम को इस बात का पता लगा, तब वह बादशाह के डेरों की ओर दौड़ी आई और शाह आलम को सपरिवार कुशलतापूर्वक अपने निजी शिविर में ले गई। शाही सेना में हलचल मच रही थी कि ऐसी विषम परिस्थित में जार्ज टामस के अधीन बेगम की तीनों पल्टनें और तोपें आतुरता से भपट्टी और बड़े वेग से शत्रु पर गोलियाँ चलाई कि धावे करनेवालों का बल टूट गया। उधर शाही लश्कर को भी तैयार होने और सँभलने का अवसर प्राप्त हो

• सेना दल का उपर्युक्त संख्या “मुगल एम्पायर” के अनुसार है। किन्तु “सिंघना” में बेगम की साथी फौज की संख्या “केवल तीन शिक्षित रेजिमेंट और एक तोपखाना जार्ज टामस की अध्यक्षता में” लिखा है। एक उर्दू इतिहास में सेना का ब्योरा यह है—नजाबों का पल्टन, लाल कुर्ती, कवायद फि गिस्तानी जाननेवाले मुगलों के दस्ते, सवारों के दो सौ फि गिस्तानी गोला-अन्नाज, तीन पल्टन समरु का कवायद सिखाई हुई। इस सेना की अफार समरु के बेगम थी।

† उर्दू पुस्तक में तारीख १० अप्रैल सन् १७८८ ई० लिखा है।

गया, जिससे अब बादशाह की ओर की समस्त सेना लड़ने लगी। बेगम भी बादशाह को परिवार सहित अपने डेरों में पहुँचाकर रणस्थल में आ पहुँची और जब तक युद्ध होता रहा, वह निरंतर पालकी में उपस्थित रही। अंत में विद्रोही सेना के पाँव उखड़ गए और वह भाग निकली। दुर्ग पर शाही अधिकार हो गया ❀।

इस बात को सब ने कबूल किया कि बादशाह तो इस लड़ाई में सर्वथा बेगम की तत्परता और वीरता से ही बचा; और नहीं तो उसका बचना कठिन था।

विजय होने पर एक दरबार किया गया, जिसमें बादशाह ने खुल्लम खुल्ला सब के समक्ष बेगम की सेवाओं के लिये धन्यवाद दिया, उसको खिलअते फ़ाखरा प्रदान किया, तथा बादशाहपुर का बड़ा परगना, जो यमुना के दाहिने तट पर दिल्ली के दक्षिण में है, जागीर में बखशा। वह उसे अब तक अपनी पुत्री तो कहता ही था, इसके अतिरिक्त जेबउल्निसा (नारीभूषण) की उपाधि से और सुशोभित किया।

* “मुगल एम्पायर” के लेखक ने यह और अधिक लिखा है कि सरदार (नजफ़ कुली खॉ) का दत्तक पुत्र ‘चेला’ गोली से मारा गया। गुसाइयों के नायक हिम्मत बहादुर ने बड़े मतवाले-पन से धावा किया, जिसमें उसके २०० गुसाई खेन रहे। नजफ़ कुली खॉ अपनी तोपे खोकर डट गया।

उर्दू तार ख में लिखा है कि बेगम का हुक्का-बरदार लड़ाई में पालकी के पास में ही गोले से उड़ गया; बेगम का त्योरी पर जरा भी बल नहीं पड़ा; वह बराबर अजी रही।

नजफकुली खाँ ने भी मंजूर अली खाँ द्वारा क्षमा की प्रार्थना की। समरू की बेगम ने उसके पक्ष को पुष्ट किया, जिसका यह परिणाम हुआ कि उसको पूर्णतया क्षमा प्रदान की गई और वह पुनः बादशाह का कृपापात्र बन गया।

पिशाच-लीला

क्या पतवार दह का इबरत की जा है यह।

इशरत फ़िजा कभी कभी मातमूसरा है यह ॥

दिल्ली ! राजधानी दिल्ली ! भारत के नगरों में तेरी शान, तेरा इतिहास भी अद्भुत, अनुपम और अपूर्व है। जैसे तेरे प्रताप, तेरे गौरव और तेरी उन्नति की कथा हर्षदायक और प्रशंसनीय है, वैसे ही तेरे अधःपतन, तेरे पाशविक अत्याचार का बखान भी अति भयंकर और विस्मयजनक है। कोई नहीं बता सकता कि कितनी बार तुझ पर उग्र आक्रमण हुए; कितने दफ़े तुझमें लूट खसोट, मार धाड़ और हत्याकांड हुए। जितना तेरा बिगाड़ सुधार हुआ है, कदाचित् भारतवर्ष के और दूसरे नगर का नहीं हुआ। तू बनकर बिगड़ती और बिगड़ बिगड़कर सँवरती रही है। तेरा ढंग ही निराला है, तेरी शान ही जुदा है। बहुत प्राचीन समय को जाने दो, मुगलों के उत्थान-पतन में ही, जिसका दिग्दर्शन इस पुस्तक में हुआ है, तेरे ऊपर जितने प्रहार हुए, जितनी बार रक्त की नदियाँ तुझ में बहाई गईं, उनका ही वृत्तान्त सुन कर मनुष्य का दिल दहलता है और शरीर के रोपें खड़े हो

जाते हैं। तभी तो उर्दू के प्रसिद्ध प्राकृत शायर हाली पानी-पती ने कहा है—

ज़िफ़ दिल्लीये मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़ ।

न सुना जायगा हमसे यह फ़िसाना हरगिज़ ॥

मुग़ल बादशाहत के नष्ट भ्रष्ट होने पर उसके अंतिम नाम मात्र बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र ने सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह के पीछे तेरी दुःखमयी शोचनीय दशा देख-कर जो एक करुणाजनक और दिल हिलानेवाली ग़ज़ल कही थी, उसके शेर अब भी हृदय को विदीर्ण करते हैं। वह ग़ज़ल इस प्रकार है—

गई यकबयक यह हवा पलट मेरे दिल को अब न करार है ।

करूँ ग़मे सितम का मैं क्या बयाँ मेरा ग़म से सीना फिगार है ॥१॥

यह रिआया हिंद तबाह हुई कहुँ क्या जो इनपे जफ़ा हुई ।

जिसे देखा हाकिमे वक्त ने कहा यह तो काबिलेदार है ॥२॥

यह सितम भी किसी ने है सुना जो दे फाँसी लाखों को बेगुनह

वले कलमा गोयों की तरफ़ से अभी उनके दिल पे गुबार है ॥३॥

न दबाया ज़ेरे चमन उन्हें न दी गोर और कफ़न उन्हें ।

किया किसने यारो दफ़न उन्हें बे ठिकाने उनका मज़ार है ॥४॥

जो सलूक करते थे औरों से कहुँ क्या वह जैसे हैं तौरों से ।

वह हैं तेग़े चर्ख़ा के ज़ोरो से रहा तन पे उनके न तार है ॥५॥

न था शहर देहली यह था चमन वले सब तरह का था याँ अमन

जो ख़िताब इसका था मिट गया फ़क़त अब तो उजड़ा दयार है ॥६॥

यह ज़माना वह है बुरा कि चलो बचके सबसे अलग अलग ।
 न रफ़ीक़ कोई किसी का अब न कोई किसी का यार है ॥७॥
 तुझे क्या ज़फ़र है किसी का डरतू खुदा के फ़ज़ल पे रख नज़र ।
 तुझे है वसीला रसूल का वही तेरा हामीकार है ॥८॥

दुर्भाग्यवश एक ऐसी ही दुर्घटना का उल्लेख इस अध्याय में किया जायगा । कदाचित् इसके संबंध में यह कहा जाय कि समरू की बेगम के जीवन चरित्र से इसका कुछ लगाव नहीं है, न किसी लेखक ने इस वृत्तान्त को उसकी जीवनी में पहले लिखा है । अतः इस विचार से इस वार्ता का यहाँ लिखना बिल्कुल अप्रासंगिक है । किन्तु यदि यह कहना सत्य भी हो, तो इसके विषयमें यह विदित करना अनुचित न होगा कि ऐसी दुःखदायी घटना अपने निरालेपन और दारुण कठोरता के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से इतनी महत्वशालिनी है कि बेगम के चरित्र में, जिसका संबंध मुग़ल साम्राज्य से बड़ा ही घनिष्ठ था और जिसके समय में यह पिशाच-लीला हुई, इसका उल्लेख करना अनुचित न होगा । यदि इस विचार से इसे देखा जाय तो यह अप्रासंगिकता के दोष से रहित है ।

गुलाम कादिर के वर्णन में यह प्रकट किया जा चुका है कि कभी बादशाह शाह आलम बेगम समरू और नज़फ़ कुली खाँ को बुलाकर गुलाम कादिर से गुद्द करता था, और कभी उसको अमीर उल्-उमरा का उच्च पद देकर यहाँ तक सम्मानित करता था कि दस्तूर गोशवारह निज करों से उसके सिर पर

बाँध देता था। बादशाह का कर्तव्य इससे अधिक दृढ़ और स्पष्ट होना चाहिए था। क्योंकि कहा है—

जिनके रुतबे हैं सिवा उनकी सिवा मुशकिल है।

गुलाम कादिर ने भोले भाले इस्माइल बेग को दम दिलासे देकर अपनी ओर कर लिया था। इस्माइल बेग बड़ा वीर अफसर था और मुगल सेना पर उसका बड़ा आतंक और प्रभाव था। गुलाम कादिर को ऐसे ही मनुष्य की आवश्यकता थी। उसने न जाने क्यों अपने मन में यह ठान ली थी कि मैं वह पाशविक अन्याचार और दारुण अपराध करूँ, जिसके आगे तीस वर्ष पूर्व गाज़ी उद्दीन की प्रकट की हुई निर्दयता छिप जाय।

उसने इस्माइल बेग से कहा कि अपनी बिखरी हुई सेना को शीघ्र एकत्र कर लो। इस्माइल बेग तो यह काम करने को चला और गुलाम कादिर ने दिल्ली का मार्ग लिया। वहाँ पहुँचकर मंजूर अली खाँ के द्वारा राजभक्ति प्रकट करने को कुटिल नीति का अवलंबन किया। इस्माइल बेग भी अब पहुँच गया था। इसलिए गुलाम कादिर ने यह जतलाया कि इस्माइल बेग और मैं हृदय से साम्राज्य को मराठों के फंदे से निकालना चाहते हैं। वास्तव में इस्माइल बेग का तो यही आशय था। दोनों सरदार अर्थात् गुलाम कादिर और इस्माइल बेग ने इस समय बड़ी अवीनता और नरमी दिखाई। सिंधिया भी चुप न रहा। उसने थोड़ी सी सेना दिल्ली भेज दी, जिसने लाल क़िले में अपना डेरा जमाया। उसको देखकर कपटी गुलाम

कादिर और इस्माइलबेग ने शाहदरे में जाकर अपने डेरे खड़े किए; क्योंकि अभी इनका दल इकट्ठा नहीं हुआ था। अब जुलाई का मास था। खेती का समय व्यतीत हो चुका था। गुलाम कादिर के पठानों और रुहेलों के कठोर व्यवहार और कारण अन्न के व्यापारी लश्कर में न ठहर सके। फिर क्या था; सिपाही भी भागने लगे। इसलिये यह सोचकर कि न जाने क्या कठिनाई उपस्थित हो, गुलाम कादिर ने अपने भारी और बोझिल सामान गौसगढ़ को भेज दिए। उसने अपने साथियों सहित बादशाह से फिर यह कहना आरंभ किया कि सिंधिया की मित्रता छोड़ दी जाय। बादशाह ने अपनी परिस्थिति का विचार करके यह उत्तर दिया कि मुझे यह बात नहीं भाती। शाह आलम के इस समय इतनी दृढ़ता धारण करने का यह हेतु था कि एक तो मराठों की सेना हिम्मत बहादुर के नीचे उसके समीप विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त उसे गुल मुहम्मद, बादलबेग खाँ, सुलेमान बेग और दूसरे मुगल सरदारों से भी सहायता पाने की आशा थी, जिन्हें वह अपना हितकारी समझता था। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि गुलाम कादिर और इस्माइलबेग आदि का पक्ष अब सर्वथा गिर गया।

इधर इन षड्यंत्रकारियों पर जो यह दबाव पड़ा, तो उन्होंने अब तक राजभक्ति का जो मिथ्या स्वाँग रच रक्खा था, उसको त्याग कर प्रत्यक्ष में अपना असली स्वरूप दिखाया और वे

अपनी भारी भारी तोपों से लाल किले पर गोले बरसाने लगे। बाद-शाह ने भी अब खुल्लम खुल्ला मराठे सचिव से कुमक मँगाई, जो इस समय मथुरा में मौजूद था। परन्तु माधवजी सिंधिया ने, जिसको अनेक बार शाह आलम की दहता और शुद्ध भाव के अभाव का परिचय मिल चुका था, उससे बचना चाहा, जिससे बादशाह को भली भाँति शिक्षा मिल जाय। उसे मुसलमानों की भगड़ालू प्रकृति और लड़ाकेपन की रुचि का भी पूर्ण अनुभव था; इस कारण वह उनसे एक ऐसा युद्ध करने से, जिसमें वे सब सम्मिलित हो जायँ, यथा-साध्य किनारा करता था। क्योंकि यह बहुत सम्भव था कि जब मुसलमानों को बाहर लड़ने को कोई और न मिलेगा, तो वे आपस में ही लड़ भगड़कर कट मरेंगे।

इन गूढ़ रहस्यों को सिंधिया ने अपने मन में रखकर एक ऐसी दरमियानी चाल चली, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। उसने समरू की बेगम के पास दूत भेजा और उससे यह आग्रह किया कि तुम शीघ्र ही बादशाह के सहायतार्थ पहुँच जाओ। परन्तु बेगम भी उससे कुछ कम चतुर और कुशल न थी, जो उसकी इस चाल में आ जाती। वह तत्काल समझ गई कि दान में कुछ काना है। इसलिये उसने सिंधिया के पास यह उत्तर भेजकर अपना पीछा छुड़ाया कि जब मेरी अपेक्षा आपकी सेना और शक्ति कहीं बढ़ चढ़कर है और फिर भी आप बचते हैं, तो मैं दीन हीन अवला क्या कर

सकती हूँ। अंत में सिंधिया ने अपना एक विश्वासपात्र ब्राह्मण भेजा, जो तारीख १० जुलाई को दिल्ली पहुँचा; और उसके पाँच दिन पीछे दो हजार घुड़सवार सेना सिंधिया के संबंधी राय जी की अध्यक्षता में आई। दूसरी ओर से वल्लभगढ़ के जाटों ने भी कुछ सेना भेजकर पुष्टि की।

अपने लिये ऐसे अशुभ सगुन देखकर गुलाम कादिर घबराया और उसने भी अपना समस्त दल बल तुरन्त ग़ौसगढ़ से बुला लिया और खूब ही लूट खसोट पाने के भर देकर उन्हें उभारा। तदनन्तर उसने इस्माइल बेग को यमुना पार जाने के लिये उस्काया जिसमें वहाँ पहुँचकर दिल्ली में रहने-वाली सेना को बहका कर बादशाह की ओर से विमुख करे। उस पर इस्माइल बेग का इतना प्रभाव था कि शाही लश्कर का मुगल भाग तो तत्काल उनके पक्ष में हो गया। जो शेष सेना, अभागे बादशाह के रक्षार्थ रही, वह सब हिन्दुओं की थी, जिसका सेनापति गुसाई हिम्मत बहादुर था। हिम्मत बहादुर का मन कदाचित् बादशाह के हित में न था; अथवा वह गुलाम कादिर की धमकियों से डर गया। और कदाचित् ऐसा हुआ हो, जो बहुत सम्भव था, कि इन शठों ने उसे कुछ दे दिलाकर बादशाह की ओर से फेर दिया हो। गुसाई हिम्मत बहादुर बादशाह को शीघ्र छोड़कर चल दिया; और प्रपंचियों ने यमुना के उत्तर ओर इस पार आकर दिल्ली को अपने अधिकार में करा लिया।

बादशाह को बड़ी चिन्ता हुई और उसने अपने अनुचरों से सम्मति करके यह निश्चय किया कि मंजूर अली खाँ को भेजा जाय, जो स्वयं गुलाम कादिर और इस्माइल बेग के पास जाकर उनके मन की बात पूछे। मंजूर अली खाँ बादशाह को आज्ञा पाकर उनके पास गया और उसने यह प्रश्न किया कि अब तुम्हारे क्या विचार हैं ? उन्होंने यह उत्तर दिया कि दास तो अपने शरीर से केवल राज राजेश्वर की सेवा करने के लिये आया है। मंजूर अली ने कहा कि अच्छा, ऐसा ही करो; परन्तु लाल किले में अपने साथ अपनी सेना न लाओ; कुछ अर्दली लेकर चले आओ। और नहीं तो तुम्हें देखकर राजद्वाराध्यक्ष द्वार बन्द कर देगा। इसी आदेश का दोनों सरदारों ने पालन किया और दूसरे दिन तारीख १८ जुलाई सन् १७८८ को उन्होंने आम खास में प्रवेश किया। प्रत्येक को तलवार और अन्य पारितोषिकों के समेत सात मोहरों की खिलअत प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त गुलाम कादिर को एक रत्न-जटित ढाल अधिक मिली। इसके उपरान्त वे नगर में अपने निवासस्थान को आ गए, जहाँ इस्माइल बेग ने शेष दिन नगर-वासियों की रक्षा और विश्वास के हित प्रबन्ध करने में बिताया। अगले दिन उसने अपना निवास तो उस हवेली में किया, जिसमें पहले मुहम्मद शाह का मंत्री कमर उद्दोन खाँ रहता था; और अपनी सेना का डेरा उसने दो मील पर प्रसिद्ध निजाम उद्दान औलिया के मकबरे के

समीप कराया, जो नगर के दक्षिण ओर है। गुलाम कादिर की सेना पास ही दरियावगंज में रही और उसके अफसरों ने उन विशाल मन्दिरों में अपने डेरे लगाए, जिनमें पहले गाज़ी उद्दीन और पीछे मिर्ज़ा नजफ़ खाँ रहते थे। इस समय में दिल्ली की राजनीतिक परिस्थिति यह थी कि गुलाम कादिर तो प्रधान मंत्री बना, जिसने कुरान की शपथ खाई कि मैं इस पद के कर्तव्यों को ठीक ठीक पालन करूँगा; और उसके पूर्व पटेल माधव जी सिंधिया का नाम उड़ा दिया; और इन सब की सम्मिलित सेना का नाम साम्राज्य की सेना रक्खा गया, जिसका सेनापति इसमाइल बेग था।

अब गुलाम कादिर ने बिलैया दण्डवत् करना छोड़ दिया और अपना वास्तविक भयंकर रूप प्रकट किया। तारीख २६ जुलाई को फिर वह किले में आया और दीवान खास में बाद-शाह से भेंट की। उसने इसमाइल बेग का नाम लेकर, जो उसके निकट ही खड़ा हुआ था, यह विदित किया कि लश्कर मथुरा को कूच करने और मराठों को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने को तैयार है। परन्तु सिपाही लोग पहले अपना पिछला वेतन माँगते हैं, जिसका शाही खजाना ही उत्तर-दाता है; और केवल वही उसे चुका सकता है।

इस कथन का अंत में नवाब नाजिम, उप-नाजिम और रामरत्न मोदी ने समर्थन किया। लाला सीतलप्रसाद खजांची ने, (जो तत्काल वहाँ पर बुलाया गया था) कहा

कि चाहे खजाने की उस सेना के लिये, जिसके खड़े करने में उसने कुछ योग नहीं दिया और जिसकी सेवा से उसने अब तक लेश मात्र भी लाभ नहीं उठाया, कुछ भी उत्तरदायित्व हो। परन्तु कम से कम इस कोश में ऐसे व्यय के हेतु कुछ नहीं है। उसने इस पर प्रत्यक्ष रूप से जोर दिया कि जिस प्रकार बने, इस माँग का प्रतिवाद किया जाय।

इस खरी बात को सुनकर गुलाम कादिर तो फिर आपे में न रहा और उसको क्रोध का इतना अधिक आवेश हो आया कि जिस को वह सहन न कर सका। उसने तुरन्त वह पत्र निकाला, जो शाह आलम ने सहायतार्थ सिंधिया के पास भेजा था और जो उसके हाथ पड़ गया था। पुनः गुलाम कादिर ने आज्ञा दी कि बादशाह के सिपाही उसके शरीररक्षक पहरे के समेत छीन लिए जायँ और उसे अलग करके कड़ी कैद में रक्खा जाय। इसके उपरान्त सलीमगढ़ के किसी छिपे हुए कोने से तैमूर के घराने का एक दीन हीन गुप्त बालक निकाला गया और उसे राजसिंहासन पर आरूढ़ किया गया। बेदार बख्त की उपाधि देकर उसके बादशाह होने की घोषणा कराई गई और समस्त दरबारियों और सेवकों से उसकी भेंट कराई गई। कहा जाता है कि नवाब नाजिम मंजूर अली ने उस अवसर पर बड़ी समझ और हिम्मत का परिचय दिया; क्योंकि जब बेदार बख्त प्रथम बार बुलाया गया था, तब शाह आलम अभी तख्त पर विराजमान था; और जब उससे कहा गया कि इससे

उतरो, तो उसने इसका कुछ विरोध करना चाहा। इस पर गुलाम कादिर उसको मारने के लिये अपनी तलवार खींच रहा था कि मंजूर अली ने बीच में पड़कर बादशाह को समझाया कि आपत्ति का विचार करके समयानुसार कार्य करना उचित है। यह सुनकर वह शान्तिपूर्वक उठ खड़ा हुआ। तीन दिन और तीन रात बादशाह और उसका कुटुम्ब बराबर कड़ी हवालात में निराहार और निर्जल बड़े कष्ट में पड़ा रहा। गुलाम कादिर ने इस्माइल बेग को तो कह सुनकर शिविर में भेज दिया और मेरी अनुपस्थिति में इसने खूब लूट खसोट मचाई। इस्माइल बेग को भी इसकी शंका हुई, तो उसने अपना एक मनुष्य गुलाम कादिर के पास भेजकर स्मरण कराया कि प्रतिज्ञानुसार पारिश्रमिक स्वरूप मुझको या मेरे सिपाहियों को अब तक लूट में से कुछ नहीं मिला। किंतु विश्वासघाती रुहेले ने स्पष्ट अस्वीकार किया कि हमने कोई ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की थी; और वह क़िले तथा समस्त वस्तुओं को मनमानी रीति से अपने प्रयोग में लाने लगा।

अब इस्माइल बेग की आँखें खुलीं और उसे अपनी मूर्खता का बोध हुआ। उसने तुरंत नगर की प्रजा के मुखियाओं को बुलाया और उनको बहुत समझाया कि अपनी अपनी रक्षा का प्रबन्ध करें। उधर अपने सेनानियों पर यह दबाव डाला कि यदि रुहेले नगर में लूट मचावें, तो यथा संभव उनसे जितना प्रयत्न हो सके, उसमें वे अपनी ओर से कुछ कसर न

रहने दें। इस समय तो गुलाम क़ादिर का ध्यान शाही परिवार को लूटने में अधिक लगा हुआ था; इसलिये नगर के विध्वंस करने का उसको अवकाश नहीं था। जब वह उन आभूषणों से तृप्त न हुआ, जो नवोन बादशाह ने बेगमों से लिए थे, जिसको कि पहले ही पहले गुलाम क़ादिर ने उनके समस्त गहने छीनने की सेवा पर नियुक्त किया था, तब उसको फिर यह सूझ पड़ी कि शाह आलम अपने कुटुम्ब का स्वामी है; उसको अवश्य उस स्थान का पता होगा, जहाँ कहीं गुप्त धन रक्खा हुआ है। अनंतर जो अपराध और भयंकर अत्याचार हुए, उनका मूल कारण केवल यही भ्रम था। २६ वीं तारीख को उसने बेदार बख्त से कहा कि वृद्ध शाह आलम को शारीरिक कष्ट दो। इसके अनुसार ३० तारीख को यह घोर पाप हुआ कि शाह आलम के परिवार को कई एक बेगमों को पीटा गया, जिनके रुदन और विलाप के नाद से समस्त राजभवन गूँज उठा। ३१ तारीख को उस दुष्ट ने यह सोचा कि मुझे अब इतना पर्याप्त धन मिल गया है कि पाँच लाख रूपए का पारितोषिक इस्माइल बेग और उसके सिपाहियों के पास भेजकर उनसे फिर मेल कर लिया जाय। इसका फल यह हुआ कि दोनों ने मिलकर नगर के हिन्दू साधूकारों से फिर रूपए वसूल किए।

तारीख १ अगस्त को बादशाह से कल्पित दफ़ीने बताने के निमित्त कहा गया, जिसने उसके जानने से सर्वथा अपनी

अनभिज्ञता प्रकट की। बेचारे बुड़ढ़े ने हारकर उस निर्दय से कहा—“यदि तुम समझते हो कि मेरे पास कोई दफ्तीना है, तो वह मेरे शरीर के अंदर होगा। मेरी अँतड़ियों को चीर डालो और अपनी तृप्ति कर लो।”

पुनः पूर्ववत् बादशाहों की वृद्ध विधवाओं का नाना भाँति से अपमान किया गया और उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया गया। पहले तो उनके साथ अच्छा व्यवहार हुआ: क्योंकि उसका यह विचार था कि वे इम्तियाज महल की बेगमों को लुटवाने में सहायता देंगी। परंतु जब उन्होंने ऐसा न किया, तब फिर स्वयं उन्हीं को लूटा गया और उन्हें क़िले से बाहर निकाल दिया गया। जब ये सब अत्याचार हो चुके, तब गुलाम क़ादिर ने मंजूर अली खाँ को डाँटा, जिसका वह अब तक स्वयं प्रतिपालक था और उससे सात लाख रुपए माँगे। तारीख ३ अगस्त को गुलाम क़ादिर ने यह दुष्कर्म करके अपनी नीचता का परिचय दिया कि दीवान खास में वह तख्त पर नाम मात्र बादशाह के बराबर बैठकर उसके आगे झुका पीता रहा और सब प्रकार से उसका उपहास करता रहा। तारीख ६ अगस्त को उसने शाहीतख्त को तुड़वाकर और उसके ऊपर जो जो सोने चाँदी के पत्तर लगे हुए थे, उन्हें उखड़वाकर गलवा डाला; और अगले तीन दिन पृथ्वी के खुदवाने और अन्य अनेक मनमाने उपाय करने में, जिनसे दफ्तीने का पता चले, बिताए।

अंत में चिरस्मणीय तारीख १० अगस्त आ गई जो मुगल साम्राज्य की राजकीय स्थिति की कदाचित् सब से प्रसिद्ध तारीख है। गुलाम कादिर, जिसके पीछे नायब नाजिम याकूब अली और उसके चार पाँच दुर्दान्त पठान थे, दीवान खास में दाखिल हुआ और उसने शाह आलम को अपने सन्मुख बुलाया। जब बादशाह वहाँ आ गया, तब फिर उसको यह झिड़की मिली कि दफीने का सब भेद बता दो। बेचारे बादशाह ने—जिसने अभी थोड़े ही दिन पहले अपने सोने चाँदी के पात्र, घुड़ सवार सेना के व्ययार्थ गलवाए थे—यह सच्चा और सीधा उत्तर दिया कि यदि कोई दफीना होगा, तो वह कहीं होगा; किंतु मैं उसका पता बिलकुल नहीं जानता। इस पर दुष्ट रुहेला बोला—“इस संसार में अब तुम किसी काम के नहीं रहे हो; अतः तुम्हारी आँखें फोड़ दी जायँ!” वृद्ध पुरुष ने गम्भीरता से उत्तर दिया—“खुदा के लिये ऐसा न करो। तुम मेरे इन बूढ़े नेत्रों को छोड़ दो, जो साठ वर्ष तक रोजाना कलाम अल्लाह की तिलावत करके धुँधले हो चुके हैं।” परंतु उस पिशाच ने अपने अनुचरों को यह आज्ञा दी कि बादशाह के पुत्रों और पौत्रों को, जो उसके पीछे पीछे लगे हुए चले आए थे और उस वक्त उसके समीप इधर उधर खड़े थे, पोड़ा पहुँचाई जाय। इस अंतिम अत्याचार ने बादशाह को अधीर कर दिया, जिससे उसने कहा कि बाबा, ऐसा घोर दृश्य दिखाने के बदले तो मेरी आँखें ही फोड़ डालो गुलाम।

कादिर तत्काल तख्त से झपटा और उसने बुढ़े को पछाड़कर भूमि पर गिरा दिया। वह आप उसकी छाती पर चढ़ बैठे और अपनी कटार से उसकी एक आँख निकाल ली। तदनंतर आप तो उठ खड़ा हुआ और उस समय जो मनुष्य उसके पास खड़ा हुआ था—कदाचित् वह शाही घराने का याकूब अली था—उसको उसकी दूसरी आँख भी निकालने की आज्ञा दी। जब उसने नहीं की, तब उसे भी गुलाम कादिर ने मार डाला। पुनः पठानों ने बादशाह को बिलकुल अंधा कर दिया और स्त्रियों के विलाप तथा पुरुषों की धिक्कार के कोलाहल के बीच, जो बड़ी कठिनाई से पीछे शान्त हुआ, वे उसे सलीमगढ़ में पहुँचा आए। बादशाह ने इस घोर विपत्ति के समय जो श्रेय और दृढ़ता दिखाई, वह वास्तव में बहुत ही सराहने योग्य है।

यद्यपि नगर-निवासियों को तुरंत ही इस दुर्घटना का समाचार नहीं मिला, तथापि शीघ्र ही उनके पास गप्पें पहुँचने लगीं कि लाल किले में बड़े बड़े अन्याय हो रहे हैं।

तारीख ११ अगस्त को पवित्र राज-मंदिर में स्त्रियों और बालक बालिकाओं का निर्दयतापूर्वक बध करके गुलाम कादिर ने अपना मुँह काला किया।

तारीख १२ अगस्त को दूसरी बार इस्माइल बेग की मुट्ठी गरम की गई, जिससे उत्तेजित होकर फिर उसने प्रजा से धन बटोरा और उसका कुछ अंश गुलाम कादिर के पास भेजकर

अपनी मित्रता का परिचय दिया। ऐसी लूट से तंग आकर बहुधा लोग अन्यत्र भाग गए।

तारीख १४ अगस्त को दक्षिण से मराठों की कुछ सेना आई जिससे दुखी जनता को थोड़ा ढारस बँध गया। इस्माइल बेग का गुलाम कादिर पर सच्चा विश्वास तो पहले ही नहीं रहा था, परंतु अपने सखा के पाशविक अत्याचारों से उसको और भी अधिक ग्लानि हो गई। इस कारण उसने मराठे सेनापति राणा खाँ से सन्धि की बातचीत करने का श्री गणेश किया। १८ तारीख को मराठों का विशाल दल यमुना के बाएँ तट पर आ गया, जहाँ उन्होंने गौसगढ़ से खाद्य पदार्थ लानेवाली सैनिक टोली (Convoy) को बीच में ही छिन्न भिन्न कर दिया; और उसकी रक्षा के लिये जो रहेले पहरेवाले उसके साथ आए थे, उनमें से कई एक को यमपुर पहुँचा दिया। फिर क्या था; लाल किले में लोग भूखों मरने लगे। जब ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित हुई, तब गुलाम कादिर की सेना ने उससे लूटमार का अपना भाग माँगने के लिये चिल्लाना शुरू किया। इसी भगड़े में सन १७८८ का अगस्त महीना समाप्त हुआ।

ऐसी ऐसी आपत्तियों के सिर पर आने से भी गुलाम कादिर सहसा चलायमान न हुआ। उसने बुर्ज-इ-तिला भवन की संगवालियों और अपने अफसरों के साथ डटकर मदिरा पान की। उन शठों के समक्ष शाही घराने की युवा शाह-

जादियाँ और शाहजादे नाव और गाकर इस प्रकार रिभाते थे, जैसे बाजारी रंडियाँ और भाँड़ किया करते हैं। उसने अपने सिपाहियों की अशान्ति का दमन किया और इसकी कुछ परवाह न की कि मेरी जान जोखिम में है। तारीख ७ सितम्बर को यह जानकर कि मराठों की संख्या और शक्ति की वृद्धि हो रही है; कहीं ऐसा न हो कि मुझको घेरे में डाल कर चहुँ ओर से मेरा मार्ग रोक दिया जाय, गुलाम कादिर अपनी सेना को यमुना पार उतारकर अपनी पुरानो छावनी में ले गया। जो लूट उसने मन खोलकर संचय की थी, उसका भाग गौसगढ़ को भेज दिया और ऐसी ऐसी भारी वस्तुएँ, जैसे बहुमूल्य डेरे और सिंगार की सामग्री, अपने सेवकों को देकर उनको प्रसन्न कर लिया। १४ तारीख को वह पुनः अपने शिविर में आया; क्योंकि उसको इस्माइल बेग की ओर से खटका था। परंतु शीघ्र ही वह लाल किले को लौट गया ताकि वह फिर एक बार शाह आज़म का, अपने विचार से, हठ तोड़कर गुप्त खजाने का रहस्य पूछे। जब वह अपने इस उद्देश्य में विफल हुआ और जिधर देखो, उधर विपत्ति से घिर गया, तब उसका हृदय उन भीषण यन्त्रणाओं से काँपने लगा, जो उसके घोर पापों के बदले में उसको आगे भेलनी पड़ीं।

नष्ट देव की भ्रष्ट पूजा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
 अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
 परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
 धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

परम पूज्य पिता सर्वाधार सर्वशक्तिमान् घट घट व्यापी न्यायकारी जगदीश्वर के न्याय और नियम के बिलकुल विरुद्ध है कि उसकी इस पवित्र मानवी सृष्टि में कोई सबल किसी दुर्बल पर अन्याय और अत्याचार करे। मनुष्य पाशविक आवेशों का जिस प्रकार दास बन जाता है, उसी प्रकार उसमें उच्च और उत्कृष्ट दिव्य भाव भी समय समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। यदि मनुष्य कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक विकारों के वशीभूत हो जाता है, तो कभी उसमें ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर-उपासना, सेवा, अहिंसा, आत्मत्याग आदि विविध पवित्र और श्रेष्ठ भाव भी—मानुषी स्वभाव के उत्तम गुण—भी उत्पन्न होते हैं। विद्या ग्रहण करने की शक्ति, बुरे भले का ज्ञान, ईश्वर-भक्ति, पाप से भय करना आदि नाना अलौकिक गुणों और योग्यताओं की प्राप्ति का भागी इस स्थावर और जंगम रचना में केवल मनुष्य है। यही कारण मनुष्य के सभ्य और सुशोल कहलाने के हैं; इन्हीं भावों के वृद्धि पाने और उन्नति करने के कारण मनुष्य को अंत में दुर्लभ से दुर्लभ गति प्राप्त होती है।

यही कसौटी मनुष्य के खरे और खोटे पगखने की है और इसी तराजू से उसकी न्यूनता या अधिकता का पता लगता है। गुलाम कादिर के कुकर्मों पर दृष्टि डालने से यह बोध होता है कि मनुष्य गिरते गिरते कितना गिर जाता है।

शाह आलम मनुष्य था, मुसलमान बादशाह था। गुलाम कादिर के पितामह नजीब उद्दौला ने उसकी सेवा में ही अपना जीवन योग्यता से व्यतीत करके उच्च पद प्राप्त किया था। फिर पीछे उसका पुत्र और गुलाम कादिर का पिता जाब्ता खाँ इसी बादशाह की सेवा में मान पाने के लिये इतना उत्कण्ठित हुआ कि उसने अपनी बहिन को मिर्जा नजफ खाँ के साथ और अपनी बेटी को उसके दत्तक पुत्र राजपूत नौ-मुसलिम नजफ कुली खाँ के साथ ब्याह दिया। इसी गौरव को प्राप्त करने के लिये स्वयं गुलाम कादिर ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी। फिर ऐसी कौन सी नवीन और विचित्र वार्ता हुई कि जिसके कारण वही शाह आलम सपरिवार ऐसी दुर्गति का पात्र बनाया गया, जिसका स्मरण करके अब भी शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं? यह केवल गुलाम कादिर की दुष्ट प्रकृति और नीचता के कारण हुआ, जिसका उचित और यथार्थ दंड उसको ईश्वर ने उसी के पाप के अनुसार तुरंत दिया।

मुहर्रम का मास आ गया था जिसमें मुसलमानों का दस दिन का धार्मिक त्योहार होता है। मुसलमानों के सुन्नी

और शिया दोनों सम्प्रदाय अपने अपने ढंग से पैगम्बर मुहम्मद साहब के नवासे अर्थात् हज़रत अली के पुत्र हुसैन और उनके साथियों के करबला की लड़ाई में मारे जाने का शोक मनाते हैं। पर उस वर्ष इस उत्सव मनाने के लिये दिल्लीवालों के चित्तों में शान्ति, उत्साह और उमंग कहाँ थी। एक ओर तो वे सेनाओं के द्वारा पीसे जाते थे, दूसरी ओर वे लाल किले का हत्याकाण्ड हो जाने से अत्यंत विस्मित और भयभीत हो गए थे। अंत में तारीख ११ अक्तूबर का दिवस आया जो मुसलमानों के त्योहार का अखीर दिन था। उस दिन लोगों के मन को कुछ शान्ति और धीरज प्रतीत हुआ। यह बात प्रसिद्ध होने लगी कि अब इस्माइल बेग का राणा खाँ के साथ मेल मिलाप हो गया, और विशेष दल दक्षिण से आ रहा है। लैस्टोनिक्स (Lestonneaux) और डी बौगनी (De Boigne) अपनी प्रबल तिलंगी पलटनों समेत आ गए। शाहदरे में पठानों के डेरों में पूर्ण रूप से हुल्लड़ और हलचल मच गई। ज्यों ही तारीख ३१ अक्तूबर की रात हुई कि लाल किले की ऊँची भित्तों ने अपना भेद उन पर खोल दिया, जो बहुत दिनों से उसे टटोल रहे थे। भारी धमाके के शब्द से बारूद का ढेर फटकर वायु में उड़ा, जिसकी चिंगारियाँ उड़कर तत्काल सफ़ीलों के ऊपर चहुँ ओर फैल गई। दर्शक उसी समय यमुना की ओर मुँह किए शहर पनाह की ओर दौड़े। उजाले में उन्होंने नावों को नदी में उस पार जाते

देखा। एक हाथी तेज चाल से रेती में द्रोही गुलाम कादिर का लिए जा रहा था। गुलाम कादिर सलीमगढ़ से चोर घाट के मार्ग से भाग आया था और अपने चलने से पहले उसने बेदार बख्त (अर्थात् अपने बनाए बादशाह), नवाब नाजिम मंजूर अली खाँ और शाही घराने के समस्त मुख्य मुख्य लोगों को निकालकर भेज दिया था।

ठीक ठीक सच्ची घटनाएँ जो उस दिन लाल किले में हुई थीं, सदैव के लिये अविदित रहेंगी ❀।

मराठे सेनापति ने तुरन्त किले को अपने अधिकार में

* उपर्युक्त वृत्तांत लिखते हुए, अंगरेजी पुस्तक 'मुगल एम्पायर' के रचयित मिस्टर हेनरी जार्ज कौनी प्रकट करते हैं—

“सब का यह विचार है कि गुलाम कादिर ने किले में इस कारण आग लग दी थी जिससे शाह आलम का नाश हो जाय और उसके पैतृक भवन के जलते हुए खंडहरों में होकर उसके दीर्घ अपराध रूपी हवन में पूर्ण आहुति पड़ जाय; अथवा तारीख मुजफ्फरी के लेखक के कथनानुसार गुलाम कादिर चाहता था कि वह अखीर दशक मराठों के घेरे का मुकाबला करे; किंतु बारूद के फट जाने के शब्द से वह भाग निकला और मराठों ने सुरंग लगाकर बारूद को उड़ाया था।” मेरे विचार में जनत के अनुमान की ही विशेष संभावना प्रतीत होती है। यदि गुलाम कादिर का लड़ने का उद्देश्य होता, तो वह पहले से ही अपनी सेना को क्यों यमुना पार भेज देता और क्यों वह सुरंग को देखते ही—जो उसे विदित होगा कि अधिक करके वें की लड़ाई की एक रीति है—शाही कुटुंब को तो निकालकर ले गया और केवल शाह आलम को छोड़ गया ? और फिर वह उसको जीता क्यों छोड़ गया ? इन बातों से यही प्रतीत होता है कि गुलाम कादिर ने ही शाह आलम को भस्म करने के लिये चलते समय आग लगा दी थी।

ले लिया। उसके सिपाहियों के प्रयत्न से आग शीघ्र बुझा दी गई, इस कारण अधिक हानि नहीं होने पाई। शाह आलम और उसके कुटुंब को जो वेगमें रह गई थीं, उनको मौत के मुँह में से छुड़ाया और जो कुछ सुबिधाएँ उस समय संभव थीं, वे उनको पहुँचाई गई और आगे के लिये उनको पूरा धीरज बँधाया गया। इसके अनंतर राणा खाँ तो सिंधिया के पास से और कुमक आने की बाट जोहने लगा और पठान लोग अपने अपने घरों को चल दिए।

पूने के दरबार ने अपना हित पटेल की पुष्टि करने में देखा: इसलिये तुकोजी होलकर की अध्यक्षता में एक प्रबल सेना उसके पास भेजी और यह प्रतिज्ञा की कि लड़ाई में जो लाभ प्राप्त होगा, उसे दोनों आपस में बाँट लेंगे। इस सेना के आगमन का राणा खाँ ने और बहुत दिनों से कष्ट सहते हुए दिल्ली-निवासियों ने स्वागत किया। जब किले की रक्षा का प्रबन्ध हो गया, तब जो शेष सेना बची, उसे लेकर राणा खाँ, अप्पू खाँडे-राव और अन्य सेना भी गुलाम कादिर के पीछे चली। जब उस पर बहुत उग्र दबाव पड़ा, तब वह कूच करके मेरठ के किले में घुस गया। वहाँ अभी कुछ दिन ही रहा था कि उसको चारों ओर से घेरे में ले लिया गया। शत्रु की सेना बहुत बड़ी थी और उसके बचाव का मार्ग रुक गया था; इसलिये उसका घमंड टूट गया और उसने अति पराधीनता और नम्रता की शर्तें उपस्थित करके संधि करनी चाही; परंतु वह अस्वीकृत हुई।

तब लाचार होकर उसने मरने पर कमर बाँधी। तारीख २१ दिसम्बर को राणा खाँ और डी बौगनी ने सब ओर से धावा कर दिया: परंतु गुलाम कादिर और उसके सिपाहियों ने जाड़े के छोटे दिन में उससे बहुत साहसपूर्वक अपनी रक्षा की। तो भी अब गुलाम कादिर के सिर पर विपदा के काले काले बादल छा रहे थे। उसके सिपाही सब प्रकार से इस समय हारे थके हो गए थे, इससे गुलाम कादिर ने उसी रात को उन्हें छोड़कर जाने की चेष्टा की। वह चुपके से किले से खिसक आया और अपने घोड़े पर सवार हो गया। उसने अपनी काठी के खीसों में बहुमूल्य रत्न और मणियों के आभूषण ढ़ँस ढ़ँसकर भर लिए, जो लाल किले की लूट में उसके हाथ लगे थे, और जिन्हें वह अपने पास ही इस अभिप्राय से रखता था कि आड़े वक्त में मेरे काम आवेंगे।

वह गुलाम कादिर जो अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि वुर्ज-ए तिला में अपने अफसरों के साथ बैठा हुआ रंग रलियाँ मना रहा था और घमंड के नशे में चूर हुआ किसी को अपने आगे कुछ नहीं समझता था, इस समय ऐसी घोर कठिनाई में पड़ा था कि अकेला शीत ऋतु की रात्रि को मनुष्यों के आने जाने के स्थानों से बचता हुआ और अपने मन में यह आशा करता हुआ कि यमुना उतरकर सिखों की शरण में किसी तरह जा पड़ूँ, बारह मील से ऊपर चला गया। अभी प्रातः काल की पौ न फटी थी और आकाश में धुंध छा रहा था

कि उसका थका माँदा घोड़ा खेतों के बोहड़ मार्ग पर चक्कर लगाता हुआ अचानक एक कूप के पास के पौदर* में गिर गया। घोड़ा तो अभाग सवार को पटककर अपनी पीठ के हलके हो जाने से उठकर बैलों की चढ़ाई पर कूदता हुआ दौड़ गया। परन्तु उसके सवार को कुचलने जाने के कारण चोट आ गई थी जिसके सदमे से वह अचेत हो गया और जहाँ गिरा था, वहीं पड़ा रहा। जब दिन निकला और उजाला हुआ, तब किसान अपनी कूआँ चलाने को गया, जिससे उसके गेहूँ के खेत में पानी दिया जाता था। उसने देखा कि एक मनुष्य बढ़िया ज़री के वस्त्र पहने पौदर में पड़ा हुआ है। उसने उसे तुरंत पहचान लिया; क्योंकि थोड़ा ही काल हुआ था, जब गुलाम कादिर के पठान सिपाहियों ने उस को लूटा था; उस समय उसने गुलाम कादिर के आगे जाकर पुकार की थी: परन्तु उसने उसे फटकार दिया था। गुलाम कादिर का मुँह देखते ही उसे वह अत्याचार स्मरण हो आया, जो उसके ऊपर उस समय हुआ था। इससे उसने अपने मन में जल भुनकर मुँह बनाकर उसे चिढ़ाने के लिये कहा—“सलाम नवाब साहब !” दुरात्मा

* पौदर = कूप के पास का वह नीचे ढालुओं भूमि जिस पर से पुरवट चलने के समय बैल बराबर आया जाया करते हैं।

† वह जाति का ब्राह्मण था। उसका नाम भीखा था और वह जानी ग्राम का रहनेवाला था, जो बेगन समरू की जन्मभूमि कुताने के समीप है। बादशाह शाह आलम ने भीखा की इस सेवा से प्रसन्न होकर उसे माफी भूमि प्रदान की थी जो अब तक उसके वंशजों के पास चली आती है।

गुलाम कादिर, जो हारा थका और भूख प्यास से चूर चूर हो रहा था, यह सुनकर डरके मारे चौंक पड़ा। वह उठकर बैठ गया और इधर उधर देखने लगा। उसने कहा—“तुम मुझे क्यों नवाब कहते हो ! मैं तो एक दीन सिपाही हूँ जो घायल होकर अपने घर को जाता हूँ। मेरे पास जो कुछ था, वह सब जाता रहा। तुम मुझे गौसगढ़ को जानेवाली सड़क बता दो। मैं तुमको पीछे से इसका पारितोषिक दूँगा।” यदि भीखा के मन में गुलाम कादिर के संबंध में कुछ संदेह भी था, तो वह गौसगढ़ का नाम सुनकर तत्काल दूर हो गया। उसने लोगों को बुलाने के लिये तुरंत पुकार मचाई और शीघ्र ही अपने शिकार को राणाखाँ के शिविर में ले गया। वहाँ से गुलाम कादिर कैद होकर मथुरा में सिंधिया के पास भेजा गया।

गुलाम कादिर के चले जाने के पीछे मेरठ के किले में पठान बिना सरदार के रह गए; इसलिये उसे छोड़ कर उन्होंने अपने अपने घर का मार्ग लिया। नाम मात्र के बादशाह वेदार बख्त को दिल्ली भेजा गया, जहाँ पहले तो उसे कारागार में रक्खा गया, फिर उसकी हत्या की गई। अभाग नवाब नाजिम मंजूर अली ने गुलाम कादिर की लाल किले वाली पाशविक लीलाओं में बहुत कुछ योग दिया था, जिससे सब के हृदय में उसके विषय में विश्वासघात करके आना कानी करने का सन्देह हो गया था। उसको हाथी के पाँव से बाँधकर तब तक बुरी तरह से गलियों में घसीटा गया, जब तक कि वह न मर गया।

रहेलों के नवाब गुलाम कादिर के दुर्भाग्य की कथा इससे और भी कहीं बढ़कर भयंकर है। जब वह मथुरा में पहुँच गया, तब सिंधिया ने उसको तशहीर कराने का दंड दिया। उसे काले गधे पर चढ़ाकर पूँछ की ओर उसका मुँह करके बाजार में फिराया गया; और उसके साथ जो पहरवाले थे, उनको यह आज्ञा हुई कि बड़ी बड़ी दूकानों के आगे उसे ठहराया जाय और बावनी * के नवाब के नाम से प्रत्येक दूकान से एक एक कौड़ी की भीख माँगी जाय। वह अथम मनुष्य इस घृणित व्यवहार से सब की दृष्टि में निंदनीय हो गया। इसके पीछे उसकी जीभ काट ली गई। तदनन्तर और और अंगों से भी उसे शनैः शनैः विहीन किया गया। अर्थात् पहले तो उसको बादशाह के बदले में अंधा किया और पीछे से उसकी नाक, कान, हाथ, और पाँव भी काट दिए गए; और इसके अनन्तर उसको दिल्ली भेज दिया गया। मार्ग में मौत ने आकर उसकी पीड़ा का

* बावनी महल के इलाके में बावन परगने थे जो अब सहारनपुर और मुजफ्फरनगर के जिलों में सम्मिलित हो गए हैं। उसमें तान गढ़ थे—पथरगढ़ बापूँको, सुखर-तल गंगा के दहिने और सौमगढ़ मुजफ्फरनगर के समीप। पहले दोनों दुर्ग तो बजीर नजीब उद्दौला ने उस मार्ग के रक्षार्थ बनाए थे, जो इहेलखंड के उत्तर पश्चिम के कोने में उसकी जागीर की ओर को जाता था; क्योंकि गंगा यहाँ प्रायः सदैव पायाब बहती है, उस समय के अतिरिक्त जब कि उसमें रौ आ जाती है। तीसरा किला जाबता खॉं ने बनाया जहाँ अब तक एक बहुत बड़ी सुडौल मसजिद विद्यमान है।

निवारण किया। उसकी मौत का कारण यह बतलाया जाता है कि तारीख ३ मार्च को उसको एक पेड़ पर लटका दिया गया। अब उसका कटा धड़ रह गया जो दिल्ली पहुँचाया गया और नेत्रहीन बादशाह के आगे रक्खा गया। इससे पूर्व इससे अधिक वीभत्स दृश्य दीवान खास में कभी उपस्थित नहीं हुआ था।

गुलाम कादिर का जो निवासस्थान गौसगढ़ था, उसको भी खोदकर पृथ्वी के बराबर ऐसा कर दिया गया कि मसजिद के अतिरिक्त उसका और कोई चिह्न नहीं रहा। उसका भाई डरकर पंजाब को भाग गया।

जो लोग धन को प्राप्ति के लिये अंधे बने फिरते हैं, उसका संचय करने में धर्म या अधर्म का विचार नहीं करते हैं और जिन्होंने लोभ के वश होकर अपना यह अन्ध विश्वास बना रक्खा है कि—

اے زر تو خدا نرئی و لے بختدا*

ستار عیوب و قاضی الحاجاتی*

अर्थात् हे धन ! तू ईश्वर तो नहीं है, परंतु ईश्वर की शपथ खाकर कहता हूँ कि तू सब दोष-निवारक और समस्त इच्छाओं का पूर्णकर्ता है। (अर्थात् ईश्वर के सब गुण तुझ में वर्तमान हैं।)

उनके लिये गुलाम कादिर के जीवन का जीता जागता उदाहरण बहुत ही शिक्षाप्रद है।

आश्चर्य नहीं कि हमारे पाठकगण यह बात जानने के लिये परम उत्सुक हों कि वह मणियों से लदा घोड़ा गुलाम कादिर को जानी ग्राम के खेतों के कूँ के पौदर में गिराकर किधर चला गया और वह अगणित तथा बहु-मूल्य धन किसके हाथ पड़ा। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहीं कुछ पता नहीं चलता: परंतु स्किनर साहिब के जीवन चरित्र (Skinner's Life) में यह अटकल लगाई गई है कि वह फरासीसी जनरल लैस्टोनिक्स के हाथ पड़ा, जिसको पाते ही उसने भटपट सिंधिया की सेवा का परित्याग किया। इस प्रकार भारत के शाही मुगल घराने के उत्तम रत्न फ्रांस देश में पहुँच गए।

अतिशय कठोर दंड

नावक-अन्दाज़ जिधर अबरह जाना होंगे।

नोम बिस्मिल् कई होंगे कई वेजाँ होंगे ॥

समरू की बेगम का जीवन चरित्र लिखते लिखते पिछले दो अध्यायों में उसकी समकालीन ऐसी कठोर घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें मुख्य नायिका की जीवनी के क्रम का तार टूट गया है: इसलिये पुनः उसे ग्रहण किया जाता है। उन घटनाओं का यदि और कुछ संबंध न हो, तो भी एक बात तो यह अवश्य प्रकट होती है कि उस युग के शासकों के हृदय कैसे कठोर और निर्दय थे। बेगम भी उसी रंग में रंगी

दिखाई देती है, यद्यपि उसमें और और अनेक उत्तम तथा श्रेष्ठ गुण भी विद्यमान थे। पादरी हियर साहब ने वेगम के विषय में बहुत सी प्रशंसनीय बातें कही थीं, जिनका वर्णन आगे होगा; किंतु वह भी यह कहने से न चूके कि “वेगम का मिजाज आग वगुला था।”

सन् १७६० में वेगम प्रधान मंत्री (सिंधिया) के पास अपने दल बल सहित मथुरा में डेरे डाले पड़ी हुई थी कि एक दिन यह संवाद मिला कि दो कनौजों (दासियों) ने उसके आगरे के घरों में आग लगा दी। वे घर बड़े थे और उनकी छतें छप्परों की थीं। उनमें वेगम के समस्त बहुमूल्य पदार्थ रखे हुए थे, तथा उसके मुख्य मुख्य अफसरों की विधवा पत्नियाँ और उनके बाल-बच्चे रहते थे। इससे बहुत धन की हानि हुई। यदि आग न बुझाई जाती, तो बहुत सी जानें चली जातीं। बहुत से बड़े और छोटे बच्चे ऐसे थे जो नहीं बच सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसी कुलीन स्त्रियाँ भी थीं जो आग में जलकर अपने प्राण दे देना तो स्वीकार करतीं, किंतु उस भीड़ के समक्ष कदापि न आतीं जो आग का तमाशा देखने के लिये वहाँ जमा हो गई थी। वे दोनों दासियाँ आगरे के बाजार में मिल गईं और मथुरा में वेगम के शिविर में भेजी गईं। मुकदमा अनुसंधानार्थ वेगम के युरोपियन और ईसाई अफसरों को सौंपा गया। दासियों का अपराध सर्वथा सिद्ध हुआ, जिस पर उनको कोड़े मारकर उन्हें जीवित गाड़ने

का दंड दिया गया ॐ ।

* हमारे पास बेगम के संबंध की जो सामग्री है, उसमें केवल पादरी कीयन साहब का अंगरेजी पुस्तक “सरधना” नामक में ही उपर्युक्त घटना का वर्णन आया है। वह बेगम के गिरजे की सेवा में था; इसलिये जो कुछ उसने लिखा है, उसमें अधिकतर उसने बेगम के गुण ही गुण विदित किए हैं; और उसकी लेख शैली का ऐसा ढंग प्रतीत होता है कि जिसमें वह बुराई के रूप में न दृष्टिगोचर हो, प्रत्युत वह उचित और समयानुसार आवश्यक कार्य ही जान पड़े। उस समय के लेखकों ने इस कठोरता की कड़ी आलोचना की होगी, तभी उक्त पादरी साहब ने इसके लिखने से पूर्व यह भूमिका लिखी है —

“१७६०. इसी समय के लगभग एक ऐसी बात हुई जिसको कुछ अच्छे के प्रेमी यात्रियों ने नाना रूपों में बिगाड़कर लिखा है; और इस कारण उन्होंने बेगम पर निर्दयता का आरोप किया है। इस कहानी को विविध भौत से कहा गया है, परंतु मिथ्या कल्पनाओं को दूर करके यह उमका यथार्थ वृत्तान्त है।”

इस घटना का उक्त वर्णन प्रायः “सरधना” नामक पुस्तक के वाक्यों में लिखा गया है। निसन्देह ये दासियों न जाने किस कारण से एक घोर और भयंकर अपराध करने पर उतारू हुई और उससे कुछ हानि भी अवश्य हुई; परंतु वास्तव में इतनी अधिक क्षति नहीं हुई, जितनी कि बढ़ाकर उसकी सम्भावना प्रकट की गई है। तो भी उन अभागिनियों को बेगम के युरोपियन और हिंदुस्तानी ईसाई अफसरों ने जो दंड दिया, वह न केवल दारुण, भीषण और अमानुषी ही है, वरन् ईसाई धर्म की उत्तम शिक्षा के बिल्कुल विपरीत भी है, जिसमें दया और क्षमा धारण करने के लिये प्रबल आज्ञा है। पादरी कीयन को इस निष्ठुरता पर लज्जा और खेद तो नहीं होगा, पर धृष्टतापूर्वक “जले पर नमक छिड़कने” की कहावत के अनुसार वह इसका समर्थन इस तरह करता है —

“यह ध्यान में रखने की बात है कि भारतवासियों में उत अपराधियों के

पुनर्विवाह

दुनिया के जो मजे हैं हरगिज़ वह कम न होंगे ।

चरचे यही रहेंगे अफ़सोस हम न होंगे ॥

इस जगत् के अति वृद्ध होने पर भी इसमें नित्य नवीन उभाग और उत्साह उत्पन्न होता है। यह ज्यों ज्यों जीर्ण होता और मुरझाता जाता है, त्यों त्यों पुनः नए रूप में इसकी विलक्षण उठान होती है। इसका बुढ़ापा सदैव तरुणार्ध में परिणत होता रहता है। इसमें नवीन इच्छाएँ और विलक्षण कामनाएँ पैदा होती हैं। इसका मन अद्भुत तरंगों और हर्षित उमंगों से प्रफुल्लित और उत्साहित होता रहता है। फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि समरू की बेगम को, जिसका वय सन् १७६२ में चालीस वर्ष के लगभग था और जिसको समस्त प्रकार का राजसी सुख प्राप्त था, उस काम की बाधा हुई हो, जिसके तीक्ष्ण बाण योगियों के मन को भी छेदकर विचलित कर देते हैं, और जिसके कारण उसे भी फिर अपना विवाह करने की आवश्यकता हुई।

निमित्त, जिनको मृत्यु का दंड दिया जाता हो, फाँसी देने की किसी मुख्य रीति का विधान नहीं है। चूँकि इस अभियोग में स्त्रियाँ दोषी थीं, अतएव इस विचार के पालन की उपयुक्त रीति यही प्रतीत हुई कि उनको जीता ही गाढ़ दिया जाय। जितनी कि अपराध के योग्य चाहिए थी और जैसी कि अवसर के अनुसार आवश्यकतः थी, उससे विशेष उनको सजा नहीं मिली।”

इसके अतिरिक्त उसे अपनी सेना को वश में करने और आगे को उसका ठीक प्रबन्ध करने की चेष्टा ने भी पति को सहायता प्राप्त करने के लिये विशेष रूप से विवश किया। जब से समरू की मृत्यु हुई थी, उसकी फौज, कुछ तो अपना वेतन रुक जाने और अधिकतर स्वयं अफसरों के उत्तेजित करने के कारण, जो अपने अपने उत्तम कुल के अभिमान में उच्च अधिकार पाने के लिये दरबार में परस्पर लाग डाँट और भगड़े बखेड़े करते थे, कई बार आजा भंग करने को उतारू हो गई। इस दशा में उसको यह सम्मति दी गई कि वह अपना पुनर्विवाह कर ले, ताकि पति के दबाव और सहारे से वह उन सैनिकों का दमन कर सके।

बेगम के जनरलों में आयरलैंड देशनिवासी जार्ज थामस * (George Thomas) नामक एक युवा चोटी का जनरल था, जिसने अपने धावे और पराक्रम से सन् १७८८ में गोकुलगढ़ के युद्ध में बड़ा नाम पाया था और जिसका बेगम के स्वभाव पर बड़ा अधिकार और प्रभाव हो गया था। देखने में वह कबूल सूरत और लंबे कद का था। दूसरा ली वैस्यू (Le Vasseu or Le Vasseul) था जो कुलीन, सुशिक्षित और सुशील था। दोनों ही बेगम पर मोहित हो गए। दोनों में से

* जार्ज थामस का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे दिया जायगा।

प्रत्येक जी जान से यह चाहता था कि बेगम मेरे दिल की मालिक हो जाय । दोनों ही बहादुर जनरल थे: अतएव उसको प्रसन्न करने के हेतु वे नाना प्रकार से अपनी वीरता प्रकट करने लगे । उनमें शनैः शनैः परस्पर वैर और प्रतिद्वन्द्विता इतनी अधिक बढ़ गई कि वे एक दूसरे को जान के दुश्मन हो गए । प्रत्येक अपने शत्रु के लहू का प्यासा बन गया । यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि वे आपस में अपने प्रतिद्वन्द्वी को नीचा दिखाने और नष्ट करने के निमित्त विविध भाँति के षड्यंत्र रचने और नीच कर्म करने पर उतारू हो गए । अंत में ली वैस्यू की मधुर मूर्ति और आकर्षक प्रकृति काम कर गई । बेगम भी उसी को चाहने और उसी का दम भरने लगी; और उसको निश्चित रूप से जार्ज थामस की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा । एक तो उस समय अँगरेजों और फरासीसों में द्वेष होने के कारण पहले ही ली वैस्यू से जार्ज थामस घृणा किया करता था । दूसरे अब जो बेगम ने ली वैस्यू का पक्ष करके उसे अस्वीकार किया, तो उसे बहुत लज्जा आई और नीचा देखना पड़ा । वह और भी बिगड़ बैठा ।

परस्पर के इस वैर भाव ने सिपाहिया में भी फूट डाल दी । यहाँ तक नौबत पहुँची कि जार्ज थामस ने बेगम की सेवा का ही परित्याग कर दिया । चलती बार उसने अपने जी के फफोले इस प्रकार फोड़े कि वह बेगम के दो तीन गाँव लूटकर धन माल जो उसके पल्ले पड़ा, अपने

साथ लेता गया*। जार्ज थामस पहले थोड़े दिन अनूप राहर को छावनी में अंगरेजों के अधीन रहा। तदनंतर मराठों को सेना में अण्णू खंडेराव के यहाँ जा नियुक्त हुआ। जब जार्ज थामस इस प्रकार निकल गया, तब ली वैस्यू को धैर्य बँधा। फिर तो उसे मन माना मौका मिला और उसने

* जार्ज थामस के बेगम की सेवा त्यागने के बावू ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने प्रमाणों सहित निम्नलिखित दो कारण और भी बताए हैं—

(१) मराठे दूत ने, जो दिल्ली में रहा करता था, अपने अप्रैल सन् १७६४ के एक पत्र में, जो अपने स्वामी की सेवा में पूना को भेजा था, यह लिखा था कि जार्ज थामस के दुराचारों से विवश होकर बेगम ने उसे जबरदस्ती अपने इलाके से निकाल दिया।

(२) परंतु लंडन का एक संवाददाता अपने “जार्ज थामस का विश्वसनीय वर्णन” नामक लेख में एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर (Asiatic Annual Register) नामक अंगरेजी पत्र में प्रकाशित करता है कि जार्ज थामस के निकाले जाने का यह कारण था कि वह बेगम के यहाँ से फरासीसियों की संग्रहा घटाना चाहता था; क्योंकि बेगम का व्यय अधिक था। इससे फरासीसी उसके विरुद्ध हो गए। जब जार्ज थामस सिक्खों से लड़ने गया, तब उन्होंने उसके विरुद्ध बेगम के कान भरने शुरू किए कि यह तुम्हारा राज्य छीनना चाहता है और इसी लिये यह हमें निकालने का आग्रह करता है। बेगम ने तत्काल थामस की भार्या पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। ये बात सुनकर थामस भी तुरन्त लौट आया और अपनी स्त्री को लेकर बेगम की सेवा छोड़कर चला गया।

परंतु दूसरा कारण तो हमें नितांत मिथ्या प्रतीत होता है; क्योंकि उस समय उसके स्त्री ही कहीं थी।

वेगम पर अपनी हार्दिक अभिलाषा प्रकट की। निस्सन्देह वह बड़ी बुद्धिमान् और दूरदर्शी थी; किंतु उस समय काम के वशीभूत होने के कारण उसे ऊँच नीच और आगा पीछा कुछ न सूझा और उसने अपनी रज़ामंदी जाहिर कर दी। सन् १७६३ में दुर्भाग्यवश वेगम का विवाह ली वैस्यू के साथ एकान्त में पादरी ग्रेगोरिओ साहब ने कराया, जिन्होंने पहले उसे वपुस्मा देकर ईसाई बनाया था। इस विवाह के केवल दो साक्षी हुए, जो दुल्हा के मित्र सैलूर (M. M. Saleur) और बर्नियर (Bernier) थे। इस कारण वेगम की कीर्ति और ली वैस्यू के आतंक को क्षति पहुँची। इस अवसर पर वेगम ने अपने ईसाई नाम जोना (Joanna) के साथ नोबिलिस (Nobilis) उपनाम और बढ़ा लिया। वेगम ने दूसरा विवाह तो कर लिया, परंतु अब वह भयभीत रहने लगी।

हानिकारक छेड़ छाड़

विनाश काले विपरीत बुद्धि:

जब किसी पर कोई विपत्ति आती है, तब उसकी बुद्धि पहले से ही बिगड़ जाती है, और उसको उलटी सूझ सूझने लगती है। बुद्धि को विमल और शुद्ध रखना मनुष्य का सब से बड़ा और आवश्यक कर्तव्य है। यही उत्तम प्रयत्न वास्तव में मनुष्य को मनुष्य बनाता है और उसे महान् से महान् तथा उच्च से उच्च सद्गति का लाभ कराकर परम

अलौकिक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त कराता है। इसके विपरीत जब मनुष्य की बुद्धि इस पवित्र भाव से विमुख होकर विकार-ग्रस्त हो जाती है, तब उसे यथार्थ और सत्य मार्ग से हटाकर उससे नाना प्रकार के अपराध कराती है, जिनका परिणाम दुःख होता है।

यद्यपि जार्ज थामस बेगम की सेवा छोड़कर सरधने से चला गया था, तथापि बेगम और उसके पति के मन को इससे शांति प्राप्ति नहीं हुई। वह दूर रहते हुए भी उनकी दृष्टि में काँटे की तरह खटकता था और वे उसे चैन से रहने देना नहीं चाहते थे।

इसी बीच में सिंधिया माधव जी की मृत्यु हो गई। इसके सम्बाद और इस दुबिधा ने, कि अब उसका उत्तराधिकारी कौन होगा, दिल्ली में कुछ थोड़ी सी हलचल मचा दी। इस कारण अण्णू खांडेराव को दिल्ली आना पड़ा। थामस भी उसके साथ साथ आया था। यहाँ उन्होंने अपनी कई जागीरों में सिंधिया के स्थानीय प्रतिनिधि गोपालराव भाऊ से अभिषेक कराया। परंतु थोड़े दिन पीछे गोपालराव भाऊ ने बेगम और उसके पति के उस्काने और बहकाने पर अण्णू खांडेराव के सिपाहियों को भड़काना आरंभ किया, जिन्होंने विद्रोह करके अपने स्वामी को कैद कर लिया। इसके बदले में थामस ने बेगम की उस जागीर में लूट मार मचाई, जो दिल्ली के दक्षिण की ओर थी। पुनः वह अपने स्वामी को

छुड़ाकर अपने साथ कानोड़ को लिवा ले गया। अण्णू खांडे-राव थामस की इस स्वामि-भक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कृतज्ञता तथा उदारता का यह परिचय दिया कि उसने थामस को अपना दत्तक पुत्र बना लिया और उसे अनेक भारी भारी पारितोषिक प्रदान करने के अतिरिक्त निकटवर्ती कई एक गाँवों का अनुशासन भी दिया, जिनकी वार्षिक आय कुल मिलाकर डेढ़ लाख रुपए थी।

जब थामस अपनी भूमि के प्रबन्ध में व्यग्र था, तब समरू की वेगम ने अपने पति के प्रभाव में आकर पुनः उस पर आक्रमण किया। वह कूच करके उसकी नई जागीर में घुस गई। उस समय उसके अधीन चार पलटनें, बीस तोपें और चार दस्ते रिसाले के थे। उसने झुझर से तीन पड़ाव के लगभग दक्षिण पूर्व की ओर कुछ दूरी पर अपना कैम्प खड़ा किया। थामस ने तत्काल इस सेना से मुकाबला करने की तैयारियाँ कीं और वेगम को सहसा इस प्रकार बाहर निकाल दिया कि जिससे घुनकर अचंभा होता है।

चेतावनी

रहिमन वह बिपता भली जो थोरे दिन होय ।

इष्ट मित्र अरु बंधु सुत जानि परैं सब कोय ॥

इस जगत् में ऐसे माई के लाल बहुत कम होते हैं जिनके जीवन में सदैव एक से अच्छे दिन बने रहें; और नहीं तो सभी

को इस कराल काल की टकरें भेलनी पड़ती हैं, सभी को कभी सुखी और कभी दुःखी होना पड़ता है। किसी मनुष्य के सब दिन एक समान नहीं रहते। यदि मनुष्य अपने दुष्काल को धैर्य और चतुराई से व्यतीत करके उससे उपदेश ग्रहण करे और अपने सौभाग्य के समय में पुनः उन्मत्त तथा असावधान न हो जाय तो वह अवश्य अपने जीवन की बाजी जीत लेगा। जो विपत्ति हमको ऐसी बुरी और असह्य प्रतीत होती है और जिससे हम दूर भागना चाहते हैं, वह अकारण ही नहीं आती, वरन् हमें चेताने और सावधान करने के लिये आती है।

अपने पूर्व पति समरु की मृत्यु हो जाने के पश्चात् चौदह वर्ष तक वेगम ने भली भाँति अपने राज्य और सेना की व्यवस्था की थी। अब जो उसने अपना दूसरा विवाह रचाया, तो इससे नई नई बाधाएँ खड़ी होने लगीं। उसकी सेना में महाद्वीप युरोप के भिन्न भिन्न देशों से आए हुए भिन्न प्रकृति के अफसर थे। उनमें से एक दो को छोड़कर शेष सब अपढ़ आर उजड़ थे। कौन सा दोष है जो उनमें न था ! वे लुच्चे, लम्पट और ढीठ थे। उनके अवगुणों की और अधिक वृद्धि इसलिये होने लगी कि वे ऐसे बड़े बड़े अधिकार पाने के लिये खींचा तानी करते थे, जिनके योग्य वे वास्तव में न थे। इधर वेगम ने चुपके से अपना विवाह कर लिया। यद्यपि उसे गुप्त रखने का उसने बहुतेरा प्रयत्न किया, परंतु स्त्री पुरुष का संबंध क्या

छिपा रह सकता है ! अंत में भंडा फूट ही गया । वह बड़ा ही अप्रिय सिद्ध हुआ । क्या अफसर और क्या सिपाही, सभी यह समझने लगे कि हमारे पुराने सेनापति की विधवा ने अपना पुनर्विवाह करके उसकी इज्जत में बढ़ा लगा दिया । ली वैस्यू उनकी आँखों में इसलिये काँटे के समान खटकने लगा कि वे सोचते थे कि सरधने की जो जागीर हमारे खर्च के लिये मिली थी, उसके अब उस अजनबी के हाथों में चले जाने का भय है । दुर्भाग्यवश बेगम और उसके पति ने अपनी अनेक करतूतों से जार्ज थामस को चिढ़ाकर अपना भारी शत्रु बना लिया था । अब वह दिल्ली में आ गया था । उसने एक ओर तो उस पल्टन को भड़काया, जो बेगम की ओर से समरू के पुत्र नवाब मुजफ्फर उद्दौला जफरयाब खाँ के अधीन बादशाह की नौकरी पर दिल्ली में उपस्थित थी । दूसरी ओर उसने अपने पक्ष के दृढ़ अनुयायी और परम मित्र लार्डगुइस (Liegeois) से, जो शायद जर्मनी अथवा बेलजियम देश का निवासी था, लिखा पढ़ी करके उसके द्वारा अपने पूर्व परिचित सिपाहियों में वैर भाव की प्रचंड अग्नि प्रज्वलित करा दी । यद्यपि ली वैस्यू भी बिल्कुल गुणहीन तो न था, तथापि वह घमंडी और अप्रवीण अवश्य था । जब से बेगम के साथ उसका विवाह हुआ, तब से उसने अपनी सेना के अफसरों से मिलना जुलना और उनके साथ भोजन करना बिल्कुल छोड़ दिया । बेगम भी पहले अपने सैनिकों के साथ बड़ी शिष्टता और प्रेम

के साथ पेश आती थी; और उनमें से मुख्य मुख्य अफसरों को बुलाकर अपने साथ खाना खिलाती थी; क्योंकि उन्हीं की कृपा और शक्ति के कारण उसके राज्य और अधिकार की पुष्टि थी। ली वैस्यू ने उसे भी उनके साथ ऐसा उत्तम व्यवहार करने से यह कहकर रोका कि वे अपढ़, असभ्य और उजड़ हैं; उन्हें इस प्रकार सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए। यद्यपि बेगम ने उसे बहुतेरा समझाया, परंतु उसने न माना। अतएव वे दिन प्रति दिन रुष्ट होते गए। उनमें से बहुतेरे सिपाहियों को यह भी विदित न था कि वास्तव में ली वैस्यू का बेगम के साथ विवाह हो गया है। वे उसे बेगम का आशना ही जानते थे। इसलिये वह उनकी आँखों में और भी खटकता था; क्योंकि एक तो उसके वृत्तिन व्यवहार से वे अप्रसन्न थे। दूसरे उन्हें खुल खेलने का यह वहाना मिल गया; इसलिये शीघ्र ही उससे सब अफसर और सिपाही बिगड़ बैठे। उन लोगों ने यह प्रपंच रचा कि बेगम को सरधने की जागीर से हटाकर उसके स्थान में समरू के पुत्र नवाब मुजफ्फरउद्दौला जफरयाब खाँ को बैठा दिया जाय। ऐसी विषम परिस्थिति में रहना बेगम और ली वैस्यू दोनों के लिये असह्य हो गया। अतएव बेगम ने अपने राज्य को इन शतों के साथ सिंधिया के हाथों में सौंपने का विचार किया कि (१) उसे अपनी निजी सम्पत्ति ले जाने की आज्ञा दे दी जाय; (२) जागीर बदस्तूर सेना के व्ययार्थ बनी रहे; और (३) समरू के पुत्र

नवाब मुजफ्फर उद्दौला जफरयाब खाँ को दो सहस्र रूपय मासिक वेतन जीवन भर दिया जाय । उसी समय लॉ वैस्यू ने सर जान शोर साहब गवर्नर जनरल को इस आशय की चिट्ठी लिखकर भेजी कि हमको अँगरेजी इलाक़े में से होकर चंद्रनगर को बिना महसूल दिए जाने का पास प्रदान किया जाय । परंतु अभी उन्होंने कुछ निश्चय नहीं किया था और न अब तक वहाँ से कुछ उत्तर आया था कि सिपाहियों को पहले ही किसी प्रकार पता चल गया कि ये ऐसी लिखा पड़ी कर रहे हैं । अतः वे लार्डगुइस ॐ को अपना सेनापति बनाकर उसकी

※ लार्डगुइस के विद्रोह मचाने का कारण जार्ज थामस की जीवनी में यह लिखा है कि बेगम ने जो अपने नवान पति के बहकाने से जार्ज थामस के साथ छेड़ छाप आरम्भ कर दी, इससे लार्डगुइस और बेगम की सेना के अन्य अनुभवों अफमरो ने बहुत मना किया जिसमें लॉ वैस्यू चिढ़ गया । उसने बेगम के कान भरकर लार्डगुइस को उसके पद से नाचे उतरवा दिया और उसके घाव पर यह और नमक छिड़का कि किर्पा मातहत को उस पद पर असीन किया । यह बात जो वास्तव में अति घृणित और अन्यायपूर्ण थी, सिपाहियों को बहुत बुरी लगी; क्योंकि वे बहुत वर्षों तक लार्डगुइस के अधीन रहकर उसकी आज्ञा का पालन करते रहे थे । उसके साथ रहकर उन्होंने बहुधा युद्ध किए थे और विजय प्राप्त की थी । उन्होंने बहुत कुछ समझाया, किंतु कुछ फल न हुआ । बेगम से उन्हें इस विषय में न्याय करने की कुछ आशा न रही । हताश होकर वे खुद खेलें और प्रयत्न में विद्रोह मचा दिया । उन्होंने समरू की बड़ी खी के पुत्र जफरयाब खाँ को, जो दिल्ली में रहता था, अपना सेनापति बनाने के लिये वहाँ से बुलाया । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे उसे मसनद पर आरूढ़ कर देंगे । इस हेतु से सेना के प्रतिनिधियों की एक मंडली बेगम के बहुत रोकने पर भी दिल्ली भेजी गई और उसे नियमानुसार उस का अध्यक्ष

अधीनता में विद्रोह करने को खड़े हो गए। पहले उन्होंने यह ढँढोरा पीटा कि अब बेगम हमारी स्वामिनी नहीं रही; और फिर समरू के पुत्र को दिल्ली से सरधने बुलाया। बेगम और ली वैस्यू चुपके से रात में निकल गए। वे अभी सरधने से तीन मील किर्वा तक ही पहुँचे थे कि फौज के एक दस्ते ने उन्हें आ पकड़ा, जो उनके पीछे दौड़ाया गया था। उस समय बेगम तो पालकी में बैठी हुई थी और ली वैस्यू घोड़े पर सवार था। फौज के आने पर जो हुल्लड़ मचा, तो उस गड़बड़ी में पति और पत्नी एक दूसरे से बिछुड़ गए और विद्रोहियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। गोलियाँ बलीं और कुछ मनुष्य घायल हो गए। बेगम ने यह समझा कि मेरा पति मारा गया और न जाने बैरियों के हाथों अब मेरी कैसी कैसी दुर्गति होगी; इसलिये उसने अपनी छाती में छुरी भाक ली। कनीज़ें चीखने और चिल्लाने लगीं। ली वैस्यू ने, जो कुछ दूरी पर भीड़ से घिरा हुआ खड़ा था, पूछा कि क्या हुआ? उसे यह सूचना मिली कि बेगम ने आत्महत्या कर ली। दो बार उसने यह प्रश्न किया और दोनों बार उसे यही उत्तर मिला।

बनाया। जफरयाब खॉ अपनी विमाता की चालों और घातों से डरता था; परंतु उन्होंने उसे राजा बना ही दिया। उसके भय के निवारणार्थ मंडली के प्रतिनिधियों ने उसके आगे सेना की ओर से उसके आज्ञाकारी भक्त होने की शपथ खाई। जब बेगम को षड्यंत्र का पता लगा, तब उसने अपने पति और कुछ पुराने सेवकों को लेकर भागने का दृढ़ संकल्प किया।

जब एक दासी ने बेगम की चादर उठाकर उसे दिखाई तो वह खून से सनी हुई थी। इस पर उसने आहिस्ता से अपनी पिस्तोल निकाली और उसकी नली अपने मुँह पर रखकर उसे चला दिया, जिससे उस का सिर उड़ गया। बेगम ने सचमुच अपने कलेजे में छुरी भोंकी थी और वह मूर्च्छित अवस्था को प्राप्त हो गई थी; परन्तु छुरी छाती की हड्डी में लगकर फिसल गई थी; इस कारण उसे भारी चोट नहीं लगी थी। दुष्टों ने ली वैस्यू की लाश का अपमान और अनादर किया। बेगम को वे सरधने को लोटा लाए और तोप के मुँह से उसे बाँधकर कई दिन तक उसी दशा में रखा। परन्तु अंत में सेलूर के बहुत प्रयत्न करने और कहने सुनने पर उसे इससे छुटकारा देकर कारागार में रखा गया*।

* इस घटना के विषय में इतिहास-लेखकों में बड़ा मतभेद है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसमें अधिक मुख्य जीवन चरित्र लेखक पादरी कींगन साहब का मत है। परन्तु अंगरेजी पुस्तक 'मुगल एम्पायर' के रचयिता हेनरी जार्ज कीनी साहब और पीछे से महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने जो सविस्तर वृत्तांत अपनी पुस्तक में लिखा है, वह इससे भिन्न है। उसका उल्लेख करना भी अति आवश्यक है। कीनी साहब यह विदित करते हुए कि थामस ने लार्डगुड्स द्वारा बेगम की सरधनेवाली सेना में बगावत की आग फैला दी और बेगम के गुप्त विवाह और उसके पति ली वैस्यू की अपकीर्ति ने उसमें और घृत डाल दिया, आगे लिखते हैं—

पत्नी और पति यह सुनकर कि अफसर मृतक समरू के पुत्र नवाब जफरशाह खों से, जो दिल्ली में रहता था, मिल गए हैं, आतुरतापूर्वक सरधने को लौट आए (कदाचित् जार्ज थामस की जागोर से)। उस समय परिस्थिति बड़ी नाजुक हो

शान्ति-स्थापना

जगत् की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु का निरन्तर उत्थान और पतन होता रहता है। बेगम का प्रताप

गई थी और अब उनके वश की बात नहीं रही थी; इसलिये उन्होंने सरधने को छोड़ने और दो लाख रुपए मूल्य के लगभग की ले जाने योग्य अपनी सम्पत्ति माफ़ लेकर अंगरेजी राज्य में चले जाने का विचार किया। इस अभिप्राय से उन्होंने कर्नल मैक ग्वान (Colonel Mc Gowan) कमांडिंग अनूपशहर ब्रिगेड को चिट्ठी लिखी और उसका कर्नल मैक ग्वान के पास से उत्तर भी आ गया। ली वेस्वू ने फिर निम्नलिखित पत्र अनूपशहर के कर्नल मैक ग्वान के पास भेजा—

मरधना

२ अप्रैल सन् १७६५।

श्रीमान्,

आपने अनुग्रहपूर्वक मेरे पास जो पत्र भेजा है, वह आज मुझे मिला। बेगम के आदेश और इच्छा के अनुसार मैं फिर इस विषय में कष्ट देने का साहस करता हूँ। बेगम की प्रबल इच्छा और उद्देश्य यह है कि वह यहाँ से चली जाय। यदि यूरोप का सा हाल इस देश का भी होता, तो उसका इस्तीफा केवल इस विषय की प्रार्थना करने पर ही स्वीकृत हो जाता और उसका कोई अशुभ फल न निकलता। परंतु आप तो भली भाँति जानते हैं कि भारतवर्ष में उस सरदार को जोखों है जिसके साथ सिपाही और अनुचर न हो। इस कारण उसके छोड़कर चले जाने और आगे को सेवा न करने का समाचार प्रकाशित करने में भय है।

मराठों के साथ अंगरेजों की मित्रता है। इससे यदि बेगम को अंगरेजी इलाके में ले जाया जाय, तो उसमें कोई बखेड़ा नहीं हो सकता। यह अवश्य है कि इस प्रश्नान से अन्यायपूर्वक और कानून के विरुद्ध उसकी सम्पत्ति लूटने का कोई प्रपञ्च न रचा जाय। शस्त्र, तोपें, समस्त सामग्रो और ५००० सिपाहियों के इशियार

अब तक दिन दिन बढ़ता ही रहा था। वह अब तक किसी विपत्ति के फेर में नहीं आई थी। अब जो उसने बे सोचे समझे

बेगम की सम्पत्ति है, वह कुछ सरकार की नहीं है। सिंधिया ने एक पत्र के प्रतिनिधि रूप में उनका मूल्य (५००००) मासिक अथवा छः लाख रुपए वार्षिक कृता है, जिसके भुगतान के निमित्त आठ परगने दिए गए हैं।

शुद्ध भाव से दूसरी जगह चले जाने से बेगम अपने अधिकार अथवा सम्पत्ति में से, जो मराठों के राज्य की है, कुछ नहीं घटाती है। उसका राजस्व प्रति मास निरंतर प्राप्त होता है। उसकी पद्यों में नौकरी पर लगे हैं। सब प्रबंध ठीक हैं।

नकदी का दृष्टि से तो उसकी सम्पत्ति एक भले मानस द्वारा कदाचित् एक लाख रुपए की कृती जाय। उसके पास आभूषण तो इतने थोड़े हैं, जो न होने के तुल्य हैं। रहे सिपाहो; न वे साथ लिए जा सकते हैं और न बेचे जा सकते हैं। अतएव तनिक आप ही विचार कीजिए कि क्या अठारह वर्ष पर्यन्त सेना की नायक होने पर राजधानी रखते हुए जिसकी आय इतनी कम है, जिससे सरकार या कोई मनुष्य व्यय की पूर्ति करने में असमर्थ है, बेगम धनी कही जा सकती है !

वह अठारह वर्ष के दीर्घ काल तक सैनिक जागीर के कर्तव्यों और चिन्ताओं से जिसमें रात दिन लवलीन रहना ही उसके जीवन का उद्देश्य रहा है, बिलकुल थक गई है। अब आप की मित्रता के शरण-गत है; क्योंकि बिना अपने आपको जोखों में डाले वह न उस शासन की, जिसके वह अधीन है और न अपने सैनिकों पर अपना संकल्प प्रकाशित कर सकती है। यही कारण है कि वह किसी मुनशी को इस काम के लिये नियत नहीं करती है। किंतु यदि आप उत्सुक हैं कि यह विषय विशेष स्पष्टता के साथ आप पर प्रकट किया जाय, तो वह आप की सेवा में ऐसा सज्जन भेजेगी कि उससे जो बात आप पूछेंगे, उसका संतोष-जनक उत्तर वह आपको देगा। मैं तो इस कार्य के लिये इस कारण नहीं आ सकता कि जिस स्थान पर मैं नियुक्त हूँ, उससे मेरा छुटकारा नहीं है। यद्यपि मैं ऐसी टूटी फूटी अँगरेजी लिख तो लेता हूँ, किंतु बातचीत करने में मैं न अँगरेजी का एक शब्द बोल सकता हूँ

कामातुर होकर दूसरे मनुष्य से विवाह कर लिया था, वास्तव में वही बेगम के दुःख सहन करने का मूल कारण हुआ।

और न समझ ही सकता हूँ; क्योंकि उसके उच्चारण से नितांत अनभिज्ञ हूँ। यदि आप आशा दें तो उपर्युक्त सज्जन टप्पल से आपकी सेवा में भिजवा दिए जायें जहाँ कि वे नौकरी पर हैं। आपकी मित्रता से बेगम को आशा है कि वह मार्ग निकल आवेगा जिससे उसके यहाँ से निकल भागने की इच्छा पूरी हो। वह अनुगृहीत होगा यदि उसे मार्ग बताने की आप सूचना देंगे; तथा उन सज्जनों के पते से भी सूचित करेंगे जिनके साथ आपके द्वारा उनके सम्बन्ध में लिखा पढ़ी की जाय। प्रणाम।

आपका सेवक—

ए० ली वैसील्ट।

परंतु जब उन्होंने देखा कि कर्नल मैक ग्वान शाही जागीरदार को भगाने में सहायता देने से आनाकानी करता है, तब फिर ली वैस्यू ने अप्रैल सन् १७६५ में सीधे गवर्नर जनरल को लिखा और उसके साथ बेगम का फारसी खरीता भी भेजा, जिसका यह अनुवाद है—

(तारीख २२ अप्रैल सन् १७६५ को मिला)

मृतक शमरू की विधवा जेबउन्निसा बेगम की ओर से

मैं अंगरेजी गवर्नमेंट की रक्षा में, ऐसे किसी स्थान में जो बंगाल अथवा बिहार में नियत किया जाय, रहना चाहती हूँ। मैं कांसिल के सदस्यों की आज्ञा के अनुसार पूर्णतया कार्य करूँगी और अपने आप को प्रजा समझूँगी। मेरा जीवन अब तक कठिनाइयों और विपत्तियों का केंद्र बना रहा है; और अब उनकी समाप्ति होनेवाली है। मैं अधिक समय तक इन कठिनाइयों को सहन करने में असमर्थ हूँ। अतएव मैं यहाँ से चली जाना और अपना शेष जीवन अंगरेजी गवर्नमेंट की कौन्सिल की छत्र-छाया में व्यतीत करना चाहती हूँ। मैं भगवान से सदैव प्रार्थना करती हूँ कि वह अंगरेजी गवर्नमेंट की उन्नति करे और उसकी रांरक्षा प्रदान करे जो केवल मेरे आश्रय की आशा है।

अथवा यों कहो कि इस यन्त्रणा द्वारा आगे के लिये उसको मली भाँति सावधान और सचेत रहने की पूर्ण शिक्षा मिल

कोंसिल का निश्चय

निश्चय हुआ कि गवर्नर जनरल से प्रार्थना की जाय कि उसके पत्र के उत्तर में समझ की विधवा को सूचना दे कि यदि वह उचित समझे तो उसे अपने कुटुंब और आत्मिक अनुचरों के सहित पटने में रहने का स्वतन्त्रता प्राप्त है। किंतु कोई अपना अथवा सैनिक सामग्री साथ लाना इस अनुशासन के विरुद्ध है।

इस निश्चय के अनुसार भारत के गवर्नर जनरल सर जान शोर महोदय ने मेजर पामर को, जो अंगरेजों के विस्वासनीय एजेंट के रूप में दौलतराव सिंधिया के साथ था, जिनके पास सलतनत की विजारत की मोहर रहती थी और जो उस समय दिल्ली के समीप शिविर में थे, लिखा कि वह बाच में पड़कर सिंधिया से बेगम का अर्थ मिद्ध करा दे। सिंधिया ने इस काम के लिये बारह लाख रुपय माँगे। परंतु बेगम ने उलटे अपना सैनिक भार साँपने के बदले में चार लाख रुपय शस्त्रों और वर्दा आदि सामग्री के मूल्य के और माँगे।

इसका यह परिणाम हुआ कि गुप्त रूप से भाग जाने के निमित्त सिंधिया की आज्ञा मिल गई। उस समय इंग्लैंड और फ्रांस के मध्य लड़ाई होने के कारण ली-वैस्यू के साथ युद्ध के कैदी का सा व्यवहार किया जाना निश्चित हुआ; और उसको यह भी आज्ञा हो गई कि अपनी स्त्रियों को भी अपने पास चंद्रनगर में रखे।

मई सन् १७६५ के अंत में जफरयाब खॉं विद्रोही सेना का अपनी अध्यक्षता में लेकर दिल्ली से बाहर निकल पड़ा और न जाने मूर्खतावश क्यों उसने अपने बैरी के भागकर निकल जाने के मार्ग में रोड़े खड़े करना ठीक समझा। उसको तो चाहिए था कि खुशी मनाता कि मेरा शत्रु राजपाट छोड़कर अपने आप भागा जाता है और उसको चले जाने का सर्व प्रकार अवकाश और अवसर देता। वरर ली वैस्यू को जो खबर मिली कि जफरयाब खॉं हमारे ऊपर चढ़कर आ रहा है, तो उसने भटपट जाने की तैयारी की और अपनी स्त्री को साथ लेकर निकल

गई जससे फिर वह राज्याधिकार के भोग विलास में रहते हुए भी सदैव तत्पर और दृढ़ बनी रही और कर्तव्य-परायणता

भागा। बेगम पालकी में सवार थी और उसका पति शस्त्र धारण किए घोड़े पर था। दोनों में यह निश्चय हो गया था कि यदि उनमें से कोई एक मर जाय, तो उसकी मृत्यु की तत्पश्चात् होनेपर दूसरा भी अपने प्राण त्याग देगा और कदापि जीता न रहेगा। सरपने में जो सेना थी, या तो उसका मुंह दिल्ली के विद्रोहियों ने कुछ दे दिलाकर भर दिया था, अथवा इस विचार से कि दिल्लीवालों के आने से पहले इन्हीं लूट से अपने जब भर लें, तुरंत बेगम और उसके पति के पीछे दौड़ पड़ी। स्लीमेन साहब ने आँख से देखनेवाले साक्षियों से पूछ पूछकर इस घटना का वर्णन लिखा है। उन्होंने अपने अनुसन्धान का फल इन शब्दों में दिया है—

“वे मेरे ठीक जानेवाली सड़क पर तीन मील पहुँचे थे कि जब उन्होंने देखा कि पश्तन पालकी पर झपट रही है। लो वैस्यू ने अपनी पिस्तौल निकाली और पालकी के कहारों पर उसकी ताक लगाई। वह सुगमतापूर्वक घोड़े को दौड़ाकर अपनी जान बचा लेता, परंतु उसने अपनी प्राणधारी को अकेली छोड़ना न चाहा। यहाँ तक कि सिपाही पीछे समीप आ गए। दासियों ने रोना और चिल्लाना आरंभ किया। ली वैस्यू ने जब डोली के भीतर देखा तो उसे यह दृष्टिगोचर हुआ कि जिस श्वेत चादर से बेगम की छाती ढकी हुई थी, वह खून से सनी हुई है। बेगम ने अपने कलेजे में छुरी मारी थी; परंतु छुरी छाती की एक हड्डी में लगी और फिर उसे मारने का साहस न हुआ। उसके पति ने अपनी पिस्तौल अपनी कनपटी पर रखकर चला दी। गोली सिर से पार निकल गई और वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।”

इस शोकजनक वार्ता का इससे कुछ भिन्न वृत्तान्त थामस ने अपने जीवन-चरित्र लेखक को बताया है। उसके विचार में बेगम ने अपने पति को जान बूझकर इस प्रकार धोखा दिया जिससे उसने अपनी आत्महत्या कर ली। थामस का कथन है कि ली वैस्यू सवारों में सब से आगे सिर पर घोड़े पर चढ़ा हुआ था और उसने पीछे से यह सन्देश पाने पर कि बेगम ने छुरी मारकर अपने प्राण दे दिए और

के पथ से उसके पाँव नहीं डगमगाए । नवाब मुजफ्फर उद्दौला जफरयाब खाँ दिल्ली में आकर अपने पिता समरू की गद्दी

उसके खून से सने वस्त्र देखकर अपनी जान अपने आप दे दी । परंतु यह कठिन स्तीत होता है कि उस जैसे स्वभाव का मनुष्य ऐसे विषम अवसर पर अपनी स्त्री के पास से पृथक् हो गया हो । थामस के लिये तो स्वाभाविक है कि वह बेगम के विषय में अशुभ भावना करे; किन्तु इस घटना के पीछे जो बातें हुई, उनसे इसके मेथ्या होने में लेशमात्र शंका नहीं रहती कि बेगम ने विद्रोहियों से मिलकर ऐसा प्रनर्थ कराया था । बेगम को किले में वापस लाया गया, उससे सब सम्पत्ति छीन ली गई और तोप के नीचे उसे बाँध दिया गया । उसी दशा में वह कई दिनों तक रही । वह भूख प्यास के मारे मर जाती, यदि उसकी हितकारी आया ऐसे समय में उसकी सुधि न लेती ।

“ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी” नामक अंगरेजी पुस्तक के लेखक बेल साहिब ने इस सम्बन्ध में अपनी पुस्तक में जो लिखा है, वह उससे कहीं बढ़चढ़ कर है जो थामस ने अपनी जीवनी में लिखाया है । बेल साहिब लिखते हैं—

“बेगम का दूसरा पति एक फरासीसी धनी योद्धा ली वैस्यूल्ट (Le Vassault) नामक था जो उसकी एक छोटी टुकड़ी का सेनापति था । इस मनुष्य के विषय में एक विलक्षण बात कही जाती है जो यदि सत्य हो तो बहुत ही आश्चर्यजनक है । स्कनर कहा करता था कि बेगम का पति धनी, शक्तिशाली और बड़ी सेना का स्वामी बन गया था और उसके अधिकार का बेगम को इतना लोभ था कि वह इसमें किसी को अपना साझी करना नहीं चाहती थी; इसलिये अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये उसने यह कार्य किया । जब उसके पति के बाड़ी गार्ड (शरीर-रक्षक सेना) में वेतन न मिलने से विद्रोह के चिह्न प्रकट हुए थे, तब बेगम ने जिसका वय लगभग पच्चीस वर्ष के था, अपने पति को उसका बड़ा चढ़ाकर डर दिखालया तथा यह सम्वाद उसके पास पहुँचवा दिया कि बागियों ने यह प्रपंच रचा है कि तुम्हें पकड़कर कैद कर देंगे और मुझ को अपमानित करेंगे । अतएव

पर बैठा, जिसको उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी विमाता बैठकर सुशोभित किए हुए थी और जो इस समय कारागार में पड़ी पड़ी अपनी आपत्ति के दिन काट रही थी। यह सब उत्पात और उपद्रव अक्टूबर सन् १७६५ में हुआ था। बेगम के दुर्भाग्य का समय व्यतीत होने पर आया और उसके अच्छे दिन फिर आए। उसे ऐसे उपाय शीघ्र प्राप्त हुए कि उसने सिंधिया और दिल्ली के मराठे शासक तथा जार्ज थामस को जो इस समय दिल्ली के मराठा अधिकारी के अधीन था, अपने कष्टों की कथा लिखी। जार्ज थामस पर बेगम ने यह भी प्रकट किया था कि मुझे

दम्पती ने सिपाहियों के कोप से बचने का प्रबंध किया और रात को पालकियों में गुप्त रूप से अपने महल से भाग निकले। प्रातःकाल के लगभग अनुचरों ने बड़ा डर दिखाकर पुकार मचाई कि हमारा पीछा किया जा रहा है; और बेगम ने झूठमूठ अपनी रोनी सूरत बनाकर प्रतिज्ञा की कि यदि हमारे साथ के पहरेवालों की हार हो जायगी, तो मैं अपने कलेजे में कटारी मार लूंगी। उसके प्रेमी पति ने, जिसकी ओर से आशा थी कि वह अवश्य इकरार कर बैठेगा, यह शपथ खाई कि यदि तुम मर जाओगी, तो फिर मैं भी नहीं जीऊंगा। थोड़ा देर पीछे कपटी नागो आ गए और लड़ाई होने पर नौकरों को पीछे हटाया गया और कहालों से पालकी नीचे रखवा दी गई। उसी समय ली वैश्य ने एक चौख सुनी और उसकी छाँ की दानों उसके पाम चिल्लाती हुई दौड़ी आई कि मेरी स्वामिनी कटारी मारकर मर गई। पति ने अपने बचनानुसार तत्काल अपनी पिरतौल निकाली और अपना मिर उड़ा दिया।”

बेल साहब ने जो वृत्तांत लिखा है, वह सच हो अथवा झूठ, इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु सन् १७६५ में बेगम की अवस्था आलीस वर्ष से ऊपर थी। फिर उन्होंने न जाने पच्चीस वर्ष क्यों लिखी है।

अपने जीवन की आशा नहीं। किसी के विष देने अथवा और तरह से मरवा डालने का भय रहता है। आप सहायतार्थ यहाँ पधारें। यदि फिर मुझे अपनी जागीर पर अधिकार दिला दिया जाय, तो मराठे इसके बदले में मुझसे जितना माँनंगे, उतना ही रुपया मैं उनकी भेट करूँगी। जार्ज थामस ने जो वेगम का पत्र पढ़ा, तो उस में दारुण कठोरता और अन्याय होने का जो ब्योरेवार वर्णन लिखा था, उसको पढ़कर उसके हृदय पर बड़ी चोट लगी। निस्संदेह वेगम की आपदा में उसका भी हाथ था और वेगम ने पहले उसके साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं किया था; तो भी वह उसकी पुरानी स्वामिनी थी। वह एक बार उसे अपनी प्राण प्यारी भार्या बनाने का भी इच्छुक हुआ था। उसने बागियों को स्पष्ट लिखा कि तुमने जो वेगम को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाए हैं, यदि उनके कारण उसकी मृत्यु हो गई अथवा तुम इसी प्रकार झगड़ा करते रहे, तो फिर समझ लेना कि बाद शाह पटेल अर्थात् सिंधिया तुमसे अप्रसन्न हो जायेंगे, तुम्हारी सेना को तोड़ देंगे; और वह भूमि जो तुम्हें व्ययार्थ दे रखी है, वह सब फिर खालसा हो जायगी। फिर उसने १,२०,०००) रुपए ऊपरी दुआब के मराठा शासक बापूराव सिंधिया को देने का वचन देकर सरधने को कुछ सेना भिजवाई। दूसरी ओर से इसी प्रकार की धमकियाँ सिंधिया के अधिकारियों ने उनके पास भेजीं। अतः उनकी आँखें खुल गई और बुद्धि ठिकाने आ गई।

उधर थोड़े ही दिनों में अफसर और सिपाही ज़फ़रयाब खाँ की ओर से उकता गए और हताश हो गए; क्योंकि वह मनुष्य सर्वथा निकम्मा, निर्वुद्धि और दुराचारी था। थोड़े दिनों में ही अधिकार मिलने के पश्चात् भोग विलास में फँस गया। अफसरों में सेलूर और कुछ ऐसे सज्जन भी थे जो बेगम के मित्र और शुभचिन्तक थे और जिन्होंने विद्रोह में योग नहीं दिया था। उन्होंने अपने साथी अफसरों को समझाने बुझाने और उन्हें सीधे मार्ग पर लाने का बहुत प्रयत्न किया। इससे सरधने की जागीर में सुगमतापूर्वक जो परिवर्तन हुआ था, वह मिट गया और पूर्व की सी परिस्थिति के चिह्न दिखाई देने लगे। दिल्ली के मराठा शासक की आज्ञा के अनुसार जार्ज थामस ने सरधने को कूच किया। जब यह समाचार पहुँचा कि वह खतौली तक आ पहुँचा है, तब सेना के बड़े भाग ने तो उसी वक्त सुनकर यह प्रकट कर दिया कि हम तो अब बेगम के पक्ष में हैं। थामस भी शीघ्र ही आ पहुँचा। उसके साथ उसकी अर्दली के ५० विश्वसनोय सवार थे। इन थोड़े से मनुष्यों को तो ज़फ़रयाब खाँ के सिपाही मार डालते; परन्तु ४०० पल्टन के सिपाही परे बाँधे जार्ज थामस की कुमक को पहुँच गए, जिससे उनके लूकके लूट गए और उन्होंने यह जाना कि मराठों की समस्त सेना बेगम की सहायता के लिये आ रही है। पुनः ज़फ़रयाब खाँ को पकड़कर कैद किया गया*।

* कीर्ति साहिब ने इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

सेना से राजभक्त होने की शपथ खिलाई गई तथा एक शपथपत्र लिखाया गया, जिस पर तीस युरोपियनों ने यह प्रतिज्ञा करके हस्ताक्षर किया कि हम ईश्वर और ईसा मसीह को अपना साक्षी करके इफरार करते हैं कि इससे आगे हम अपने मन और आत्मा से बेगम के आज्ञाकारी बने रहेंगे; और उसके अतिरिक्त और किसी को अपना सेनापति नहीं समझेंगे। इस पुनराभिषेक के उत्सव के समय सिंधिया का भी एक अफसर उपस्थित हुआ था जिसको डेढ़ लाख रुपये जुमाने के बेगम को देने पड़े। अब सेलूर को सेना का अध्यक्ष बनाया गया। जार्ज थामस को बेगम ने एक युवती सुकुमारी मेरिया (Maria) जो फरासीसी जाति की उसकी मुख्य खवास थी, व्याह दी और उसे दुलहन के साथ बहुत सा दहेज भी दिया। अपनी तनिक सी चूक से नाना प्रकार के कष्ट और अपमान सहने पर जब बेगम ईश्वर की कृपा से अपने पुराने मित्र जार्ज थामस की सहायता से फिर बहाल हो गई, तब उसने यह बात गाँठ बाँध ली और पुनः मरने के समय तक नारी

जार्ज थामस भावा करके सरधने आया जहाँ उसने अपने अर्दली के रिसाले के साथ, जो उन दिनों प्रत्येक नायक की सवारी का अंग होता था, नवाब जफरयाब खाँ पर अचानक टूट पड़ा। सिपाहियों को जो अपने अफसरों से तग आ गए थे और जिन्हें जफरयाब खाँ को ओर से अब कुछ आशा नहीं थी, कुछ घूस देकर और कुछ डोंट डपटकर जफरयाब को बेगम को कैद में दे दिया; और जो कुछ उसके पास था, वह सब छीन लिया और हिरासत में करके दिल्ली भेज दिया।

होने पर भी कदापि अपनी दुर्बलता का परिचय नहीं दिया और अपने राज्य तथा अधिकार को जोखों में नहीं डाला । और न इसके पीछे कभी उसके आधिपत्य में फिर कुछ क्षति ही हुई । इसके उपरान्त निरन्तर उसका ध्यान विशेषतः अपनी लम्बी चौड़ी रियासत के प्रबन्ध करने में लगा रहा ।

मराठों की सेवा

सन् १८०० में बेगम सिंधिया से भेंट करने के आशय से आगरे गई । सिंधिया वजीर तो कहलाता ही था, परंतु अब वास्तव में वही हिंदुस्तान का सर्वमान्य शासक था । सिंधिया ने बहुत सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और उसकी योग्यता के विषय में अपना उत्कृष्ट मत निश्चित किया । अतः उसका सत्त्व और अधिकार समस्त वस्तुओं पर, जो उसके वश में थीं, निर्धारित किया । सिंधिया ने उसको पश्चिमी सीमा की सिक्खों की चढ़ाइयों से रक्षा करने का भार सौंपा; क्योंकि उस समय सिक्खों का बड़ा भय था और वे चारों ओर धावे मारते फिरते थे ।

जब सन् १८०२ में अंगरेजों ने मराठों के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा की, तब उसकी तीन पलटनों ने सेलूर की अधीनता में सिंधिया के सहायतार्थ दक्षिण की गमन किया; क्योंकि उस निश्चय के अनुसार, जो बेगम का सिंधिया से हुआ था, तीन पलटनें और १२ तोपें अपने व्यय पर लड़ाई में भेजने को बद्ध

थी। उनके चंबल पार करने पर सिंधिया की ओर से विशेष वृत्ति मिलती थी। बेगम ने दो पल्टनें पीछे और भेजीं जो असाई की लड़ाई में सम्मिलित हुईं, जिसमें अंगरेजी सेना कर्नल वेल्लेजली (Colonel Wellesley) के अधीन लड़ी थी जो पीछे प्रसिद्ध ड्यूक आफ वेल्लिंगटन (Duke of Wellington) कहलाया। यह बात प्रशंसनीय है कि सिंधिया की ओर की सेना में केवल अकेली बेगम की वाहिनी ही ऐसी निकली जो युद्ध क्षेत्र से पूर्ण और अखण्डित रूप में बची, यद्यपि उस पर बहुत कुछ ज़ोर पड़ा था: क्योंकि कई बार अंगरेजी रिसाले ने उस पर धावा किया, परन्तु उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। बेगम की इन्हीं पल्टनों के वेतन चुकाने के लिये सिंधाने, पहामऊ और मुर्थल के परगने उसको दिए गए।

अंगरेजी गवर्नमेंट से मित्रता।

ब्रिटिश गवर्नमेंट और सगरू तथा बेगम समरू के बीच में बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। पटने की घटना के कारण अंगरेज समरू की जान के सदैव दुश्मन बने रहे और उन्होंने उसको पकड़ने और दंड देने के लिये बड़ा प्रयत्न किया। चाहे उसे कोई तोता चशम कहे, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि वह अपनी परिस्थिति समझने और अपनी रक्षा करने में बड़ा सावधान और चौकस रहा और अंतकाल तक वह अपने शत्रुओं के हाथ न आया।

बेगम भी अपने हित और अनहित के समझने में अपने पति से कुछ कम कुशल न थी। समरू के समय की कुछ और दशा थी। वरन्तु बेगम के काल में पहली सी स्थिति नहीं रही थी; उससे भिन्न हो गई थी, इसके अतिरिक्त अंगरेजों की समरू पर जैसे तीव्र दृष्टि थी, वैसी बेगम पर नहीं थी।

पहले कहा जा चुका है कि अंगरेजों और सिंधिया के बीच जो असाई की लड़ाई हुई थी, उसमें बेगम की सेना सिंधिया की ओर से अंगरेजों के साथ लड़ी थी। अंगरेजों को उसमें विजय प्राप्त हुई। इसके अनन्तर उत्तरीय भारत की राजनीतिक परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया। मुगल साम्राज्य नष्टप्राय हो चुका था। शासन की बागडोर सिंधिया के हाथ में थी। परन्तु असाई युद्ध में पराजय होने से मराठों की शक्ति टूट गई और अंगरेजों के अधिकार की वृद्धि होने लगी।

बेगम हवा का रुख पहचानती थी। उसने सब प्रकार सोच विचार करके समझ लिया कि अब अंगरेजों की राज-शक्ति का पलड़ा बहुत भारी हो गया है। इनसे मेल मिलाप किए बिना मेरा निर्वाह नहीं हो सकता; इसलिये सन् १८०४ में उसने ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ सन्धि कर ली, जिसके अनुसार उसका राज्य और अधिकार उसके जीवन-पर्यन्त बदस्तूर उसी के लिये बहाल और बरकरार रक्खा गया। इस सन्धि की प्रतिज्ञाओं का बेगम ने सदैव पूर्ण रूप से पालन किया। बेगम की योग्यता और बुद्धिमत्ता से ही

उसकी जागीर बची रही; और नहीं तो वह समय ऐसी हलचल और उपद्रवों का था कि जिसमें बड़ी बड़ी शक्तिशालिनी पुरानी रियासतें नष्ट हो गईं। अब उसकी सेना को अधिकतर बाहर जाने का काम नहीं रहता था। उसकी सेवा का सरधने के राज्य के भीतर ही शान्ति-स्थापन करने में उपयोग किया जाता था। बेगम के पति समरू ने भरतपुर के जाटों की नौकरी राजा सूर्यमल, राजा जवाहरसिंह और राजा नवलसिंह के शासनकाल में की थी। पीछे जब वह नवाब नजफ़ुख़ाँ की सेवा में गया, तब उसने भरतपुर पर भी चढ़ाई की थी।

सन् १८२५ में जब भरतपुर के राजा के साथ अंगरेजों की लड़ाई हुई, तब बेगम की पलटनें भी सहायतार्थ बुलाई गईं। बेगम स्वयं अपनी सेना लेकर गई। जब लार्ड लेक (Lord Lake) ने किले पर गोले बरसाकर उस पर घेरा डाला, तब बेगम उस लड़ाई में उपस्थित थी। ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से उसे तुरन्त कुमक पहुँचाने, उत्तम सेवा करने, और दीर्घ कठिन युद्ध में आप शिविर में उपस्थित रहकर आदर्श राजभक्ति प्रकट करने के लिये धन्यवाद मिला था।

समरू की सन्तति

पहले लिखा जा चुका है कि बेगम के दो पतिथों (अर्थात् समरू और ली वैस्यू) से विवाह हुए; परंतु उसकी

कोख नहीं खुली। समरू की जेठी स्त्री से ज़फरयाब खाँ नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसके कलंकित चरित्र का वर्णन अन्यत्र हो चुका है कि किस प्रकार उसने अपनी विमाता के साथ असद्व्यवहार और अनर्थ किया। इतने पर भी बेगम ने उसे मन से नहीं त्यागा। उसको उसके अपराध का दंड अवश्य दिया गया, जो क्या राजकीय शासन की दृष्टि से और क्या मातृ कर्तव्य के विचार से, अपने पुत्र को आगे को सुधारने के लिये सर्वथा उचित और शिक्षादायक था। ज़फरयाब खाँ को क्रान्ति के मिटने के पीछे कैद करके दिल्ली भेज दिया गया था जहाँ उसकी कैद तो नाम मात्र ही थी और वह खुल्लमखुल्ला बेगम की कोठी में निवास करता था। सन् १८०३ के आरम्भ में हैजे ने उसे ग्रस लिया जिससे उसके प्राण पखेरू शरीर के पिंजरे से उड़ गए। उसकी लाश आगरे में पहुँचाई गई और उसके पिता के बराबर दफन की गई। ज़फरयाब खाँ का कप्तान ली फेवरे (Captain Le Fevre) की पुत्री, जूलिया ऐनी (Julia Anne) नामक से विवाह हुआ था जिससे एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम ऐलासिअस (Alosius) था और पुत्री का नाम जूलिया ऐनी था और यही नाम उसकी माता का भी था। ऐलासिअस अपने पिता ज़फरयाब खाँ के जीते तारीख ३० अक्तूबर सन् १८०२ को मर गया जो आगरे के पुराने रोमन कैथलिक गिरजा में दफन हुआ, जैसा कि उसकी समाधि

के लेख से प्रतीत होता है। ज़फरयाब खाँ की पुत्री जूलिया ऐनी का जन्म तारीख १६ नवम्बर १७८६ को हुआ था और उसका विवाह तारीख ८ अक्टूबर सन् १८०६ को कर्नल डायस (Col. Dyce) से हुआ जिसने सेलूर के सेधा परित्याग करने पर बेगम की सेना की अध्यक्षता ग्रहण की। जूलिया ऐनी के गर्भ से बहुत से बालक पैदा हुए जिनमें से कितने ही बाल्यावस्था में मर गए। तारीख १३ जून सन् १८२० को जब श्रीमती डायस (जूलिया ऐनी) की मृत्यु हुई, तो उस समय उसका एक पुत्र और दो पुत्रियाँ जीती थीं। बेगम ने इन तीनों का अपने पेट से उत्पन्न हुए बालकों के समान लालन पालन किया। पुत्रियाँ जिनका नाम जार्जियाना और ऐना मोरया (Georgiana and Anna Maria) था, जब बड़ी हो गईं, तब उनका विवाह तारीख ३ अक्टूबर सन् १८३१ को सोलरोली और ट्रोप (Messrs Solaroli and Troup) के साथ कर दिया गया। ये दोनों युरोपियन अफसर बेगम की सेना के ही थे। रहा पुत्र: उसका नाम डेविड ओकुरलोनी डायस सोम्बरे (David Ochterlony Dyce Sombre) रक्खा गया जो वाल्टर रैन्हार्ड अर्थात् समरू का पड़पोता हुआ, और जिसका जन्म तारीख १८ दिसम्बर १८०८ को हुआ था। उसे बेगम ने आप गोद ले लिया और उसे अपना उत्तराधिकारी नियत किया॥

* बेगम की मृत्यु के पाँचें डायस सोम्बरे यूरोप को गया। जब बेगम की

धार्मिक भावना

बेगम समरू का एक मुसलमान के घर में जन्म हुआ था और लगभग पंद्रह सोलह वर्ष तक पैतृक गृह में इस्लाम की रीति के अनुसार वह पली और बड़ी हुई थी। यद्यपि उसका पति समरू विदेशी और विधर्मी था, तथापि बेगम का विवाह उसके साथ ईसाई धर्म की मर्यादा के अनुसार नहीं हुआ और न उसके जीवन में कभी बेगम के धर्म बदलने का प्रश्न उठा। समरू स्वयं रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के ईसाई

मृत्यु का तीसरी वर्षी ता० २७ जनवरी सन् १८३६ को मनाई गई, तो उस समय डायस सोम्बरे रोम में था। उसने, वहाँ सब कृत्य (प्रवक्तृ) ऐसी भाँति से किए जो उसकी उच्च पदवी के योग्य और अपने ग्नेह के अनुसार थे। कासों (Corso) स्थान का आलीशान गिरजा इस कार्य के लिये चुना गया और उसे सब प्रकार सजाया गया। गिरजा के केन्द्र में एक बहुत बड़ा स्मारक स्तम्भ बनाया गया। हाई मास (High Mass) का महोत्सव भी हुआ जिसमें बहुत ही उत्कृष्ट ढंग का गाना बजाना उत्तम रीति से हुआ।

फिर मि० डायस सोम्बरे इंग्लैण्ड गया। वहाँ उसने ता० २६ सितम्बर १८४० को माननीय मेरी ऐना जेर्विस (Honourable Mary Anna Jervis) से विवाह किया, परन्तु उनके कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई। मि० डायस सोम्बरे की मृत्यु ता० १ जुलाई १८५१ को लंदन में हुई और उसका शव सरधने लाकर उसकी मंरञ्चिका के पास दफन किया गया। बुढ़ाने में फिस्ते सुनकर ला० चिरंजीलाल ने अपने पत्र में यह लिखा है—“बेगम साहबा ने अपने लड़के को जिनका नाम देवी डायस था, बदचलनी की शिकायत सुनने पर तोष से उठा दिया था।”

धर्म का अनुयायी था और यथासम्भव वह उसकी विधि के अनुसार अपनी उपासना करता था। आश्चर्य नहीं कि बेगम के चित्त का झुकाव भी पीछे इधर हो गया। और शनैः शनैः बढ़कर उसमें इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि वह अपने सौतेले पुत्र ज़फरयाब खाँ सहित सन् १७८१ में ईसाई हो गई। इस धर्म में प्रवेश होने के पश्चात् तो वह ऐसी उसकी भक्त और उपासक बनी और उसने अपने शेष जीवन पर्यन्त तन, मन और धन से निगन्तर उसकी ऐसी पूर्ण सेवा की कि हिन्दुस्तान के रोमन कैथलिक ईसाइयों में सदैव उसका नाम और यश स्थिर रहेगा। उसने इस संबंध में जो कार्य किए वे बड़े प्रशंसनीय और महत्त्वपूर्ण थे। बेगम ने अपना शील आदर्श रूप में प्रकट करके और बहुधा लोगों को उत्साह और प्रेरणा देकर ईसाई धर्म में मिला लिया। देशी ईसाइयों की संख्या बेगम के समय में ही सरधने में दो सहस्र तक पहुँच गई थी। तिब्बत देश की ईसाई धर्म की संस्था (Tibetan Mission) के कैपुशिन फादरों (Capuchin Fathers) अर्थात् पादरी सदैव उसके गृह पर आकर प्रत्येक अवसर पर धार्मिक सेवा कराया करते थे। परन्तु राजसेवा में निगन्तर प्रवृत्त रहने के कारण बेगम का एक स्थान में ठहरना नहीं

* रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के वे पादरी जो सिर पर कण्ठोप की भौति एक बाल पहने होते हैं। इस सम्प्रदाय की सेन्ट फ्रैन्सिस ऑफ एसिसी (St. Francis of Assisi) ने ११८८-१२२६ में न्यापना की थी।

होता था। उसे सदैव ठौर ठौर फिरना पड़ता था। इसलिये वह उपासनार्थ अब तक किसी गिरजे के बनवाने का प्रबन्ध न कर सकी थी। इस न्यूनता की पूर्ति करने के लिये उसने सर्व-धनेमें एक गिरजा बनवाने की अपने मनमें ठान ली और उसने उसके नकशे की तजवीज सोचने और पुनः उसे कार्य रूपमें परिणत करने का सब भार अपने दरबार के एक अफसर मेजर एनटोनिओ रेघैलीनी को, जो इटली देश के पडुआ स्थान का निवासी था, सौंप दिया।

बेगम ने तारीख १२ जनवरी सन् १८३४ को रोम के बड़े पादरी अर्थात् हिज़ होलीनेस पोप ग्रेगोरी सोलहवें के नाम जो पत्र भेजा था, उसका यहाँ अनुवाद दिया जाता है—
भगवन् ,

मैं जोना समरू, जो सर्व साधारण में हर हार्नेस बेगम समरू के नाम और उपाधि से प्रसिद्ध हूँ, श्री पूज्यवर के सिंहासन के निकट पहुँचने के लिये आब्रा माँगने की सविनय प्रार्थना करती हूँ और सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को, जिसने मुझे सत्य का मार्ग दिखाने और इस योग्य करने के लिये, कि जिससे उसके पवित्र नाम के सन्मानार्थ मैंने जो किञ्चित् मात्र किया है और आगे करने की चेष्टा कर रही हूँ, अपना कोटिशः धन्यवाद समर्पण करती हूँ। वह परमात्मा, जिसे यद्यपि मृत्यु का कलेवा होनेवाले जीवों से किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है, उनसे प्रसन्न होता

है जो सत्य और निर्लेप भाव से उसकी सेवा करते हैं। श्री पूज्यवर के सिंहासन के नीचे अपनी अल्प भेंट, जो इसके साथ लन्दन के नाम की हुन्डी जो डेढ़ लाख सरकारी रूपय अथवा तेरह सहस्र सात सौ चार पौंड तीन शिलिंग और चार पेंस अंग्रेजी सिक्के की है, रखने की आज्ञा माँगने की विनती करती हूँ। यह भेंट क्या है मानो उस पवित्र धर्म के लिये जिसकी मैं अनुयायिनी हूँ, मेरे सच्चे प्रेम का एक चिह्न है; और बहुत बहुत अधीनता के साथ मेरी प्रार्थना है कि इसको श्री पूज्यवर जिस प्रकार उचित समझें, पुण्य दान में व्यय करें।

मैं इस अवसर पर श्री पूज्यवर की सेवा में एक बड़ा चित्र भेजती हूँ जिसको इस देश में यहीं के एक निवासी ने बनाया है (उसके बनाने में जो भूलें रह गई हों, उन सब के लिये क्षमा प्रदान किये जाने की प्रार्थना है)। किंतु जो दृश्य उसमें हैं, वे भली भाँति मेरे नवीन गिरजे की प्रतिष्ठा को प्रकट करते हैं। इस गिरजे को सर्वथा मैंने ही अपनी राजधानी में बनवाया है जिसको मैंने पवित्र कुँआरी मरियम देवी के नाम पर अर्पण कर दिया है। साथ मैं जो नामावली भेजी जाती है, उससे वे विविध सज्जन श्री पूज्यवर को विदित होंगे जिन जिन की उसमें तसवीरे अंकित हुई हैं।

इसी मौके पर मैं अपने गिरजे की पाँच छपी हुई तसवीरें श्री पूज्यवर के लिये भेजती हूँ जिसके विषय में मुझे गौरव

साथ कहना पड़ता है कि यह कथन किया जाता है कि वह भारत में सर्वोत्तम और अद्वितीय है । भगवान् के बड़े भक्त पादरी जूलियस सीजर की ओर जो इस देश में हमारे पवित्र धर्म के बहुत काल से उपदेशक रहे हैं, श्री पूज्यवर का विशेष अनुकूल ध्यान दिलाने के लिये अति नम्रता से आशा माँगने की विनय करती हूँ । वे मेरे घराने के पादरी हैं; और यह मेरा निश्चय है कि वे एक पवित्रात्मा और सीधे, सच्चे, बहुत बड़े गुणी और उच्च योग्य पुरुष हैं । उन्हें भारत में रहते सहते अट्ठाईस वर्ष के लगभग हो गए हैं, और हम सब उनको बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं । अतः मैं अति अधीनता पूर्वक सिफारिश करती हूँ कि कि उन्हें सरधने के बिशप की पदवी प्रदान कर दी जाय ।

यदि परमेश्वर ने मुझे जीता रखा तो मैं श्री पूज्यवर के उत्तर की चिन्तापूर्वक बाट देखूँगी । मैं चाहती हूँ कि जवाब अँगरेजी भाषा में आवे । मैं तो यहाँ तक कहने का साहस करती हूँ कि पूज्यवर की ओर से पत्र प्राप्त करने के हेतु मेरे जीवन में दस वर्ष और बढ़ जायँगे; और मुझे इस बात के जानने से तृप्ति होगी कि मेरी समस्त प्रार्थनाएँ स्वीकृत हो गईं । मैं अपने लिये श्रीपूज्यवर से यही प्रार्थना करती हूँ कि जब जब भगवान् की पूजा करें, तो उस समय मेरे लिये उनसे प्रार्थना करें—वह ईश्वर ही हम सब का रक्षयिता है—और मेरे नित्य कल्याणार्थ आप अपना गुरुतर

आशीर्वाद भेज । इसके अतिरिक्त श्री पूज्यवर मेरे गिरजे के निमित्त कोई स्मारक चिह्न प्रदान करें तो उसका कृतज्ञता के साथ और महान् आदरपूर्वक स्वागत किया जायगा । मैं पुनः पुनः अपना अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रणाम श्रीपूज्यवर को भेजकर और अपनी समस्त विनितियों के लिये श्रीपूज्यवर का आशीर्वाद और कृपामय उत्तर पाने की प्रार्थना करके सविनय यह निवेदन करती हूँ कि मैं समस्त दासियों से अति लघु आज्ञाकारी दासी हूँ । सरंधना (पश्चिमी भारत) बंगाल हाता तारीख १२ जनवरी १८३४ ।

बेगम की मृत्यु के थोड़े समय पूर्व ही उसे हिज होलीनेस पोप सोलहवें ग्रेगोरी के पत्र दो ताबूतों के सहित जिनमें बहुत से सन्तों की हड्डियाँ थीं और अन्य बहुमूल्य स्मारक चिह्न मिले, जिनसे प्रतीत होता था कि बेगम ने उक्त पोप महोदय की सेवा में जो प्रार्थना की थी, वह स्वीकृत हुई । पोप ग्रेगोरी की मृत्यु के पश्चात् होली सी (Holy See) महोदय ने मुख्य हिन्दुस्तान के मिशन का काम, आगरे में उसका स्थान नियत करके, तिब्बती केपूशिन सम्प्रदाय के पादरियों को सौंप दिया । अतः सरंधने का ईसाई धार्मिक समाज नियमपूर्वक शिक्षा पाने के लाभ में वंचित न रहा ।

आचरण

अपने प्रारम्भिक शासन-काल में, जब कि बेगम को अपनी पल्टनों के साथ बहुधा इधर उधर यात्रा करनी पड़ती थी,

वह भारत की कुलीन स्त्रियों की प्रथा का पूर्ण रीति से अनुसरण करती थी; अर्थात् सर्व साधारण के सम्मुख नहीं निकलती थी। और जब उसे बाहर निकलने की आवश्यकता होती थी, तब वह अपने मुँह पर बुर्का डालकर निकलती थी। परदे की आड़ में वह आप दरबार करके सब बातें सुनती थी और सब प्रकार के राज कार्य का प्रबन्ध करती थी। तथापि उसने अपनी पति समूह की इस मर्यादा को स्थिर रखा कि अपने मेज पर वह अपने उच्च युरोपियन अफसरों को सदैव बुलाती रही। वे उन्हें अपने संग्रहने और दिल्ली के भवनों में बड़े बड़े भोज्यों में बुलाती थी, और बदले में गवर्नर जनरल और कमान्डर इन चीफ के निमन्त्रण स्वीकार करके उनकी कोठियों पर जाती थी। इतना करने पर भी बेगम ने अपने खाने पीने, वस्त्रों और अन्य प्रकार के रहन सहन में किञ्चिन्मात्र परिवर्तन नहीं किया। उस पत्र का यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा जो लार्ड बैन्टिक ने अपने हिंदुस्तान से जाने के समय उसको तारीख १७ मार्च सन् १८३५ को कलकत्ते से लिखा था; क्योंकि उक्त लार्ड चाल चलन के परखने में प्रवीण था और वह यथा योग्य उसकी कदर करना जानता था। उस पत्र में लिखा था—

माननीय मित्र,

मैं भारत से श्रीमती के शील के विषय में उस सच्चे सम्मान को प्रकट किए बिना जिसका भाव मेरे मन में है, विदो नहीं

हो सकता। स्वाभाविक दया और विशाल पुण्य दान ने, जिनके कारण आप सहस्रों की प्राणधार बन गई हैं, मेरे चित्त में अत्यन्त प्रशंसा के विचार स्फुरित कर दिए हैं। मैं भरोसा रखता हूँ कि आप जो विधवाओं और अनाथों को धीरज बँधानेवाली, और अपने अगणित आश्रितों को निश्चित आश्रय देनेवाली हैं, वे अभी बहुत वर्षों तक सलामत रहेंगी। इंग्लैण्ड के लिये मैं कल प्रातःकाल जहाज में बैठूँगा। मेरा आशीर्वाद और शुभ इच्छाएँ आप तथा उन सब अन्य सज्जनों के साथ स्थिर रहें जो आप के समान-भारतवासियों के कल्याणार्थ प्रयत्न करते रहते हैं।

अंतकाल

वेगम जिसकी छियासी* वर्ष की पूर्ण अवस्था हो चुकी थी और जिसने अपनी दीर्घ आयु में अनेक ऐसे ऐसे कार्य किए थे जिनके कारण उसका नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदैव बना रहेगा, अब उसकी मृत्यु के दिन भी निकट आ गए। थोड़े दिन रुग्न रहकर जिनमें अंत तक बराबर उसके होश हवास बने रहे थे, जबउलनिसा ने शान्तिपूर्वक तारीख २७ जनवरी स १८३६ ई० तदनुसार तारीख ८ शव्वाल सन्

*ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के लेखक ने वेगम की आयु उसकी मृत्यु के समय अठ्ठासी वर्ष की लिखी है; किंतु इतनी इस कारण से नहीं हो सकती है कि यदि उसका जन्म सन् १७५० में होना भी मान लें जो सब से पहले निकलता है, तो भी छियासी वर्ष ही होते हैं।

१२५१ हिजरी को प्रातःकाल के समय अपने प्राण छोड़ दिए । उसकी कबर उसी विशाल और सुन्दर गिरजे में सरधने में बनी जिसको उसने बहुत श्रद्धा और सच्चे प्रेम से बनवाया था । उसकी मृत्यु के साल की सन् हिजरी की फारसी तारीख भाषा में एक विद्वान न यह कहो है—

شمر و بیگم عقیقه نیک سرشت
جنت بگزید کرد آن جا منزل
آمد رسا ندا بگوشم ناگاه
تاریخ وفات اوست داغے بردل

अर्थात् पुण्यात्मा पतिव्रता समरू की बेगम ने स्वर्ग प्राप्त करके उसको अपना निवास स्थान बनाया । मेरे कान में अचानक यह आकाशवाणी आई कि उसकी मृत्यु की तारीख “दिल पर एक दाग” है । इससे अबजद कला की रीति से सन् १५५१ हि० निकलता है ।

शासन नीति

समरू की बेगम का समय अब से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व का था । उस समय की दशा और वर्तमान काल की दशा में पृथ्वी और आकाश का सा अंतर हो गया है । इस बीच में निरन्तर ब्रिटिश शासन प्रणाली का प्रभुत्व भारत में रहने से केवल देश की गति ही में बिलकुल नवीन परिवर्तन नहीं हुआ, वरन् देशवासियों की प्रकृति और मति ने भी ऐसा विचित्र और अपूर्व पलटा खाया है कि जिसकी तुलना उनके पूर्वजों के

साथ करने में बड़ा आश्चर्य और विस्मय होता है। नवीन सभ्यता के वशीभूत होकर भारत के प्राचीन पुरुषों की सन्तानें अपना अपनपा सर्वथा गँवाकर विदेशी रंग-ढंग में पूर्णतया रंग गई हैं; इसलिये लोग उन उत्तम गुणों से विहीन हो गए जो उनके पूर्वजों में थे।

निस्सन्देह बेगम समरू में अनेक दोष और अवगुण भी विद्यमान थे: परन्तु इसको कोई अस्वीकार न करेगा कि उसमें बहुत से ऐसे असाधारण उत्कृष्ट गुण भी थे जिनके कारण वह अपने पति की उत्तराधिकारिणी हुई; और उनका अपने शासन काल में इस प्रकार परिचय दिया जिससे उसके कड़े से कड़े छिद्रान्वेषियों को भी उसकी योग्यता स्वीकार करनी पड़ी। अतएव उचित समझा जाता है कि जिन जिन महानुभावों की सम्मतियाँ हमको बेगम के विषय में जिस जिस भाषा में अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्राप्त हुई हैं, उनका यहाँ हिन्दी अनुवाद दे दें, ताकि उन्हें पढ़कर पाठक गण स्वयं उसके सम्बन्ध में स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत दृढ़ कर लें।

(१) आली गौहर हज़रत शाह आलम सानी के जीवन-चरित्र में लिखा है कि २४ रबी उल अव्वल सन जलूसी तदनुसार तारीख १६ अगस्त सन् १८०० ई० को ज़ेब उल निसा बेगम का वकील फ़रासू फिरंगी उपस्थित हुआ। उसकी भेंट स्वीकार करके बादशाह ने बेगम को यह लिखवा भेजा कि यद्यपि तुम स्त्री हो, तथापि ऐसे योग्य कार्य कर

दिखाती हो कि जो वीर पुरुषों से भी नहीं हो सकते। इस कारण हमारी यह इच्छा है कि तुमको किसी पुरुषयोग्य उपाधि से सुशोभित करें। अतएव आज्ञा की जाती है कि (लोग) सोच कर निवेदन करें, जिसके अनुसार सम्मानित किया जाय।

(२) बिशप हैयर बेगम से सन् १८२५ ई० में मिले थे। वे लिखते हैं:—

यह एक बहुत छोटी सी अजीब वज़्र कृत की बुढ़िया औरत थी, जिसकी चमकदार आँखों में शरारत भरी हुई थी। बाई हमरा (तिस पर भी) हुस्न व जमाल (रूप व सुन्दरता) की भलक अब भी शकल व शमाइल (मुख और अङ्गों) में मौजूद थी। एक बड़ी हौसला और जुर्अत और हिम्मत की औरत थी और कई बार उसने बनफ्स एनफीस (आप) फौज की सरकदर्गी (सेनाध्यक्षता) की है। उसकी खैरात व मबरात (दानपुण्य) की तूल तवील (लम्बी) फ़हरिस्त है। उसकी दीनदारी (धार्मिक भावना) का सबूत मिलता है। लेकिन मिज़ाज आग बगूला था ॥

(३) बेगम के जीवन चरित्र लेखक पादरी डब्ल्यू कीगन साहब की यह सम्मति है—

उन समस्त मनुष्यों से जिन्हें बेगम से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, उसने एक दयावान, कृपामय और उत्तम

* यह उर्दू की लिखावट जैसी मिली है, वैसी ही और ऊर्दा शब्दों में ऊपर दी गई है। केवल कठिन फारसी शब्दों का अर्थ कोष्ठक में प्रकट कर दिया गया है।

रमणी के समान बर्ताव किया। उसमें असाधारण चतुराई और पुरुषवत् दृढ़ता थी। यद्यपि वह कद की नाटी थी, तथापि उसका महत्व और आतंक बहुत अधिक था। उन हजारों स्त्री-पुरुषों की, जिनका उसके दान से पालन होता था, वह सदैव अनुग्रह पात्र बनी रही; तथा ऐसा कोई समय नहीं बीता जब उसने उन लोगों के चित्तों में जिनको कि रात दिन उसके साथ नितान्त बेकलुफी से उठने बैठने का काम पड़ता था, अत्यन्त अगाध सन्मान का भाव नहीं प्रवेश कर दिया। उसके राज्य में सब जगह शान्ति और सुप्रबन्ध स्थिर रहा। किसी अन्यायी मुखिया को अपराधियों के रखने का साहस नहीं होता था। हर तरफ जान माल की रक्षा होती थी। धनाढ्यों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जाता था, न भूकर के वसूल किए जाने में कड़ाई का प्रयोग होता था। व्यापार की उन्नति थी, खेती के लिये उत्तेजना दी जाती थी, सूखा पड़ने पर किसानों को उदारता पूर्वक अनाज और नकावी देकर सहायता की जाती थी। बेगम के इलाके की भूमि पर बड़ी खेती होती थी और उसमें अधिक पैदावार होती थी। बेगम के राज्य में प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी। जब वह मर गई तो उसके समस्त राज्य में सब लोग शोक से रोते और विलाप करते थे और उसके गाँवों के कोने कोने से सहस्रों मनुष्य और स्त्री उसके मकबरे को देखने को आते थे। इससे यह निश्चय हो गया कि उसकी मृत्यु से लोगों को दारुण दुःख हुआ।

(४) अंग्रेजी पुस्तक ओरिपेन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता मिस्टर थामस विलियम बेल ने बेगम सम्बन्धी संक्षिप्त वृत्तान्त में दो सज्जनों का मत लिखा है, जिन्होंने उसे देखकर प्रकट किया था । उनका उल्लेख यह है—

कप्तान गन्डी साहिब ने अपनी “भारत की यात्रा की पोथी” में लिखा है कि यदि बेगम के जीवन का इतिहास ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तो उससे उलट फेर की घटनाओं की एक ऐसी विचित्र माला बन जायगी जो कदाचित् और किसी स्त्री को अपनी आयु में पेश आई हो ।

(५) कर्नल स्किनर साहब ने, जब वे मराठों के यहाँ नौकर थे, बेगम को बहुधा देखा था । उस समय पर वह एक रूपवती युवती थी जो आप अपनी सेना को युद्ध करने को ले जाया करती थी और लड़ाई के बीच में बड़ी से बड़ी वीरता और मानसिक प्रबलता का परिचय देती थी ।

अंग्रेजी पोथी मुगल एम्पायर के लेखक हेनरी जार्ज कॉनी साहब ने भी अनेक फारसी और अंग्रेजी पुस्तकों में बेगम के सम्बन्ध में वर्णन पढ़कर और उन सब पर विचार करके अपना निर्णय विदित किया है; और इसके अतिरिक्त उन्होंने मिस्टर ट्रेवर प्लाउडन (Trevor Plowden) की रिपोर्ट का आशय भी प्रकट किया है जो उन्होंने सन् १८४० ई० में बोर्ड आफ रेविन्यू अथवा भूकर पंचायत (Board of Revenue) में बेगम की मृत्यु के पीछे जब उसका राज्य

मियाद गुज़र जाने पर अंगरेजी राज्य में सम्मिलित हो गया था, उसका बंदोबस्त माल (Fiscal Settlement) करके जिसके लिये वे तईनात किए गए थे, उपस्थित की थी।

(६) कीनी साहब ने उस अवसर के पीछे की बातों का उल्लेख करते हुए जो पहले “चेतावनी” और “शान्ति-स्थापना” शीर्षकों में सविस्तर प्रकट की गई हैं, यह लिखा है—

इस प्रवर्णन रमणी ने अपने आधिपत्य को पुनः कभी अपने नारी स्वभाव की दुर्बलता के कारण जोखिम में नहीं पड़ने दिया। और उस समय से लेकर जब कि थॉमस ने उसे उसका राज्य फिर दिला दिया था (जिस काम में थॉमस ने दो लाख रुपए व्यय किए थे) सन १८३६ में अपनी मृत्यु की तिथि तक उसकी प्रभुता पर पुनः कदापि घरेलू आपत्ति से कोई बाधा नहीं खड़ी हुई। जहाँ तक अटकल लगाई जा सकती है, उससे यह ही प्रतीत होता है कि बेगम अब बयालीस वर्ष की प्रौढ़ अवस्था को पहुँच चुकी थी; अतः उसने सम्भवतः अपनी इन्द्रियों का दमन करना सोच लिया था; क्योंकि ऐसा देखने में आता है कि अधिकारप्राप्त-बेगमें अपनी इन्द्रियों की उत्तेजना से कभी कभी एक मंत्री को ही सर्व शासन का भार सौंपकर उसे अपना स्वामी बना बैठती हैं। इससे शेष लोग उनके शत्रु हो जाते हैं। परन्तु बेगम ने ऐसी मूर्खता नहीं की, वरन् तदनन्तर उसने अपना मन विशेष करके अपने विशाल राज्य की व्यवस्था में लगाया। उसके परगनों को ऐस दशा थी

कि उनके उपयुक्त निरीक्षणार्थ उसे बहुत कुछ परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता था; क्योंकि वे गङ्गा से लेकर यमुना पार तक और अलीगढ़ के समीप से मुजफ्फरनगर के उत्तर तक फैले हुए थे। उसने अपनी राजधानी सरधने में ही रखी, जहाँ शनैः शनैः उसने राजभवन, ईसाई वैरागिनों का विद्यालय (Convent School) और गिरजा बनवाया जो अब तक विद्यमान हैं। उसके राज्य में सब जगह शांति और सुप्रबन्ध रक्खा जाता था। किसी अन्यायी और लुटेरे सरदार की यह शक्ति न थी जो अपराधियों को वहाँ छिपा दे और सरकारी मालगुजारी में गोलमाल कर दे। पृथ्वी पर खेती पूर्ण रूप में होती थी। एक एशियाई शासक के लिये ये बड़ी प्रशंसनीय बातें हैं।

(७) उक्त कीनी साहिब ने मिस्टर ट्रेवर माउडन साहब की रिपोर्ट का सार इन वाक्यों में प्रकाशित किया है—

“ब्योरेवार जानने के प्रेमियों को बेगम समरू की जागीर का निम्नलिखित समाचार, जैसा कि उसकी मृत्यु पर जब कि उसका ठेका पूरा हो गया, प्रकाशित हुआ था, भला प्रतीत होगा। ये वृत्तान्त और अंक उस रिपोर्ट से लिए गए हैं जो उस अध्यक्ष ने रेविन्यू बोर्ड को भेजी थी जो कि उसका बन्दो-बस्त माल करने के लिये नियुक्त किया गया था। यह सज्जन कहता है कि भूमि की जमाबन्दी की तश्खीस वार्षिक होती थी, जिसकी शरहों का पड़ता, उन शरहों से जो निकटवर्ती

अंगरेजों जिलों में प्रचलित थीं, एक तिहाई विशेष था। उन दिनों में अंगरेजों सरकार मूल जमा का दो तिहाई भाग लिया करती थी। अतः हम जानते हैं कि बेगम के असामियों को फिर क्या बचत रही। अफसर बन्दोबस्त ने भूलकर लगभग सात लाख (६, ६१, ३८८) से घटाकर कुछ ऊपर पाँच लाख रखवा। उसने इतना ही नहीं किया, वरन् सायर का महसूल उड़ा दिया जिसके विषय में उसका यह कथन है—“ये कर समस्त प्रकार की संपत्ति पर लगाए जाते थे, तथा आने जाने वाली वस्तुओं पर भी थे। पशु, पहनने के कपड़े, सब प्रकार के वस्त्र, चमड़े, रुई, गन्ने मसाले, और अन्य पैदावार पर लाने और ले जाने का मार्ग कर लिया जाता था। भूमि, मकानों और ईख के कारखानों पर भी महसूल लगता था। ईख पर बहुत ही अधिक कर था।”

शासन प्रणाली पूर्ण रूप से मुखियाशासन की (Patriarchal) थी। ईख की फसल की उपज बेगम से तकावी लेकर होती थी। और यदि किसी मनुष्य के बैल मर जाते अथवा उसे खेती के औजार आवश्यक होते तो उसे कोष से। उनके लिये उधार रुपया मिल जाता था। परन्तु वह इस बात के लिये क्रूरतापूर्वक विवश किया जाता था कि जिस कार्य के लिये रुपया ले, उसीमें वह उसे लगावे। तहसीलदार और राजस्वाध्यक्ष अपने अपने इलाके में हल चलाने की ऋतु में वार्षिक दौरा करते फिरते थे। वे लोगों को खेती करने की उत्तेजना देते थे और जोतने

बोने के लिये विवश किया करते थे। इसी समय के लगभग एक लेखक ने मेरठ यूनीवर्सल मैगैजीन में प्रकाशित किया था कि इस उद्देश्य के निमित्त कभी कभी संगीन चढ़ाए सिपाहियों को खेतों में उपस्थिति रहने की आवश्यकता पड़ती थी।

मुहम्मिद बंदोबस्त ने यह और प्रकट किया है कि तत्काली चौबीस सैकड़ा ब्याज समेत सदैव वर्ष के अंत में ले ली जाती थी। वास्तव में किसान कर से इतने अधिक जकड़े हुए थे कि उनके पास इतना थोड़ा शेष रह जाता था कि जिसमें वे अपना गुजारा कर सकें। इतना धन निश्चय-पूर्वक उनके पास छोड़ा जाता था। दूसरे शब्दों में यों कहो कि वे किसान क्या थे, धरती जोतने बोने, रखवाली करने और काटनेवाले मजूर (Predial Serfs) थे। मिस्टर माउडन को फिर भी यह कहना पड़ा कि “ऐसी प्रणाली को स्थिर रखने के लिये बड़े कौशल की आवश्यकता थी और जिस पौरुष से वेगम अपने राज्य को व्यवस्था करती थी, बसमें इनकी कुछ न्यूनता नहीं रहती थी। परन्तु जब वेगम बुढ़ापे में शक्तिहीन हुई और बिगड़े हुए प्रबन्ध का भार उसके उत्तराधिकारी के ऊपर पड़ा, तब इस पद्धति के मिथ्या रूप का भंडा फूट गया।” अंत के कुछ वर्षों में यह परिणाम हुआ कि जागीर में जो इलाका था, उसका एक तिहाई भाग भी हो गया; जिसका यह अर्थ है कि इतनी भूमि न्यूनाधिक उनके मालिकों और उत्तम श्रेणी के किसानों ने छोड़ दी।

रिपोर्ट के इस भाग का अंत इस वाक्य पर होता है कि “जिन मनुष्यों को ब्रिटिश शासन में रहने का लाभ प्राप्त नहीं है, वे उसका महत्व कैसा समझते हैं, उसे इससे अधिक और क्या बात सन्तोषजनक रूप में प्रकट कर सकती है कि ज्योंही बेगम के ठेके का समय पूरा हुआ कि प्रजा शीघ्रता के साथ अपने घरों को लौट आई।”

बेगम ने अपने जीवन में वीरता, धीरता, गम्भीरता और अनेक उच्च गुणों का जैसा परिचय दिया है, उसका उल्लेख पीछे प्रसंगानुसार हुआ है। इन्हीं के समान उसके स्वभाव में दानशीलता की भी रुचि बड़ी थी। ईसाई हो जाने के कारण उसका ध्यान इस धर्म की उन्नति की ओर अधिक था, इससे उसके दान स्रोत का बहाव भी विशेषकर उसी के कार्यों के निमित्त हुआ। तो भी इससे यह परिणाम अवश्य निकलता है कि उसकी प्रकृति में दान-शीलता थी।

कलकत्ते, बम्बई और मदरास की केथलिक मिशन संस्थाओं को बेगम ने एक लाख रुपए दान किए। आगरे के केथलिक मिशन को तीस हजार रुपए पुण्य किए। मेरठ में जो गिरजा है, उसके लिये बारह हजार रुपए का दान किया। इस बात का वर्णन अन्यत्र हो चुका है कि बेगम ने डेढ़ लाख रुपए रोमन नगर के पोप की सेवा में इस अभिप्राय से भेजे थे कि वह उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार शुभ कार्यों में व्यय करे ऐसे ही उसने पचास हजार रुपए आर्च बिशप आफ कैंटरबरी

(Archbishop of Canterbury) के पास भेजे थे कि वे भी उन्हें जैसे चाहें, धर्मार्थ बरता दें। पचास हजार रुपए बेगम ने कलकत्ते को और भेजे कि वे दीन दुखियों में बाँट दिष्ट जायँ; और जो योग्य मनुष्य ऋण के कारण कारागार चले गए हों, उनका ऋण चुकाकर उन्हें कैद से छुड़ा दिया जाय।

उपर्युक्त दान का जोड़ तीन लाख बानवे सहस्र होता है। वह धन इस गिनती में नहीं आया है जो बेगम ने स्वयं अपने हाथों से समय समय पर दान किया था ❁

इस समय कदाचित् यह संख्या विशेष न प्रतीत हो, परन्तु बेगम के ज़माने में समस्त वस्तुएँ और सामग्री बहुत सस्ते भावों पर बिकती थी, और आनों में वे पदार्थ आते थे जिनके लिये अब रुपए व्यय करने होते हैं। इन सब बातों का विचार करते हुए उसवक्त बेगम को खैरात का मूल रहस्य और महत्व यथार्थ रूप में समझ में आ जायगा। इसके अतिरिक्त रुपयों का व्यवहार बेगम के समय में उस अधिकता से न था जैसा कि पीछे अँगरेजों के राजशासन में हो गया। गाँवों में थोड़े से विरले ही मनुष्यों के पास उनकी

* ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी के रचयिता का मत है—

बेगम ने अपनी मृत्यु के पीछे छ लाख रुपए से ऊपर विविध पुण्य और दान के कार्यों के निमित्त छोड़े और यह आदेश किया कि एक कालेज स्थापित किया जाय जिसमें हिन्दू और हिन्दुस्तान की मिश्रित संस्थाओं का शिक्षा युवकों को दी जाय।

आवश्यकता से अधिक रुपया बचता था, जिसको वे दबा छिपा कर रखते थे; क्योंकि लूट मार का सदैव भय बना रहता था ।

इमारत

बेगम ने, जिसके पेट से कोई बालक उत्पन्न नहीं हुआ और जिसको इतना बड़ा अधिकार और राज्य प्राप्त था, यदि बहुत से गिरजे, भवन, कोठियाँ, पुल आदि बनवाए तो कोई आश्चर्यजनक विषय नहीं है; परन्तु इनसे उसके चित्त की उदारता अवश्य प्रकट होती है ।

बेगम की इमारतों में सब से विशाल, उत्तम, सुन्दर विलक्षण और अनुपम इमारत उसका सरधने का गिरजा है जिसका संक्षिप्त वृत्तान्त उसके चरित्र-लेखक पादरी कीगन साहब और सविस्तर उल्लेख पादरी क्रिस्टोफ़र साहब (Rev. Fr. Chistopher O. C.) ने किया है । इन्हीं लिखावटों के आधार पर उसके सम्बन्ध में यहाँ लिखने का प्रयत्न किया जायगा । गिरजे में ही बेगम की हड्डियाँ दफन की गई हैं; अतः यदि उसको बेगम का स्मारक चिह्न कहा जाय, तो कुछ अनुचित न होगा ।

यह गिरजा बेगम ने सन् १८२२ ई० में बनवाया था । बेगम ने इसके बनवाने के लिये जो शिल्पकार अथवा कारीगर चुना, वह बड़ा गुणी था । उसका नाम मेजर एन्टोनियो रैग्हेलिनी (Major Antonio Reghelini) था, और वह इटैली देश के पडवा (Padua) स्थान का निवासी था ।

और वह बेगम के दरबार का अफसर था। ईश्वर के नाम पर उसने वह मन्दिर बड़ी शान शौकत से बनवाया था। इस प्रान्त में उस समय वह अनुपम और अद्भुत समझा जाता था। हिन्दुस्तानी शिल्पकला में जो बढ़िया से बढ़िया कारीगरी उसको सुन्दरता और उत्कृष्टता के निमित्त हो सकती थी, वह सभी दिल खोलकर धन खर्च करके उसने इसके लिये कराई थी।

बेगम को अपने महान् गिरजे का उचित धमण्ड था, जैसा कि उसने अपने पत्र में जो उसने तारीख १२ जनवरी सन् १८३४ को बड़े पादरी पोप ग्रेगोरी साहब के नाम लिखा था। और बातों का वर्णन करते हुए इसके सम्बन्ध में इन वाक्यों में संकेत किया है—“इसी अवसर पर मैं अपने गिरजे की पाँच छपी हुई तसवीरें श्री पूज्यवर के लिये भेजती हूँ जिसके विषय में मुझे यह कहने में गौरव है कि वह भारत में अति उत्कृष्ट और अद्वितीय बताया जाता है”। इस गिरजे पर, जो पुण्ययात्रा कुमारी मरियम अर्थात् ईसा की माता को अर्पण किया गया है, चार लाख रुपए व्यय हुए हैं। उन दिनों इतना धन बहुत समझा जाता था जबकि मजूरी और मसाला बहुत सस्ता था।

बाहर की ओर से यह गिरजा भारी घनाकार की सूरत का दिखाई देता है, पर भीतर से उसका रूप पूर्ण लातीनी सलीब (Latin Cross) के सदृश प्रतीत होता है। इस बाहरी और भीतरी शकल के अन्तर का कारण वह विशाल बरामदा

है जो गिरजे के गिर्द उसकी बगलों तक बना हुआ है जिससे उसकी सूरत एक घर्ग घन की हो गई है। इस बरामदे के लग जानेसे यह इमारत यूनानी बनावट के ढंग की सी दिख आई देती है। समस्त छत के बाहर की ओर जो कँगूरा अथवा कारनिस पर जो लोहे की छड़ों की आड़ चहुँ ओर लगी है, वह गिरजे की इमारत का मजबूत करती है।

मन्दिर के केन्द्र अथवा वेदी (Altar) के ऊपर एक मनोहर गुंबज बना हुआ है और इसी प्रकार के दो छोटे छोटे सुन्दर गुंबज बड़ी खूबसूरती से दोनों ओर बगली चैपिल (Chapells) अर्थात् उपासनालयों के ऊपर बने हैं। गिरजे के पूर्व का सिरा दो ऊँची ऊँची मीनारों पर पूर्ण होता है। इन मीनारों में से एक में घण्टा और दूसरी में सुरोली घंटियों का गुच्छा लगा हुआ है। घण्टे की कल (Clock Machinery) को बिगड़े हुए बहुत वर्ष बीत गए; यहाँ तक कि बाहर निकाल लिया गया और पुनः उसके स्थान में दूसरा घण्टा नहीं लगाया गया। यह घण्टा अति उत्तम था और बेगम ने स्वयं इसे मँगाया था।

तीनों गुंबजों और दोनों मीनारों के ऊपर धातु के गोले और सलीबें लगी हुई हैं जिन पर ऐसा मोटा और अच्छा सोने का मुलम्मा हो रहा है कि जिसको बने इतने वर्ष व्यतीत हो गए, तो भी जो बिलकुल नवीन और दमकती चमकती ऐसी लगती हैं मानो आज ही बनाकर चढ़ाई गई हों। गुंबजों की

चोटियों पर श्वेत संगमरमर की अठपहलू लालटेन है जिसमें बड़िया कटाव और जाली का काम है। तारीख ५ अप्रैल सन १६०५ को जो भूकम्प हुआ था, उससे पुरानी लालटेन टूटकर गिर गई और पुनः वह न ठीक हो सकी। पोछे से उसको जगह नई लालटेन, जो अब मौजूद है, लगाई गई।

गिरजे के बीच के द्वार पर पत्थर की एक पटिया पर लैटिन तथा फारसी में शिलालेख खुदे हुए हैं।

लैटिन लेख का निम्नलिखित सार है—

परम प्रसिद्ध सरधने की महारानी जोना ने अपने रूप से यह मन्दिर बनाया और प्रभु की माता कुँआरी मरियम के नाम और संरक्षण में रोमन कैथलिक धर्म की विधि के अनुसार सन १८८२ में समर्पित किया।

फारसी लेख की लिखावट यह है—

بامداد خدا و فضل مسیح بسال هیجده
صد و عشرين و اثنای بدل زیب الذی عمده
اراکین نبافرمود عالیشان کیسه—

* पादरी क्रिष्टोफर साहब ने उर्युक्त फारसी बाक्य अपनी पुस्तक में रोमन अक्षरों में प्रकाशित किया है। वही इस पोथी में उसके यथार्थ रूप फारसी अक्षरों में लिखा गया है। उक्त पादरी महोदय ने “बमाले-इ-हेनदह सद अशरीन व इसना” का अर्थ सन् १८२० लिखा है और लैटिन के और इसके बीच दो वर्ष का अंतर होने से उसके निवारणार्थ यह टिप्पणी लिखी है—

“लैटिन और फारसी लेखों के बीच में जो सन् का अन्तर है, उसका यह

अर्थात् ईश्वर की सहायता और मसीह के प्रसाद से सन् १८२२ ई० में प्रतिष्ठित उमराव (महारानी) जेब उलनिसा ने यह विशाल गिरजा बनवाया ।

गिरजे के भीतर दृष्टि डालने पर सदर सहनची और मन्दिर का फर्श संग मूसा और संगमरमर का बना दिखाई देता है । उसकी छत नीचे की ओर गुंबजनुमा है, जिसके गुंबज और महराबों पर पूर्वी ढंग का सुशोभित और विभूषित अस्तरकारी का काम है ।

वेदी (Altar) सम्पूर्ण श्वेत संगमरमर की है । यह पत्थर जयपुर से लाया गया है और इसका सुंदरतापूर्वक कटाव और सिंगार करके अक्रीक, सूर्यकांत आदि नाना भाँति की बहुमूल्य मणिओं से सजी हुई पच्चीकारी का जड़ाव हुआ है । यह काम अपने फूलदार नकशे में अधिकतर ताजमहल आगरे के अद्भुत पच्चीकारी के काम से मिलता जुलता है । वेदी की सीढ़ियों के ऊपर एक देवालय मुड़े हुए खंभों का बना हुआ है जो सब संगमरमर के हैं । इनके बीच में एक ताक है जिस पर बीबी मरियम की मूर्ति विराजमान है ।

कारण समझना चाहिए, कि फारसी लेख में गिरजे के बनने का सम्वत् लिखा हुआ है और लैटिन लेख में उसकी प्रतिष्ठा का वर्णन है ।”

परन्तु यह उनकी कल्पना बिल्कुल मिथ्या है; क्योंकि लैटिन और फारसी दोनों लेखों में सन् १८२२ ई० ही लिखा हुआ है । फारसी के जिन शब्दों का अर्थ भूल से स० १८२० किया गया है, उनका ठीक अर्थ १८२२ है; अर्थात् सन् निकालने में “इसना” शब्द जो दो का वाचक है वह उड़ा दिया गया है ।

दोनों ओर को दो और मूर्तियाँ हैं जिनके इर्द गिर्द बना-वटी फूलों को बड़ी बड़ी मालाएँ पड़ी हैं। यह पीछे से रखी हुई मालूम होती हैं।

बड़ा गुम्बज चार महाराबों के ऊपर ठहरा हुआ है। उसके अठ-पहलू बुर्ज में आठ खिड़कियाँ बनी हुई हैं जिनसे पूर्ण प्रकाश वेदी और स्वयं मंदिर में पड़ता है। गुम्बज की वेदी के चारों कोनों पर चार त्रिभुजाकार मूर्तियाँ चारों इंजील के प्रचारकों (Evangeliste) की बनी हुई हैं।

मुख्य मंदिर के तीन ओर सुंदर संगमरमर का कटरा है। दोनों बगलों के जो चैपिल अर्थात् पूजागृह हैं, उनके ऊपर सुशोभित गुंबज है। इनकी वेदी करारा (Carra) संगमरमर की बनी हुई है जिसको थोड़े दिन हुए, मृत आर्च बिशप जैन्टिली (Archbishop Mgr. Charles Gentili) इटली देश से लाए थे।

बाई सहनचो के द्वार से गिरजे के उस भाग को मार्ग गया है जहाँ बेगम और डायस सोम्बरे की कबरों पर विशाल रोज़ा (स्मारक) है। यह काम इटली देश के प्रसिद्ध संगतराश एडमो टाडोलिनी, बोलोन निवासी का है जो केनोवा (Canova) के मुख्य शिष्यों में से था।

आगरे में ताज की इमारत शानदार, बहुमूल्य और महत्व-शाली है। ऐसी ही भारी इमारत सिकंदरे में भी है। पर उनको देखकर आपके चित्त में कुछ उत्साह नहीं उत्पन्न होता;

क्योंकि वहाँ जो दिखाई देता है, वह केवल निर्जीव संगमरमर पत्थर है। पर सरधने के रोजे के संगमरमर को देखकर आप-को जीती जागती मूर्तियों के देखने की सी प्रसन्नता प्राप्त होगी। वह कोरा जड़ पत्थर ही नहीं है। वह कला और श्रद्धा की उत्कृष्ट वाणी है। वह संपूर्ण श्वेत सफेद करारा संगमरमर का है जिसमें ग्यारह मूर्तियाँ पूरे कद की खड़ी हुई हैं और तीन चौखटे लगे हुए हैं ॥ बेगम ज़र्क बर्क हिन्दुस्तानी

* इस स्मारक के विषय में पादरी कीगन साहब ने यह लिखा है—

एक सुशोभित स्मारक करारा संगमरमर का रोम नगर से बनवा कर बेगम की स्मृति में सन् १८४२ में खड़ा किया गया। तमाम तस्वीरें पूरे कद की हैं। हिन्दू और मुसलमान इस स्मारक के देखने को बड़ा संख्या में आते थे, अतः इस विचार से कि मुख्य मन्दिर का अपमान न हो, जहाँ होकर उन्हें आना पड़ता था, उस तरफ को नया द्वार खोल दिया गया जिससे स्मारक को जाने का सीधा मार्ग हो गया। इस स्मारक भवन में जो चौखटे ऊपर की ओर लगे हैं, उनके उन वाक्यों से जो लैटिन और अंग्रेजी भाषाओं में अंकित हैं, विदित होता है कि रचयिता स्वर्गवासिनी के गुण, सुलक्षण और योग्यताओं को पर्याप्त रूप से प्रकट करने में असमर्थ था। बेगम के स्मारक पर ये शब्द अंकित हैं—

हर हारनेस जोना जेब उन्निसा बेगम समरू की पवित्र स्मृति में जो अमार उल उमराव और साम्राज्य की प्यारी पुत्री थी, जिसने यह असार समार स्थायी लोक में गमनार्थ अपने महल सरधने में तारीख २७ जनवरी सन् १८३६ को त्याग किया। उसकी प्रजा हजारों की संख्या में, श्रद्धापूर्वक उसको याद करके रोती है। उसका वय ६० वर्ष का था। उसका शव इस गिरिजे के नांचे दफन है जिसे उसने आप बनवाया था। उसका प्रबल हृदय, उसके उत्कृष्ट गुण, बुद्धि, न्याय और दयालुता जिनके साथ अर्द्ध शताब्दि के समय से अधिक पर्यन्त

पोशाक पहने हुए राजकीय कुरसी पर विराजमान है। उसके दाहिने हाथ में बादशाह का लिपटा हुआ वह फरमान है जिसके द्वारा सरधने की जागीर उसको प्रदान की गई थी। दाईं ओर को मिस्टर डायस सोम्बरे शोकमय स्थिति में खड़ा हुआ है और बाएँ को उसकी रियासत का दीवान रायसिंह है। इनके जरा पीछे बिशप जूलियस सीज़र और उसके रिसाले का कमांडर और प्रथम एडिकौंग इनायत उल्लाह है।

जो तीन चौखटे हैं, उनके सामने की ओर से गिरजे का प्रतिष्ठा की घटना का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। बिशप पादरी अपने पद के नियत वस्त्र पहने हुए अपने आसन पर विराजमान हैं। बेगम जिसकी सेवा में उसके प्रधान यूरोपियन अफसर उपस्थित हैं, अपने कर कमलों में सुवर्ण थाल धारण किए हुए, जिसमें बढ़िया वसन उसके गिरजे के निमित्त रखे हुए हैं, आगे बढ़ती है और उन्हें बिशप को अर्पण करती है। चौखटा राजसिंहासन की दाईं ओर बेगम के दरबार करने, और बाईं ओर

शासन किया है, उस (डेविड औरटरलोनी डायस समूह) के लिये तो वह माता से भी बढकर थी, अतएव उसके मुँह उसकी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। परन्तु उसकी प्यारी स्मृति का धन्यवादपूर्वक सम्मानार्थ यह स्मारक उसने खड़ा किया है और वह अधीनतापूर्वक विश्वास करता है कि वह ऐसी जीवित ज्योति का मुकुट धारण करेगा जो न बुझेगी।

डेविड औरटरलोनी डायस समूह”

विजय की सवारी के जलूस का, जिसमें बेगम हाथी पर चढ़ रही है, दृश्य दिखाता है। इसके अतिरिक्त रोजे (स्मारक) के दाएँ बाएँ छः मानसिक वृत्तियों के चित्र लगे हुए हैं। दाईं ओर प्रथम चित्र पराक्रम और धैर्य का इस भाँति का है कि एक दृढ़ और अभय स्त्री पृथिवी पर पड़े और गड़-गड़ाते हुए सिंह की छातों पर पाँव जमाए हुए है। दूसरा चित्र चतुराई का है जिसे इस तरह दिखाया गया है कि एक नारी भारी भारी कपड़ों से ढकी हुई है और गहरे ध्यान में है और वह अपने सीधे हाथ में एक साँप पकड़े हुए है। तीसरी तस्वीर काल की है जो बेगम की ओर घण्टे का शीशा दिखा रहा है जिस पर रेत पड़ रही है और दाएँ हाथ से जीवन की मशाल बुझा रहा है। रोजे (स्मारक) की बाईं ओर प्रथम छवि माता और पुत्र के स्नेह की है जिसमें एक युवती अपनी छाती से एक दूध पीते हुए बालक को चिपटाए हुए है और इसके बदले में एक लड़का उसे सत्र अथवा प्रेम का फल दे रहा है। दूसरी बहुतायत की है। एक स्त्री प्रसन्न-मुख नाना प्रकार के फलों और अनाज की बालों से भरा हुआ नरसिंघा ले रही है और गुलदस्ता समर्पण कर रही है। तीसरा चित्र शोक का है। गिरजे के किनारे के चबूतरों पर विविध समाधि शिलाएँ लगी हैं, जिनसे पता लगता है कि यहाँ कई पादरी गाड़े गए हैं।

गिरजे के छोर पर जो अरगन बाजे (Organ loft) का घर है, वह समस्त नकशे इमारत के अनुसार नहीं है, क्योंकि

वह लकड़ी का बना हुआ है। प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता है कि यह पीछे से बना है, और शिल्पकार रैघैलिनी को तजवीज में शामिल न था। पुराना अरगन बाजा बड़ी उत्तम बनावट और अति मधुर सुरीले स्वर का है। परन्तु खेद है कि भारत के जलवायु ने उसका तहस नहस कर डाला। अब तो उसकी ऐसी अधोगति हो गई है कि उसे केवल कोई निपुण कारीगर ही ठीक कर सकता है।

अरगन घर से तुम गिरजे की चपटी छत पर चढ़ सकते हो। यह ही वह छत है जहाँ सन् १८५७ के विद्रोह में चैपलैन, मठ की अवधूतनियों और चेलों ने अपनी जान बचाने के लिये आश्रय लिया था। विद्रोहियों ने गिरजे पर धावा कर दिया, परन्तु उन्हें उसके सब द्वार भीतर से सुदृढ़ बन्द मिले। बागी उन्हें तोड़कर खोल लेते, परन्तु ऐसे नाजुक अवसर पर न जाने उन्हें क्या भय लगा कि वे डर के मारे भाग निकले। एक लिखावट से यह भी विदित होता है कि जिस समय ये विद्रोही गिरजे से अकस्मान् डरकर भागे थे, ठीक उसी समय चैपलैन ने सत्य हृदय से अपने को और अपने साथियों को श्री कल्याणकारी यूकरिस्ट जी (Eucharist) की शरण में सौंप दिया, जिन्हें वह अपने साथ ऊपर छत पर ले गया था। चाहे इसे करामात कहो अथवा केवल संयोग वश बताओ, परन्तु है यह घटना आश्चर्यजनक और समझ के बाहर कि बागी लोग ठीक उस वक्त जब कि उनको गिरजे के लूटने का

मौका मिला, डर से भाग गए ।

बेगम ने पादरी जूलियस सीजर को, जो उसका घरेलू चैपलैन था, पोप के पास अपनी सिफारिश भेजकर सरधने का बिशप पादरी नियुक्त करा दिया जिसका वर्णन पीछे हो चुका है। परन्तु यह सीजर ही सरधने का प्रथम और अंतिम बिशप हुआ; क्योंकि वह तो एक वर्ष पश्चात् सरधने से चला गया और पुनः यह स्थान आगरे के अधीन हो गया। उसका गमन, बेगम की मृत्यु और ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में सरधने का आ जाना, ये सब इस परिवर्तन के कारण हुए ।

गिरजे के पीछे के भाग में जो कमरे हैं, वे खानकाह (Convent) कहलाते हैं। वे पहले चैपलैन और बिशप जूलियस सीजर के निवासस्थान थे। जब पीछे से वे खानकाह और अनाथालय बना लिए गए, तो इनमें और गृह भी बनवाए गए जो भारतवासी अनाथ बालकों और बालिकाओं के, जिन्हें मिशन ने अपने आश्रय में ले रक्खा है, निद्रालय, कक्षालय अथवा विद्यालय और भोजनालय के काम में आते हैं। यह संस्था ईसा और मरियम की तपस्विनियों (Nuns of Jesus and Mary) के प्रबन्ध में है।

गिरजे के उत्तर को ओर के सिरे पर जो फाटक है, उसमें होकर खानकाह को प्रवेश करते हैं।

गिरजे के चौक के बड़े द्वार से बाहर निकलकर तुम्हें एक सड़क पार करनी पड़ती है और फिर दूसरा बड़ा फाटक

आता है। इसमें होकर सेन्ट जोन्स गृह (St. John's Quarters) को जाते हैं जो बेगम का पुराना महल था, और जिसको बैरन सैलेरोली (Baron Saloroli) ने, जो बेगम के दरबार में एक प्रभावशाली पुरुष था, मिशन को दे दिया था। बहुत दिनों तक इसमें अनाथालय और पाठशाला थी, और यह आरम्भ से ही सेन्ट जौन्स कालिज कहलाने लगा था। इस इमारत का वह भाग जो अब तक हिन्दु-स्तानी ढंग का बना हुआ है, बेगम का पुगनी महल था। आगे जो बरामदा और दूसरे मकान हैं, वे मिशन के बनवाए हुए हैं।

सेन्ट जौन्स के चौक से बाहर निकलकर एक सड़क मिलेगी जो दाईं ओर को मुड़ती है। अब तुम दो इमारतों के बीच में होकर गुज़रोगे। आधुनिक लाल ईंट की इमारत में बाएँ को सरधने का सरकारी मदरसा है और दाएँ को सरकारी शफाखाना है। अब हम बड़े फाटक के पास पहुँचते हैं, जो बड़ा प्राचीन प्रतीत होता है। इसके दाहिने ओर को पहरदार की कोठरी (Sentry Cabin) है।

यह बेगम के शाही महल का द्वार है। पहले हमें जो दृष्टिगोचर होता है, वह महल का पिछला भाग है। आगे बढ़कर हम सीधे शानदार जीने के सन्मुख आते हैं जो महल की बुलन्द गोल ड्योढ़ी के ऊपर जाता है। यह महल अब मिशन की सम्पत्ति है जिसमें एक मदरसा है,

जहाँ अंगरेजी और देशी भाषा की शिक्षा दी जाती है और लड़कों का एक अनाथालय है।

किसी किसी को यह भ्रम हो जाता है कि बेगम ही महल को मिशन के लिये छोड़ गई है। परन्तु असल बात यह है कि मिशन ने तो इसे पाई बाग समेत पीछे से, लेडी फौरेस्टर की मृत्यु हो जाने पर, नीलाम में पच्चीस हजार रुपए को सन् १८६७ ई० में मोल लिया था। अब इस महल में एक ईसाई स्कूल है। व्यवस्थापक की आज्ञा से तुम इसे देख सकते हो। बेगम का गुसलखाना सम्पूर्ण संगमरमर का बना है और उसमें बहुमूल्य पच्चीकारी का काम हो रहा है; इसलिये यह अति सुन्दर स्थान देखने योग्य है।

महल के चौक के बाहर बाग के बीच में एक छोटी सी कोठी है, जो रैघेलिनी के बँगले के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि उसमें मेजर ए० रैघेलिनी, जिसने बेगम का गिरजा और महल बनाया था, रहा करता था। अब यह मिशन की ओर से किराए पर उठा दी जाती है।

कसबे का वह भाग जिसमें बेगम के समय की ईसाई धर्म की यादगार इमारतें बनी हुई हैं, छावनी के नाम से विख्यात है। सम्भव है कि उसका यही नाम बेगम के समय में भी हो, जो अब तक ज्यों का त्यों चला आता है। छावनी के भीतर जो बेगम की यादगार ईसाई इमारतें हैं, उनकी रक्षा करने का भार गवर्नमेन्ट ने अपने ऊपर ले लिया है।

ईसाई कबरस्तान (Cathelic Cemenry) भी देखने योग्य है । इसमें बड़ी बड़ी कबरें हैं जिन पर उत्तम रौजे बने हुए हैं ।

इन कबरों के अतिरिक्त यात्रियों को और बहुत सी लिजावटें अंगरेजी में दृष्टिगोचर होंगी । ये इस विचार से बड़ी ही विचित्र और मनोरम हैं कि बेगम के दरबार में किस प्रकार अनेक जातियों के मनुष्यों का समावेश हुआ था, जिनमें अंगरेज, फरासीसी, इटली निवासी, पुतंगीज और यहाँ तक कि पोलैन्ड निवासी भी थे; क्योंकि मेजर क्वायने की (Major G. Koine) की कबर पर “पोलैन्ड निवासी” (Native of Poland) लिखा हुआ है ।

इस कबरस्तान में बराबर अब तक देशी ईसाइयों के मुरदे दफनाए जाते हैं । इन लोगों की संख्या सरधने के उपनिवेश में अब बहुत अधिक हो गई है ।

बेगम ने मकानात केवल अपनी राजधानी सरधने में ही नहीं बनावाए, किन्तु उसकी इमारतों का और स्थानों में भी पता चलता है । दिल्ली में भी उसने अपना महल बनवाया था जिसकी वर्तमान स्थिति एक उर्दू लेखक के इन वाक्यों में है—

“यह कोठी चाँदनी चौक के शुमाल में है, जो पहले “समरु की बेगम की कोठी” और “चूरीवालों की हवेली” कहलाती थी । यह एक कोठी निहायत दिलकुशा और फ़रहबख़श बड़ी आलीशान बहुत उमदा ऊँची कुर्सी देकर बनाई है, और उसमें

कुर्सी में कमरे और गोदाम और शागिर्द पेशे के लिये व्योतात बनवाए हैं । उस पर यह कोठी है । एक दर्जा इसका रश्कइरम है, जिसमें बड़े बड़े हाल और बरामदे हैं । अलावे खूबी इमारत के एक वसीअ और पुरफ़िजा बाग है जिसमें सर्व के दरख्तों की खुशनुमाई और नहर के जोर शोर से बहने का अजीब लुफ़ है । अब नहर तो नहीं रही, बाग़ अबबत्ता मौजूद है । इस कोठी में क़दीम से दिल्ली लन्दन बैंक है । इसी कोठी में एक मकान मुन्थल्लके में से बैंक के मैनेजर मिस्टर ब्रस्ज़ डाऊन की मेम साहिबा और लड़कियों ने तारीख ११ मई सन् १८५७ ई० को बागियों से सख़्त मुकाबिला किया, जिसमें सोरे का सारा खानदान मारा गया जो सबके सब कश्मीरी दरवाजे के पासवाले गिरजा में मदफून हैं ।” अब हाल में इसमें शिमला एलायन्स बैंक और पञ्जाब बैंकिंग कम्पनी भी शामिल हो गई हैं । सन् १८२२ में इस कोठी को दिल्ली के एक सज्जन ने मोल ले लिया था ।

बेगम ने एक बड़ी विशाल कोठी मेरठ में तामीर कराई थी । उसमें एक बड़ा बाग भी था जहाँ सरधेन के महल बनने से पूर्व वह बहुधा आकर रहा करता थी । यह कोठी “बेगम कोठी” के नाम से विख्यात है । यह एक मुसल्मान जमींदार की सम्पत्ति बन गई है और मेरठ कालिज के दक्षिण में स्थित है । अनेक पुलों और कई अन्य लोक-हितकार्यों के अतिरिक्त उसने एक गिरजा और प्रेसबिटेरी (Presbytery) मेरठ में छावनी के

अंगरेज सैनिकों के उपदेशार्थ तैयार कराई थी ।

भज्जभर में भी बेगम का राज्य था । वहाँ की गढ़ी के सम्बन्ध में एक उर्दू इतिहास में यह उल्लेख मिलता है—
 “भज्जभर में बतरफ़ गर्ब मुलहक-इ-शहर पनाह फी मावेन बेरी दर-वाजा और गढ़ी दरवाजा एक गढ़ी ख़ाम बतौर कचहरी वास्ते क़याम आमिल के बनाई । चुनांचि अब तक वह गढ़ी कायम है; और भड़ेचियों के वक्त में उस गढ़ी में मकान जनाना हैदर अली खाँ सरिश्तेदार रईस का था और अमलदारी सरकार में अवललन चन्द रोज़ कचहरी तहसील की वहाँ रही और अब कई साल से थाना पुलिस का उसमें मुक़ीम है ।”

ऐसे ही कस्बा टप्पल जिला अलीगढ़ में एक कच्चा मिट्टी का क़िला है जो बेगम समरू के किले के नाम से विख्यात है । अलीगढ़ से जो पक्की सड़क ख़ैर होती हुई आती है, वह टप्पल की बस्ती के पश्चिम में थोड़ी दूर चलकर समाप्त हो गई है । कस्बे की आबादी के सन्मुख इसी सड़क पर उत्तर में यह किला है, जिसका बड़ा द्वार पश्चिम की ओर है । इससे लगभग दस गज की दूरी पर सामने पक्का मैगजीन चूना व कलई की अस्तरकारी का बना हुआ है जिसके अंदर बेगम के शासन काल में गोले बारूद आदि विविध प्रकार की युद्ध की सामग्री रक्खी जाती थी; और अब इसमें चौकीदारों के बख़शी का दफ़्तर है । प्रसिद्ध उर्दू इतिहास “विकाये राज-पूताने” में लिखा है कि महाराज सूर्यमल के समय में भरतपुर

का राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था, जिसके अन्तर्गत जेवर और टप्पल के परगने भी थे। अतः आश्चर्य नहीं कि भुज्जर और भाड़से आदि अनेक परगनों में, जो महाराज सूर्यमल के पौत्र राव नवलसिंह ने समरू को प्रदान किए थे, जिनका वर्णन समरू के चरित्र में पीछे हो चुका है, कदाचित् जेवर और टप्पल भी सम्मिलित हों जो फिर पीछे समरू की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्त्री और उत्तराधिकारिणी जेबउलनिसा बेगम के अधिकार में उसकी अन्य सम्पत्ति के साथ आ गए। बहुत सम्भव है कि यह क़िला उस वक्त में भी मौजूद हो। परन्तु यह तो निश्चय ही है कि बेगम की ओर से जो शासक टप्पल में नियत था, वह इसी गढ़ में रहता था; और स्वयं बेगम भी समय समय पर दौरे में आकर यहाँ कुछ दिनों तक ठहरती थीं और उस कसबे तथा उसके संबंधी ग्रामों की स्थिति का निरीक्षण करती थी। इसी क़िले में वह अपना दरबार करके राज कर्मचारियों, प्रजा के मुख्यों और परगने के प्रतिष्ठित पुरुषों को एकत्र करती थी और उनसे विविध भाँति के प्रश्न पूछकर उचित प्रबंध करने की आज्ञा देती थी। अब से चालीस वर्ष के पूर्व बहुत से मनुष्य जीवित थे जिन्होंने बेगम को अपनी आँखों से देखा था और उसके दरबारों में सम्मिलित हुए थे। बेगम की मृत्यु होने पर जब उसका राज्य ईस्ट इन्डियन कम्पनी के अधिकार में आया, तब अँगरेजों की कस्बा टप्पल संबंधी सरकारी कचहरियाँ और

दफ्तर भी अर्थात् मुनसिफी, तहसील, थाना और डाक-खाना पुनः इस किले में स्थित हुए, जो पीछे से एक एक करके यहाँ से उठ गए। अब केवल थाना ही रह गया है। इस किले में मिट्टी की दीवारों के अतिरिक्त अब कोई पुरानी इमारत नहीं रही। वे भी जगह जगह से टूट फूट गई हैं। बाहरी भाग के फाटक के ऊपर के मकानों और उससे सटे हुए कच्चे ऊँचे गोल चबूतरे पर, जिसे “दमदमा” कहते हैं, चौकीदार और पुलिस कान्सटिबिल रहते हैं। इसके घेरे में एक बँगला बनाया गया है जिसमें दौरे के समय जिले के हुक्म आकर विश्राम करते हैं। मेजर आरचर साहब का कथन है कि बेगम के पास एक बाग भरतपुर के समीप था और उसमें उत्तम गृह बना हुआ था। एक सनद की प्रति से, जो इम्पीरियल रेकर्ड आफिस कलकत्ते में विद्यमान है, ज्ञात होता है कि बेगम के सौतेले पुत्र ज़फ़रयाब खाँ की १६०० बीघे बाग की भूमि दीग में भरतपुर के समीप थी जो उसके नाम बहाल हो गई। यही भूमि ज़फ़रयाब खाँ की मृत्यु के पश्चात् सन् १८०२ में बेगम के हाथ आई थी, जिसकी ओर आर्थर साहब ने संकेत किया है।

बेगम के उत्तराधिकारी डायस समरू ने अपनी पुस्तक “रिक्व्यूटेशन” में लिखा है—“आरा में बेगम के तीन बाड़े थे और बाजार भी इस जिले में था।”

किर्वा में, जो सर्घना से ३-४ मील है, बेगम ने एक उत्तम

कोठी बनवाई, जहाँ वह वायु-परिवर्तनार्थ जाती थी। वह फरवरी सन् १८२८ में बनी और सन् १८४८ में नष्ट हो गई। उसके निवासार्थ एक कोठी जलालपुर में भी थी जिसके खँडहर सन् १८७४ तक देखने में आते थे।

राज्य का विस्तार

वेगम समरू राज-रानी न थी। उसका पद सैनिक सेवा के उपलक्ष में दिल्ली की बादशाहत में एक जागीरदार का था; अर्थात् उसे कुछ परगने प्रदान किए गए थे जिनका राजस्व वह उगाहती थी और उसके बदले में उसे अपने पास एक वाहिनी रखनी पड़ती थी। यह सेना बादशाह की नौकरी के लिये, जब उसकी माँग होती थी, भेजनी पड़ती थी।

मिस्टर कींगन साहब ने वेगम के राज्य का विस्तार गङ्गा से लेकर यमुना पार तक और अलीगढ़ के समीप से मुजफ्फरनगर तक बतलाया है जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। वह भी लिखा जा चुका है कि सन् १७८८ में बादशाह शाह आलम ने उसे बादशाहपुर का इलाका भी प्रदान किया जिसको मिस्टर जार्ज थामस ने पीछे से लूटा। महाशय ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने हाल में कलकत्ते के प्रसिद्ध अँगरेजी मासिक पत्र “माडर्न रिव्यू” की सितम्बर सन् १९२५ की संख्या में जो अपना लेख छपवाया है, उसमें इस संबंध में अनेक प्रमाणों सहित अधिक प्रकाश डाला है। हम इस अध्याय में विशेष कर उन्हीं का अनुकरण करेंगे।

वेगम के अधीन सरधना, करनाल, बुढ़ाना, बरनावा, बड़ोत, कुताना, टप्पल और जेवर ये आठ परगने थे । कदाचित् यही वह आठ परगने थे जिनका संकेत वेगम के द्वितीय पति ए० लीवैसौल्ट ने अपने पत्र तारीख २ अप्रैल सन् १७६५ में किया था, जो कर्नल मैक्ग्वान के पास अनूपशहर को भेजा था । पर लाला चिरंजीलाल (नायब रजिस्ट्रार कानूगोतहसील बुढ़ाना जिला मुजफ्फरनगर) वेगम के पास नौ परगने बतलाते हैं, जिनमें से सात तो वही हैं जिनका ऊपर वर्णन हुआ है; पर उसमें करनाल का नाम नहीं है । उन्होंने बागपत जो जिला मेरठ में है और लँडोरा जो सहारनपुर जिले में है, ये दो परगने अधिक बतलाए हैं ।

वेगम का तालुका बहुत धनवान था और उसके भीतर बड़े उत्तम उत्तम कसबे थे; जैसे बड़ोत, दीनौल, बरनावा, सरधना और दनकौर; और उसके राज्य के समीप बड़ी बड़ी मंडियाँ जैसे मेरठ, शामली, काँधला, बाघपत, शाहदरा और दिल्ली की थीं ।

वेगम के पास यमुना पार की जागीर थी जिस पर उसका सत्त्व “अलतमग” अर्थात् शाही स्थायी देन का था । इस ओर

* जिला करनाल निवासी अलवर राज्य के पेनशन प्राप्त ओवरसियर बाबू मामराज सिंह से मुझे ज्ञात हुआ है कि वेगम समरू के पास परगना कैथल था, जो अब जिला करनाल में एक तहसील है, न कि स्वयं करनाल—लेखक ।

की उसकी सम्पत्ति में बादशाहपुर-भारसा का परगना था जिसमें लगभग ७० ग्राम थे । इसका फ़ासला दिल्ली से प्रायः १४ मील है । भुटगोंग के गाँव जो सोनीपत के परगने में था और मौजा भोगीपुरा, शाहगंज और एक बाग़, जो सुबह अकबराबाद (आगरे) में था, उन पर भी उसका अधिकार था । आगरे के क़िले से पश्चिम की ओर जो सड़क फ़तहपुर-सीकरी को जाती है, उसी सड़क पर कुछ आगे बढ़कर बेगम समरू का बाग़ था जिसके चारों ओर दीवार खिंची हुई थी; और वह सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय तक स्थित था ।

पहले कहा जा चुका है कि सन् १७७८ में नवाब नजफ़-खाँ ने समरू की मृत्यु के पश्चात् बेगम को केवल उसकी योग्यता और तत्परता देखकर ही उसके मृतक पति की सैनिक सेवा का भार सौंपा था । उसके पीछे मिरजा शफ़ी तथा अफ़रा-सियाब खाँ ने भी बेगम को उसके पद पर स्थित रक्खा । जब दिल्ली में महादजी सिंधिया का उंका बजने लगा, तब उन्होंने और अधिक भूमि यमुना के दक्षिण-पश्चिम में देकर उसकी जागीर में विशेष वृद्धि की । तदनन्तर जब दौलतराव सिंधिया फरवरी सन् १७९४ में महादजी के उत्तराधिकारी हुए, तब उन्होंने बेगम की जागीर और निजी सम्पत्ति पर उसका सत्त्व और पदवी बहाल रखी; और सिक्खों के आक्रमण रोकने और पश्चिमी सीमा की रक्षा करने का भार उसे सौंपा ।

वेगम की जागीर का विस्तार समय समय पर घटता बढ़ता रहा। एक बार महादजी सिंधिया की पुत्री बाला बाई ने मेरठ के जिले में कई एक गाँव ले लिए। परन्तु जब सन् १८०३ में अँगरेजों और सिंधिया के बीच शत्रुता हो गई, तब वे ग्राम छिन गए। उसके इन गाँवों में से कुछ गाँव कुछ काल के लिये फिर वेगम के अधिकार में आ गए। परन्तु यह दीर्घ समय तक उनका कर न प्राप्त कर सकी; क्योंकि तारीख ३० दिसम्बर सन् १८०३ को जब अंजंगवान की संधि हुई, तब उसकी ७ वीं धारा के अनुसार बालाबाई की जागीर उसे पुनः लौटा दी गई। अतएव रेज़ी-डेन्ट देहली के पत्र तारीख ११ मई सन् १८०४ की आज्ञा का पालन करके वेगम को भी उक्त ग्राम छोड़ने पड़े। पीछे अगस्त सन् १८३३ में जब बालाबाई की मृत्यु हो गई, तब वेगम ने तारीख ६ जनवरी सन् १८३४ को लार्ड विलियम बैंटिक गवर्नर जनरल को लिखा कि ये गाँव मुझे इस कारण लौटा दिए जायँ कि ये “पहले मेरे कब्जे में थे, और न्याय-पूर्वक उन पर केवल मेरा ही सत्त्व है”। परन्तु उसका दावा अस्वीकृत हुआ।

असाई के युद्ध में, जो सितम्बर १८०३ में हुआ था, वेगम ने अपने स्वामी सिंधिया को सहायता दी थी। उसके बदले में दौलतराव सिंधिया ने उसे परगना पहासऊ का जिसमें ५४ गाँव थे, और परगना गुरथल का अन्तरवेद में दिया। किन्तु

जेनरल पैरन ने पहासऊ का परगना तो वेगम को सौंप दिया, पर गुरथल का परगना न छोड़ा। इस लड़ाई का वर्णन पीछे “मराठों की सेवा” शीर्षक में हो चुका है।

सौभाग्य से वेगम की जागीर अन्तरवेद में सब से अधिक मूल्यवान् थी; क्योंकि नहर तथा यमुना, हिंदुन, कृष्णी और काली नदियों के पानी के बहुतायत के साथ प्राप्त होने का उसमें लाभ था। भूमि उत्तम और उपजाऊ थी। क्या अनाज, क्या रुई, क्या गन्ने और क्या तमाकू आदि समस्त प्रकार की जिन्स उसमें अधिकतापूर्वक उत्पन्न होती थी। किसान भी उसके राज्य में विशेष करके जाट थे, जो भारत भर में सब से श्रेष्ठ किसान होने और लगान चुकाने में प्रसिद्ध हैं।

अपने इस विशाल इलाके की व्यवस्था करने में वेगम इतनी तत्पर और दक्षचिन्त रहती थी कि उसके बड़े से बड़े कट्टर समालोचक को भी उसके प्रबंध की प्रशंसा करनी पड़ी है। मिस्टर कीनी ने इस विषय में लिखा है—“उसके परगनों की ऐसी दशा थी कि उनके उपयुक्त निरीक्षणार्थ उसे बहुत परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता था”।

पीछे “इमारत” शीर्षक में वेगम के महल का उल्लेख करते हुए यह प्रकट किया गया है कि उसके बड़े कमरे की दीवारों पर चित्र लगे हुए थे। वास्तव में वेगम का महल इन बढ़िया चित्रों के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। निस्सन्देह उनमें अधिकतर बड़े उत्तम और मनोरंजक चित्र थे। वे

चित्र बेगम के इष्टमित्रों और दरबारियों के थे । बड़े बड़े निपुण और विख्यात चित्रकारों ने उन्हें चित्रित किया था; जैसे जीवनराम, लखनऊ के मिस्टर बीची (Beecher), दिल्ली के मिस्टर मैल्विले (Melville) आदि । उन रोगनी चित्रों की संख्या लगभग २५ के थी ।

पादरी क्रिस्टोफर साहब का कथन है कि ये सब चित्र यूरोपियन चित्रकारों के बनाए हुए हैं । केवल वह चित्र जिसमें बेगम के बनाए हुए सरधने के प्रसिद्ध गिरजा की प्रतिष्ठा होने के समय की क्रियाओं के सुन्दर दृश्य खींचा है, कदाचित् चित्रकार जीवनराम का हो, जिसका नाम ऊपर आ चुका है ।

उक्त पादरी साहब का यह भी भ्रम है कि महल के नीलाम में बिकने से पहले ही डायस समरू की विधवा पुनर्विवाहित लेडी फौरेस्टर ने, जो बेगम की उत्तराधिकारिणी थी, अपना मनुष्य भेजकर सन् १८६६ में ये सब चित्र उतरवा लिए थे । अतः पादरी आर्च बिशप आगरा ने जब यह महल बाग समेत सन् १८६७ के आरम्भ में मोल लिया, तब उस वक्त उसमें ये चित्र नहीं थे । निस्सन्देह चित्र तो उस समय उस महल में नहीं थे; किन्तु लेडी फौरेस्टर भी कहाँ विद्यमान थी जो अपना आदमी भेजकर उन्हें उतरवाती ? क्योंकि वह तो इससे पूर्व सन् १८६३ में ही मर चुकी थी । इसलिये यह पता नहीं कि वे चित्र किसने उतरवाए । उनमें लेडी फौरेस्टर की

एक फौलादी तस्वीर भी थी, जो उसके चचा के पास भेज दी गई थी और शेष अथवा उनमें से अधिकांश चित्रों को सन् १८६५ में प्रांतीय गवर्नमेन्ट ने मोल ले लिया और अब वे गवर्नमेन्ट हाउस इलाहाबाद की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इन चित्रों के महत्त्व और सुन्दरता ने प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कीनी साहब को यहाँ तक मोहित किया कि उन्होंने उनका सविस्तर वृत्तान्त अपने एक निबन्ध में लिखकर उसे अँगरेजी के मासिक पत्र “कलकत्ता रिव्यू” में सन् १८८० में पृष्ठ ४६-६० में प्रकाशित कराया था।

इस स्थान पर यदि बेगम समरू के पुराने चित्रों का, जो जहाँ तहाँ देखने में आए हैं, उल्लेख कर दिया जाय, तो कदाचित् अनुचित न होगा।

(१) दिल्ली के लाला श्रीराम के संग्रह किए हुए चित्रों में एक पुराना चित्र है, जिसमें बेगम के मरदाना वस्त्र पहने, हुक्का हाथ में लिए और एक चोबदार के पास खड़े होने का दृश्य दिखाया गया है। इस चित्र को बाबू वजेन्द्रनाथ बनर्जी ने कलकत्ते के प्रसिद्ध अँगरेजी मासिक पत्र मार्डन रिव्यू की सितम्बर सन् १८२५ की संख्या में अपने लेख के साथ प्रकाशित कराया है। कदाचित् यह दिल्ली के लाला श्रीराम “खुम खानए जावेद” वाले हैं।

(२) बेगम की दो तस्वीरें दिल्ली के अजायबघर में भी विद्यमान हैं।

(३) बेगम का एक छोटा चित्र सिलीमेन साहिब की अँगरेजी पुस्तक “सिलीमेन्स रैम्बुल्ज़” के प्रथम भाग के सब से पहले संस्करण के मुखपृष्ठ पर भी प्रकाशित हुआ है ।

(४) हमारे मित्र हिंदी संसार के चिर-परिचित पण्डित नन्दकुमार देव जी शर्मा ने हमको सूचित किया है कि उन्होंने बेगम समरू का चित्र कीर्ती साहिब की अँगरेजी पुस्तक “इन्डिया अन्डर प्री लैन्स” में छपा देखा है ।

राजस्व

बेगम की मृत्यु होते ही उसकी जागीर की अवधि समाप्त हो गई और वह अँगरेजी राज्य में सम्मिलित हो गई । पश्चिमोत्तर प्रान्त के गुज़र के तीसरे भाग के ४३१ वें पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है—“समरू के तअल्लुके का वह अंश जो अवधि के गुजरने पर मेरठ के जिले में सम्मिलित हुआ, उसमें सरधना, बुढ़ाना, बड़ौत, कुताना और बरनावा के परगने तथा दो और गाँव थे । इन समस्त परगनों के कर का पड़ता बीस वर्ष अर्थात् सन् १८१४ से लेकर १८३४ तक ५,८६,६५०) था । इस काल में जो रुपया प्राप्त हुआ, उसका पड़ता ५,६७,२११) था; और शेष १८,४३८) नहीं मिला ।”

बेगम के उत्तराधिकारी डायस समरू ने अपने एक आवेदन पत्र में, जो गवर्नमेन्ट को भेजा गया था, लिखा था—“उत्तरी भारत में अंतर्वेद के अन्तर्गत जो भूमि थी, उससे प्रति वर्ष आठ लाख की आय होती थी । बेगम के द्वितीय पति

लीवैस्यू के पत्र में, जो इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित हुआ है, वेगम की जागीर के एक अंश की आय छः लाख रुपए लिखी है। अतएव अनुमान करना पड़ता है कि शेष परगनों का कर दो लाख रुपए था। इसी लिये सब को मिलाकर आठ लाख रुपए सालाना की आय प्रकट की गई है।

अंतर्वेद से बाहर के परगनों की आय का व्यौरा इस प्रकार है कि परगना बादशाहपुर भारसा से ८२०००) भुटगौंग ग्राम से २२०००) और अन्य मौजों भोगीपुर शाहगंज आदि से ८०००) थे। इनका जोड़ एक लाख बीस हजार रुपए सालाना होता है।

वेगम और अंगरेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी में परस्पर जो लिखा पढ़ी हुई थी, उससे यह अटकल लगाई जाती है कि वेगम की आय के और भी मार्ग थे; क्योंकि यह प्रतीत होता है कि वह उस माल पर राहदारी शुल्क लेती थी, जो उसकी भूमि में खुशकी और तरी से गुजरता था।

इसका निश्चय उस गोश्वारे से होता है जो श्रीमती के वकील मुहम्मद रहमत खाँ ने पाँच वर्ष (१२४२-१२४६ हिजरी, सन् १८२६-२७ से १८३०-३१ ई० तक) का बनाकर गवर्नमेंट को मई सन् १८३२ में भेजा था। यह शुद्ध बचत है; क्योंकि इसमें से वसूल करनेवाले कर्मचारियों का वेतन और पेनशन घटा दी गई है। उसके अंक निम्न लिखित हैं—

सन् १२४२-४६ हिजरी	कर भूमि	कर पानी
परगना जेवर	८७१६॥३)	१००६२॥)
„ टप्पल	६८३६॥३)।	६४६५३)
	१८५५६॥=)।	१६५२७॥३)

जेवर और टप्पल के परगनों की राहदारी के पानी के शुल्क का पड़ता ३,३०५॥)॥१ वार्षिक और पृथ्वी के कर का पड़ता ३७११।)। था।

जेवर, टप्पल और कुताने के परगनों से ही केवल नदी के घाटों पर कर एकत्र किया जाता था; क्योंकि बेगम के राज्य के किसी और परगने में नदी नहीं थी, जहाँ पर घाटों की उतराई का कर लिया जाता।

मिस्टर डब्ल्यू० फ्रेजर साहब एजेंट गवर्नर जनरल दिल्ली के पत्र तारीख ३१ अगस्त १८३२ से, जो उन्होंने गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी के नाम भेजा था, विदित होता है कि सितम्बर सन् १८३२ में बेगम ने यमुना के दोनों ओर के घाटों के महसूलों के बदले ४,४६६॥)॥ छमाही की किस्तों के द्वारा खजाने दिल्ली से लेना स्वीकृत किया था; अर्थात् ३६४४३)॥ जेवर और टप्पल के परगनों के घाटों के और ८२२॥)॥१ कुताने के घाटों के।

मेरठ युनिवर्सल मैगैजीन सन् १८३७, भाग ४, संख्या २७६ से यह ज्ञात होता है कि बेगम के खुशकी के सायर के महसूल

के सत्त्व में कभी हस्तक्षेप नहीं हुआ। उन दिनों में पक्की सड़कें तो बहुत ही कम थीं। केवल वह सड़क पक्की थी जो मेरठ से सरधने का जाती है और जिस पर व्यापारी बहुधा आते जाते थे। इसी सड़क पर माल लानेवालों पर वह कर लगाती थी। इसके अतिरिक्त उसको आय के और भी कुछ मार्ग थे। वह गाँवों में पैंडों पर, मेलों पर एवं तीर्थों के यात्रियों से भी कर उगाहती थी।

व्यय

सलीमेन साहब के मत के अनुसार “वेगम के सैनिक विभाग का व्यय लगभग चार लाख रुपए वार्षिक था; आर उसके देशीय विभाग के जो कार्यकर्ता थे, उन पर उसे अस्सी हजार रुपए खर्च करने पड़ते थे। लगभग इतना ही रुपया उसको अपने घरेलू सेवकों और अन्य खर्चों में उठाना पड़ता था। यह सब मिलाकर वार्षिक व्यय छः लाख रुपया बैठता था। सरधने और दूसरे परगनों का नियत राजस्व, जो सेना के व्ययार्थ उसे समय समय पर मिला करता था, कभी उससे, जो सेना के निर्वाह के लिये पर्याप्त था, अधिक नहीं प्राप्त हुआ।”

यह कथन सत्य प्रतीत होता है; क्योंकि इतने विशाल दल के रखने और दूसरे भारी भारी खर्चों का बोझ ऐसा था जिसके कारण कठिनता से आधा करोड़ रुपया भी उसने बचाया। और खर्च जाने दो, केवल अपने आश्रितों को

५६१०॥१)॥ मासिक तो उसे पेनशन का प्रति मास देना पड़ता था । जब से अँगरेजों के साथ उसकी संधि हुई, तब से उसने अवश्य अपने राज्य के अधिकार का भोग भोगा । किसी किसी का विचार है कि यदि वह चाहती तो इससे कहीं अधिक रुपया संचय कर लेती । परन्तु यह केवल कल्पना ही कल्पना है; क्योंकि अँगरेजों के साथ उसकी जो संधि हुई, उसके अनुसार वह अपना सैनिक व्यय नहीं घटा सकती थी । और तो और, उसे अपनी आधी सेना का आवश्यक व्यय भी संधिपत्र की शर्तों के अनुसार देना पड़ता था, जो व्यय सदैव कम्पनी की सेवा में रहती थी । इस सेना में तीन पल्टन और एक भाग (Park) तोपखाना था ।

देहली के बादशाह की जागीरदार होने के कारण वेगम के लिये आवश्यक था कि वह अपने बादशाह को कठिनाई के समय में सहायता देने के निमित्त अपने पास सेना रखे । उसकी सेना का एक भाग राजधानी सरधने में रहता था और दूसरा दिल्ली की शाही सेवा में । कवायद जाननेवाली सेना के अतिरिक्त वह रंगरूटों की सेना की भरती भी, जो उस वक्त “सेहबन्दी” कहलाती थी, आवश्यकता पड़ने पर कर लेती थी । सरधने की कोठी के समीप छोटे से दुर्ग में भरा पूरा शस्त्रालय (arsenal) और तोरों के बनाने का कारखाना था । उसकी सेना एक सुशिक्षित सेना थी जिसमें पैदल पल्टन, तोपखाना और रिसाले का दस्त था,

जो विविध जातियों के युरोपियनों के अधीन थे । जर्मन जनरल पाउली के वध के पश्चात्, जो सन् १७८२ में हुआ था, उसके सैनिक अफसर सिद्धों की चढ़ाईयों का दमन करने के निमित्त विशेष रूप से तत्पर हो गए थे । जनरल पाउली के पश्चात् उसकी सेना की कमान आयरलैंड निवासी जार्ज थामस, फ्रांसीस ली वेंसौल्ट, सेल्वोर और कर्नल पोइथौड ने क्रमशः संभाली । उसकी मृत्यु के समय सेना का कमान्डर जनरल रैगालिनी था; और उसके अतिरिक्त ग्यारह युरोपियन अफसर उसमें थे और जिनमें से एक प्रसिद्ध जार्ज थामस का पुत्र जान थामस भी था ।

वेगम स्वतः एक निडर, लड़ाकी और सेना की चतुर नेत्री थी । बहुत सी लड़ाईयों में वह आप सेना की संचालक बनी थी । कर्नल स्किनर साहब ने वेगम को अपनी आँखों से अपनी सेना को लड़ाते हुए देखा था जिसकी उन्होंने बहुत प्रशंसा की है ।

दक्षिणी लोग जिन्होंने वेगम की ख्याति सुन रखी थी उसे जादूगरनी समझते थे जो अपने शत्रुओं पर अपनी चादर डालकर उन्हें मार डालती थी ।

सन् १८२५ में अंगरेजों ने भरतपुर पर जो गोले बरसाए थे और वेगम ने भी वहाँ स्वयं युद्ध क्षेत्र में गमन करके अप

रण कौशल का जो परिचय दिया था, उसके संबंध में महाशय वजेन्द्रलाल बनर्जी ने प्रमाण देकर इस प्रकार लिखा है—
 “जब लार्ड कम्बरमियर (Lord Combermere) ने भरतपुर पर घेरा दिया, तब वेगम का सैनिक उत्साह नए सिरे से उभर आया। उसकी इच्छा युद्ध क्षेत्र में उतरने और विजय-प्राप्ति के गौरव में भाग लेने की हुई।” लार्ड कम्बरमियर के एडीकाँंग मेजर आर्थर (Major Arther) ने लिखा है—

“सन् १८२६ में जब सेना भरतपुर के आगे थी, तब कमान्डर इन-चीफ ने यह चाहा कि हमारे भारतीय मित्रों में से कोई सरदार, अपनी किसी वाहिनी के साथ जो भरतपुर के किले के घेरा देने में प्रवृत्त हो, न जाय। इस आज्ञा ने वेगम के गर्व को आघात पहुँचाया; क्योंकि मथुरा की सँभाल उसको साँपी गई थी। उसने इसका घोर प्रतिवाद किया। उसने कहा—यदि मैं भरतपुर न जाऊँगी, तो सारा हिन्दुस्तान कहेगा कि वेगम बुढ़ी क्या हुई, कादर बन गई।”

उसके सैनिक अफसरों की वर्दी के विषय में वेकन साहब का कथन है—

“वस्त्र भिन्न भिन्न भाँति के थे; एक दूसरे से नहीं मिलते थे। एक ही तरह के नमूने या रंग का विचार किए बिना प्रत्येक अपना मनमाना और अपनी रुचि का वस्त्र पहनता था। सेना पीले कपड़े के अँगरखे पहने हुए थी जिनकी एक सी काट छाँट थी। यद्यपि उनका रूप अधिकतर सैनिकों का सा न था,

परन्तु कहा जाता है कि वे अच्छे योद्धा हैं, वे वीर भी बड़े हैं और कड़ी भेलनेवाले भी हैं।”

बेगम की सेना की संख्या समय समय पर घटती बढ़ती रहती थी। इबारात नामा से पता चलता है कि सन् १७८७ में जब बेगम ने गुलाम कादिर को परास्त किया, उसकी सेना में “चार पल्टनें सिपाहियों की लड़ाई का काम सीखी हुई ८५ तोपों के सहित थीं।”

फ्रैंकलिन साहब जार्ज थामस के जीवन चरित्र में सन् १७६४ की घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय बेगम की फौज में चार पैदल पल्टनें, २० तोपें, और लगभग ४०० के घुड़सवार सेना थी जिन पर अनुभवी और मानी हुई योग्यताओं के अफसर कमान करते थे”। उन्हीं लेखक महाशय का दूसरे स्थान पर यह कथन है—“सन् १८०२ में मिस्टर थामस के वर्णन के आधार पर लगभग छः छः सौ सिपाहियों की ५ पल्टनों के ३००० सिपाही; २४ तोपें; १५० घुड़सवार थे। पीछे सन् १७६७-६८ में उनकी संख्या और बढ़ गई। मेजर फर्डिनेन्ड स्मिथ ने जो दौलतराव सिंधिया की फौज के साथ थे, लिखा है,—“बेगम की सेना में सितम्बर सन् १८०३ में ६ पल्टनें अथवा ४००० योद्धा, ४० तोपें और २०० घुड़सवार थे।”

बेगम की मृत्यु के थोड़े दिन पीछे मिस्टर आर० एन० सी० हैमिल्टन साहब मजिस्ट्रेट और कलकृष्ण मेरठ ने एक व्योरेवार चित्रा अपने अन्वेषण के आधार पर ऐसा तैयार

किया था जिससे वेगम की फौज की ठीक ठीक संख्या विदित हो। इस चिट्ठे में वेगम की सेना निम्नलिखित है—

हिन्दुस्तानी पैदल पल्टन	२६४६
बॉडी गार्ड के सिपाही	२६६
अशिक्षित घुड़सवार	२४५
तोपखाने का अमला	<u>१००७</u>
	कुल ४४६४

अंगरेजों से संधि के पश्चात् आधी सेना अर्थात् देशी सपाहियों की ३ पल्टनें और कुछ भाग तोपखाने का अंगरेजों की आवश्यकताओं के लिये अलग करके उनकी आज्ञा के अधीन रख दिया गया था।

मिस्टर गुथरी (G. D. Guthrie) कलकुर सहारनपुर ने सितम्बर सन् १८०५ में वेगम के दफादारों के मध्य जो अनुसन्धान किया, तो विदित हुआ कि एक पल्टन का वेतन सितम्बर सन् १८०३ में ६५६५) + ४२४६) का था, जब कि वह पल्टन दक्षिण में नौकरी पर थी। जो अफसर ३ या अधिक पल्टनों के ब्रिगेड की कमान पर था, उसकी और उसके स्टाफ (Staff) की रकमें ५४१) + ४०१) थीं। नौकरी पर बोली हुई सेना के बड़े जनरल और उसके स्टाफ की रकम ८६५) थी।

जब सरधना अंगरेजी शासन में आ गया तो वेगम की सेना में भी कमी हुई और व्यय बहुत ही कम रह गया।

बेगम की उन तीनों पलटनों का मासिक व्यय, जो नौकरी पर अंगरेजी इलाके में रहती थीं (११,७६३) था; और तापखाने के भाग का जो दिल्ली के उत्तर पच्छिम ८६ मील पर हासी में था १७० =)॥२ था ।

बेगम के सिपाही सुशिक्षित और योद्धा थे; अतएव अंगरेजी सरकार के उच्च अफसर चाहते थे कि उसकी मृत्यु के पीछे उन पलटनों के अतिरिक्त जो अंगरेजी इलाके में थीं, सरधने में रहनेवाली सेना के अंग भी अपनी सेना में रख लें । किन्तु बेगम के देहान्त के एक मास पश्चात् मेरठ के मजिस्ट्रेट ने कोई आदेश पहुँचने के पहले ही उनका वेतन उनको दे दिया और सेना तोड़ दी । उनमें से कुछ पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह के यहाँ चले गए ।

उत्तराधिकारी

बेगम समरू के जीवन के उत्तर समय का इतिहास उसके प्रिय सरधने के राज्य का इतिहास है; और वह इतिहास उसके उत्तराधिकारी के दुर्भाग्य की शोकमय घटना के साथ समाप्त होता है ।

यह बताया जा चुका है कि जनरल समरू के दो मुसलमान स्त्रियों से विवाह हुए थे । उसकी पहली स्त्री के एक पुत्र ज़फरयाब खाँ ने कप्तान लैफेवरे (Capt. Lefevre) की कन्या से विवाह किया था । उससे उसके यहाँ एक पुत्री

जूलिया ऐनी (Zulia Anne) तारीख १६ नवंबर सन् १७८६ की उत्पन्न हुई । जूलिया ऐनी का विवाह स्काटलैंड निवासी कर्नल जी० ए० डायस (Col. G. A. Dyce) से, जो बेगम की सेना में था, तारीख ८ अक्तूबर सन् १८०६ को हुआ । यद्यपि जूलिया ऐनी को बहुत से बालक उत्पन्न हुए, परन्तु एक पुत्र और दो पुत्रियों के अतिरिक्त और सब बचपन में ही मर गए । जो पुत्र ८ दिसंबर सन् १८०८ को पैदा हुआ, उसका नाम डेविड अकृरलोनी डायस (David Ochterlony Dyce) रक्खा गया । और कन्याएँ जिनका फरवरी सन् १८१२ और १८१५ में जन्म हुआ, ऐनी मेरी (Anne Mary) और जॉर्जियाना (Georgiana) कहलाई । कर्नल डायस की भार्या जूलिया ऐनी, जिसका दूसरा नाम बहू बेगम भी था, १३ जून सन् १८२० को दिल्ली में मरी । बेगम समरू ने उसके बालकों को अपने पास रक्खा और उनका अपने बच्चों का सा पालन पोषण किया । लड़कियाँ ऐनी और जौर्जियाना जब सयानी हुई, तब उनका विवाह ३ अगस्त सन् १८३१ को दो यांग्य यूरोपियनों से कर दिया जो उसकी सेवा में थे । एक कप्तान रोज ट्रोप (Capt. Rose Troup) था जो पहले बंगाल की सेना में रह चुका था और दूसरा पाल सॉलरोली (Paul Solaroli) था जो इटली देश का निवासी था और पीछे से मारक्विस् आफ बरिम्बोना की पदवी को प्राप्त हुआ । इन दोनों ने बहुत सा जहेज़ भी पाया था ।

कर्नल जी० ए० डायस के हाथ में कुछ समय तक वेगम के राज्य का शासन और सैनिक प्रबंध था और वह अपनी स्वामिनी का कृपापात्र बन गया था। यहाँ तक कि उस वक्त में वेगम की यह इच्छा हो गई थी कि इसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाऊँ। परन्तु वेगम की मृत्यु से बहुत पहले ही वह अपने उग्र स्वभाव और असह्य आचरण के कारण उसके मन से उतर गया था। अतएव सन् १८२७ में उसको विवश होकर इस्तेफा देना पड़ा। बेकन साहब लिखते हैं—“ब्रिटिश गवर्नमेंट से गुप्त लिखा पढ़ी करने का बहाना करके वह निकाल दिया गया।” उसके पुत्र डेविड और कूरलोनी डायस को उसके पद पर आरुढ़ किया गया। इस दुर्घटना से वेगम के साथ कर्नल का व्यवहार शत्रुवत् हो गया। वेगम तो वेगम, वह अपने पुत्र का भी बुरा चाहने लगा।

वेगम के तो बच्चे हुए ही नहीं, इसलिये ऐसा जान पड़ता था कि परमेश्वर की यह इच्छा थी कि वह एक माताहीन बालक की माता बन जाय। वह डेविड और कूरलोनी डायस को प्यार करती थी। वेगम को उसके पढ़ाने लिखाने की बहुत चिंता रहती थी। कुछ समय तक मिस्टर फिशर साहब, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मेरठ के पादरी थे और वेगम की कोठी के पड़ोस में रहते थे, युवा डेविड के शिक्षक रहे। बेकन साहब लिखते हैं—“डायस ने दिल्ली कॉलेज में शिक्षा पाई है तथा वह फारसी और अँगरेजी का उत्तम विद्वान

है। यद्यपि वह अभी नवयुवक है, तो भी कार्य-कुशल और नीतिज्ञ बताया जाता है; क्योंकि इसका परिचय उसके अगणित भिन्न भिन्न कार्यों के करने की शैली से मिलता है। उसका शरीर बड़ा मोटा और चौड़ा है। यद्यपि उसका रंग अति काला है, किन्तु उसका चेहरा बड़ा सुन्दर और मनोहर है जिससे कोमलता और चतुरता टपकती है। स्वभाव में दया है; और जो उसे जानते हैं, सामान्यतः उन्हें वह प्रिय लगता है।”

डेविड की योग्यताओं और गुणों ने उसे वेगम का उसके जीवन के उत्तर समय में अतीव प्यारा और दुलारा बना दिया, और वह अपनी विशाल संपत्ति का समस्त प्रबंध उसके हाथ में सौंपकर अत्यंत प्रसन्न हुई। इस कारण अनेक मनुष्य युवक डायस का सौभाग्य देखकर जलने भुनने लगे।

अपनी मृत्यु से थोड़े वर्ष पहले वेगम ने अपनी संपत्ति विभक्त करने की व्यवस्था की। उसका वसीयतनामा ७ तारीख १६ दिसंबर सन् १८३१ को लिखा गया था जिसके अनुसार डेविड आकूरलोनी डायस और बंगाल के तोपखाने के कर्नल क्लेमेंस ब्रौन (Colonel Clemence Brown) उसके बली (रक्षक) नियुक्त हुए। वसीयतनामा अंगरेजी भाषा में

* इस पूर्ण वसीयतनामे की प्रति पंजाब सिविल सेक्रेट्रियेट के लेख भंडार (Records of the Punjab Civil Secretariat) में है। मूल अंगरेजी वसीयतनामे के साथ साथ चार इक्करारनामे अंगरेजी में लिखे हुए नष्ट थे जिनमें ३,५७,००० सिक्का कलदारी फर्मावाबादी के विभाग का ध्योरा था।

तैयार हुआ था; अतएव बेगम ने उसे पर्याप्त नहीं समझा। उसने तारीख १७ दिसंबर सन् १८३४ को मजिस्ट्रेट मेरठ, मुख्य मुख्य सेनिक अफसरों और वहाँ के युरोपियन निवासियों को अपने महल सन्धने में अपने बखशिशनामे (दानपत्र) की तस्दीक करने के हेतु, जो फारसी भाषा में उसने प्रस्तुत किया था, बुलाया। फारसी में यह बखशिश नामा इसलिये तैयार हुआ कि वह आप उसे समझती थी। और उन सब की उपस्थिति में बेगम ने अपनी सर्व प्रकार की निजी संपत्ति अपने दत्तक पुत्र डेविड को सौंप दी और आप उससे ला दावा (सत्वहीन) हुई। उसी दिन से डेविड डायस समरू कुल में प्रविष्ट हुआ और उसका नाम डेविड ऑक्टरलोनी डायस समरू हो गया।

अधिकतर डायस समरू को ही बेगम की सम्पत्ति तर्क में मिली। दो लाख रुपए की पूँजी तो उसने नक़्द पाई। परन्तु

॥ डायस समरू के अतिरिक्त बेगम ने और ३,५७,०००) इस प्रकार अपने तर्क में दिए—(अ) ७०,०००) कर्नल लेमेन्स ब्राउन को उसका बर्तों की सेवा के निमित्त; (इ) १,५७,०००) अपने प्रिय मित्रों, अनुचरों और संबंधियों को जिनके नाम ये हैं—

जॉर्ज थॉमस के पुत्र जॉन थॉमस को जिसको बेगम अपना पुत्र समझती थी, १८०००); उसकी स्त्री जोना को ७००००); उसकी माता मेरिया थॉमस को ७००००); कप्तान एनथिनी रेवलिनी को १००००); उसकी स्त्री विक्टोरिया को ११,०००); उसके पाँच पुत्रों को ५००००); तथा कमान्डेन्ट अबुल हमीर बेग को २००००); और (उ) पचास हजार तथा अस्सी हजार रुपए डायस समरू को दो बहिनों एंनो मेरी

इसके संबंध में यह शर्त हो गई कि वह उसे तीस वर्ष की आयु होने पर मिले और उस समय वह उसका केवल व्याज ही लेता रहे। कर्नल ब्राउन साहब का, जो दूसरे संग्रहक नियत हुए, आदेश हुआ कि वह इस रूप को कहीं व्याज पर लगा दे। तारीख १२ मार्च सन् १८३६ के मेरठ के मजिस्ट्रेट के पत्र से विदित होता है कि श्रीमती बेगम ने अपने पीछे ४७,८८,६००) सिक्का सरकारी गवर्नमेंट की रक्षा में छोड़ा जो डायस समरू ने ही लिया होगा। इसके अतिरिक्त बेगम के समस्त आभूषण, रत्न, गृहस्थी के पदार्थ, पोशाक यहाँ तक कि हाथी, घोड़े और अनेक प्रकार का माल असबाब, भूमि, इमारत और बेगम की पैतृक संपत्ति सहित जो आगरा, दिल्ली, भरतपुर, मेरठ, सरधना और अन्य स्थानों में थी, उसके अधिकार में आई। केवल जिस सम्पत्ति से वह वंचित रहा, वह परगना बादशाहपुर-भारसा था जो यमुना के पश्चिम में था और मौज़ा भोगीपुरा-शाहगंज था जो सूबा और जौजिधाना के लिये व्याज पर जमा किए। किन्तु (१) और (३) का जो १,५७,०००) नहीं होता, वरन् १,८६,०००) अर्थात् ३२०००) अधिक होता है। (५) अपने समस्त सेवकों को भी, चाहे वे सरकारी हों अथवा घरेलू हों परन्तु जो उसकी मृत्यु के समय उपस्थित थे, उनके शेष वेतन के अतिरिक्त पारितोषिक दिया। (डायम समरू ने अपनी दोनों बहनों को अपने इंग्लैण्ड जाने में पूर्व दो दो लाख रुपए देकर छुड़ी पाई।) बेकन साहब यह भी लिखते हैं कि बेगम ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने चिकित्सक डाक्टर थॉमस डेवर (Thomas Dever) को भी २०,०००) देने की आज्ञा दी थी।

अकबराबाद (आगरा) में था । इनको तथा सैनिक सामग्री ✽ को बेगम की मृत्यु होने पर, जब कि जागीर की अवधि गुजर गई, कंपनी ने जब्त कर लिया । डायस समरू कदापि इससे प्रसन्न नहीं हुआ, किन्तु उसने इनकी प्राप्ति के निमित्त कोई मुकदमा दापर नहीं किया । उसने इसके विषय में अवश्य आरति की, युक्तियाँ और आवेदनपत्र उपस्थित किए और यह प्रकट किया कि मेरे साथ अन्याय का व्यवहार किया गया है । परन्तु जब उसके प्रयत्न उसके स्वस्वों को प्रमाणित करने में विफल हुए, तब उसने निराश होकर अपने स्वत्व एक पत्र द्वारा श्रीमती महारानी विक्टोरिया पर प्रकट किए । †

* डायस समरू ने सैनिक सामग्री, शस्त्र, सिपाहियों की वर्दी, चमड़े की वस्तुओं, तोपों दूसरे सैनिक पदार्थों, बारूद, गोलियों और गोलों, और भेगजान का मूल्य ४,६२,०६२) कूता था । उसने सरकारी इमारतों, किले, दफ्तर आदि के हेतु कुछ माँग नहीं की ।

† किन्तु श्रीमती डायस समरू जो पोंछे से लेडी फॉरेस्टर बना, अपने दुःखों को दूर कराने के उपाय करने में अपने पति से भी बढ़ चढ़कर निकली । उसने कंपनी के विरुद्ध परगना बादशाहपुर-भारसा का इलाके पाने के लिये, जिससे ८२,०००) की वार्षिक आय थी, कानूनी चाराजोई करने में बहुत रूप धारण किया । मुकदमा अंत में निर्णयार्थ प्रीवी कौन्सिल के समक्ष पेश हुआ । अपीलाइट का दावा और बातों के अतिरिक्त यह था कि परगना मुतनाजे “अरनतमग” अर्थात् स्थायी देन का था; अतएव ऐसी स्थिति में बेगम की जागीर का भाग नहीं समझा जा सकता । बेगम और कंपनी के मध्य सन् १८०५ में जो सन्धि हुई, उसके अनुसार वे स्थान जो दुआब के अन्तर्गत थे, उसकी मृत्यु के पश्चात् वे ही कंपनी के भोग्य थे । किन्तु बादशाहपुर-भारसा दुआब के बाहर है; अतएव कंपनी का उसको हटाना

तीस वर्ष की अवस्था होने पर डायस समूह एक बड़ा सम्पत्ति और धन का स्वतंत्र स्वामी हो गया। न उसके ऊपर कोई कानूनी दबाव रहा और न उसे ठीक मार्ग पर चलाने को सच्चा सहायक रहा। उसको तोत्र उत्कंठा हुई कि पश्चिमी देशों में भ्रमण करे और उन आश्चर्यमय बातों को अपनी आँखों से देखे जिनके विषय में उसने बहुत कुछ सुना था।

बेगम के दो पुराने मित्रों ने युवा उत्तराधिकारी को ऐसी सम्मतियाँ दीं जो एक दूसरे के विरुद्ध थीं। लार्ड कम्बर-मियर ने युगोप देखने के लिये उसे दबाया। उधर कर्नल

या लेना लेशमात्र न्याय-संगत नहीं है। रिस्पॉन्डेंट का आग्रह था कि उस सीध के अनुसार जो तारीख ३० दिसम्बर सन् १८०३ को हुई, दुआब और यमुना के पश्चिम की भूमि का आविपत्य दौलतराव सिंधिया से निकलकर ईस्ट इण्डिया कंपनी को मिला और बेगम उस पर अपने जीवन पर्यंत अपनी दुआब की जागीर के साथ केवल अधिकृत रही। अपने दावे को सिद्ध करने के अभिप्राय से अपोलाग्ट ने वः असली सनद, जो दिल्ली के बादशाह ने बेगम के सौतेले पुत्र जफरयाव खाँ के नाम प्रदान की थी जिसके नाम पहले यह परगना स्थिर था, नहीं पेश की; किन्तु उन्होंने तो एक बनावटी सनद की प्रतिलिपि जिस पर महाद जी सिंधिया की मोहर है जो पूर्व वर्ष के आदि में ही मर चुका था, पेश की है। प्रिवी कौन्सिल जुडीशल कमेटी ने दावे और रद्द दावे पर पूर्ण रूप से विचार करके तारीख ११ मई सन् १८७२ को इस मुकदमे में कंपनी के हक में फैसला दिया। किन्तु यह प्रमाणित हो गया कि सैनिक सामग्री, जिसको कंपनी ने जन्त कर लिया था, वास्तव में बेगम ने अपने दामों से मोल ला था और डायस समूह को खो को उसका मूल्य ब्याज सहित मिलना चाहिये था। जिन्हें इस संबंध में अधिक जानना हो, उन्हें प्रिवी कौन्सिल का फैसला पढ़ना उचित है, जिसमें इस मुकदमे का पूर्ण इतिहास दिया गया है।

एल० बी० स्किकर साहब ने उसे एक फारसी शेर लिखकर ऐसा करने से बहुत कुछ रोका । फील्ड मार्शल की सम्मति से कर्नल का परामर्श अति श्रेष्ठ था; तो भी उसने युरोप जाने की ही ठानी ।

यह सत्य है कि डायस समरू ने भारत में जन्म लिया और यहीं उसका पालन पोषण होकर वह बड़ा हुआ । परन्तु उसका बाप स्कॉटलैंड निवासी था; अतएव यह उसके लिये स्वाभाविक ही था कि वह अपने पूर्वजों का देश देखे ।

इंग्लैंड जाने की इच्छा से वह सन् १८३७ में कलकत्ते आया; किंतु उसका प्रयाण एक वर्ष के लिये और स्थगित हो गया; क्योंकि उसके पिता कर्नल डायस ने सुप्रीम कोर्ट कलकत्ता में उसके विरुद्ध वेगम के वली की हैसियत से नालिश दायर कर दी और उसकी संपत्ति से चौदह लाख रुपए पाने का दावा पेश किया । उसका पुत्र डायस समरू अपनी पुस्तक में लिखता है कि कर्नल का दावा अपनी नौ वर्ष की बकाया तनख्वाह पाने के विषय में था । मुकदमे में राजीनामा हो गया; और थोड़े दिन पीछे डायस समरू अपने बहनोई पाल सौलारोली को अपने इलाके और संपत्ति का प्रबन्ध सौंपकर इंग्लिस्तान के लिये जहाज़ में सवार हो गया । इस प्रकार पिता और पुत्र एक दूसरे से जुदा हुए और फिर इस पृथ्वी पर कभी न मिले । कर्नल डायस कलकत्ते में अप्रैल १८३८ में मरे और फोर्ट विलियम में दफन हुए ।

डायस समरू जून सन् १८३८ में इंग्लैंड पहुँचा और अगले वर्ष रोम गया जहाँ बेगम की मृत्यु की तीसरी वर्षी मनाई ।

डायस समरू की इंग्लैंड में अच्छी प्रसिद्धि हुई । अगस्त सन् १८३६ के आदि में वह मेरी एनी डर्विस (Mary Anne Dervis) से जो एडवर्ड डर्विस, द्वितीय विस्काउन्ट सेन्ट-विसेन्ट की इकलौती पुत्री थी, परिचित हो गया और २६ सितम्बर सन् १८४० को दोनों का विवाह हो गया । दुल्हन का वय लगभग २८ वर्ष के होगा । अगले वर्ष सडब्यूरी (Sudbury) की ओर से वह पार्लियामेन्ट का मेम्बर नियत हुआ ।

किन्तु खेद है कि यह विवाह उसको शान्ति और सुख पहुँचाने के बदले उलटा मिलकुल उसके दुःख और नाश का कारण हुआ । थोड़े समय पीछे दंपति के बीच अतीव वैर भाव उत्पन्न हुआ : यहाँ तक कि डायस समरू ने अपनी भार्या को स्पष्ट रूप से ऐसे दुष्कर्म से कलङ्कित किया जो एक साध्वी पत्नी के लिये दूषित हो गिना जाता है । उसे अपनी स्त्री की भक्ति और प्रेम में संदेह पैदा हो गया । श्रीमती समरू भी अपने पति की संगति से खिन्न हो गई जिसके कार्य उसे अप्रिय प्रतीत होते थे । अतएव उसने अपने पति को पागल ठहराने के लिये जो जान से प्रयत्न करना आरंभ किया । उसके पति के दोनों बहनोई कप्तान रोज़ट्रोप और पाल सालारोली ने, जो उससे ईर्ष्या रखते थे, उस दुष्टा

॥ उन्होंने बहुत ही श्रीमती डायस समरू से कहा कि बादशाहपुर का परगना जो

को सहायता दी और अंत में इनके मन का चाहा हो गया । गरीब डायस समरू पागल ठहराया दिया गया ।

जब श्रीमती डायस समरू अपने पति को पागल ठहराने के उपाय में सफल हुई, तो ताजे घाव पर नमक छिड़कने की लोकोक्ति को चरितार्थ करने के लिये आप उसके स्वास्थ्य के हेतु चिंता करने लगी और एक चलता पुर्जा डाक्टर बुलाया । एक दिन प्रातःकाल जब डायस सोकर उठा, तो क्या देखता है कि मैं बन्दी बन गया हूँ और तीन रखवाले द्वार पर मेरी सँभाल के निमित्त नियत हो गए हैं । पहले १६ सप्ताह तक वह निरन्तर घर में बन्द रहा । तब कहीं जाकर तारीख ३१ जुलाई सन् १८४३ को एक कमीशन उसके गृह पर उसकी मानसिक स्थिति का अनुसंधान करने के हेतु गया, जिस ने यह निश्चय किया कि इसका दिमाग ठीक नहीं है; अतएव यह अपने कार्यों की व्यवस्था का भार उठाने के लिये नितान्त असमर्थ है । परन्तु यह डायस समरू का सौभाग्य समझो कि जो वह पागल होने के निश्चय के प्रभाव से बच गया । कमीशन ने उसे अपराधी क्या बताया कि उसके स्वास्थ्य ने भी जवाब देना आरम्भ किया और वह एक डाक्टर के निरोक्षण में जल वायु

बहुमूल्य है, उसमें हमारे पत्नी भी मानती थी और डायस समरू ने अनोक्ति करके उनके स्वत्व की साक्षी अर्थात् वह मूल पत्र जिससे वह प्रदान हुआ था, उनको वंचित करने के अभिप्राय से नष्ट कर दिया, जिससे आपही समस्त सम्पत्ति का स्वामी बन जाय ।

बदलने के बहाने वहाँ से ब्रिस्टल (Bristol) भेजा गया और ब्रिस्टल से लिवरपूल (Liverpool) ले जाया गया। लिवरपूल में उसे भागने का अवसर प्राप्त हो गया और वह तारीख २१ सितम्बर सन् १८४३ के प्रातःकाल चलकर अगली संध्या को पैरिस में पहुँचा। परन्तु न उसके पास उस समय कुछ रुपया था और न कोई और वस्तु थी। जो कुछ था, वही था जो उसके शरीर पर था। उसके पास एक सूँ (Sh) तक न था। कुछ सप्ताह तक वैसे ही रहा। जिस जान पहचानवाले से जो कुछ उधार उसे मिल गया, उसी पर उसने गुजारा किया। शीघ्र ही एक कमेटी उसकी सम्पत्ति के प्रबंध के हेतु बनाई गई जिसने दो लाख वार्षिक आय प्राप्त करानेवाली जायदाद के स्वामी के लिये सूक्ष्म वृत्ति नियत की और उसकी भार्या को उसके तालुके से ४०,०००) रुपए वार्षिक भोग विलास में उड़ाने के लिये दिए।

संसार के समस्त अपना सचेतपन सिद्ध करने और जो अभियोग उस पर आरोपण किए गए, उन्हें मिथ्या ठहराने के लिये डायस समूह ने पैरिस, सैन्ट पीटर्सबर्ग और ब्रूजलज के ही नहीं वरन् इंग्लैंड के भी अतीव निपुण और कुशल चोटी के वित्त्सकों से अपनी जाँच कराई; और उन सब ने सहमत होकर उसके सचेत तथा अपने कार्यों का प्रबंध आप

कर सकने के योग्य होने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया। इन मेडिकल परामर्शों से प्रबलता-पूर्वक पूर्ण करके डायस समरू ने अपना आवेदनपत्र कोर्ट ऑफ चैन्सरी (Court of Chancery) अर्थात् उस समय के इंगलिस्तान के सर्वोपरि उच्च न्यायलय में इस हेतु से भेजा कि वह आज्ञा जो उसके संबंध में दी गई, समस्त रूप से रद्द करने का आदेश प्रदान किया जाय। परंतु चैन्सरी के डाकूरी ने जो विविध अवसरों पर उसकी डाकूरी परीक्षा की, उसमें वह उत्तीर्ण न हो सका। डायस समरू को प्रतीत हो गया कि इन लोगों से न्याय की आशा करना व्यर्थ है।

इस प्रकार हताश होकर उसको एक भिन्न मार्ग के अनुकरण करने की सूझी। उसने पैरिस नगर में अगस्त सन १८४८ में ५८२ पृष्ठों की एक मोटी पुस्तक “चैन्सरी की कचहरी में पागलपन का जो अभियोग लगाया है, उसका मिस्टर डायस समरू की ओर से प्रतिवाद” नामक प्रकाशित की। पुस्तक का यह उद्देश्य था कि उसके दुःखदायी मुकदमे के विषय में सर्वसाधारण अपना मत आप स्थिर करें।

यंत्रणाओं और निराशाओं के बोझ से दबकर डायस समरू दिन दिन घुलने लगा। यहाँ तक कि अंत में उसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया। सन् १८५० में वह लंदन चला आया जहाँ तारीख १ जुलाई सन् १८५१ को असहाय और अकेला सैन्टजेम्स स्ट्रीट के फैन्टन के होटल में मर गया।

१६ वर्ष बाद उसका मृत शरीर अगस्त सन् १८६७ में सरधने लाया गया और उसकी संरक्षिका बेगम की समाधि के समीप नीचे की ओर पृथक् क़बर में दफन हुआ।

डायस समरू की इच्छा यह थी कि उसकी धृष्टि लखी उसके धन में से कुछ न पावे। उसने अपना एक वसीयत-नामा लिखा था जिसमें यह आज्ञा थी कि मेरी समस्त संपत्ति मिश्रित जातियों के पिता माताओं से उत्पन्न हुए अर्थात् युरेशियन अथवा दोगले लड़कों के हेतु सरधने में एक स्कूल स्थापित करने में लगाई जाय। वहाँ जो महल है, उसकी इमारत से इसका श्री गणेश किया जाय। उसने अपनी इस वसीयत को सफल करने के निश्चय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टरी के सभापति और उप सभापति को उस स्कूल का संरक्षक नियत किया और १०,००० पाँड दोनों का तरके में दिए जाने के लिये रखे। इस पर भी उसका अर्थ सफल न हुआ। यद्यपि ये महानुभाव महारानी की कौन्सिल तक लड़े, किन्तु डायस समरू का वसीयत नामा इस कारण प्रत्येक न्यायलय से रद्द हो गया कि वह एक पागल का लिखा था और कानून के अनुसार उसकी सब संपत्ति की स्वामिनी अकेली उसकी विधवा समझी गई।

डायस समरू की विधवा मेरी एनी ने तारीख ८ नवम्बर सन् १८६२ को जार्ज सैसिल वेल्ड, तीसरे बरन फॉरेस्टर (George Cecil Weld, 3rd Baron Forester)

को अपना द्वितीय पति बनाया और तब लेडी फौरेस्टर के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसका पति तारीख १४ फरवरी सन् १८८६ को मृत्यु को प्राप्त हुआ; और सात वर्ष के पश्चात् अस्सी वर्ष की अवस्था में तारीख ७ मार्च सन् १८९३ को वह आप भी मर गई। उसके पीछे उसकी कोई संतान नहीं रही। जब तक वह जीवित रही, उसने सरधने के महल को उत्तम स्थिति में रक्खा; और फौरेस्टर हास्पिटल तथा डिस्पेन्सरी की वेगम के धन से सरधने में सैन्ट जॉन्स कालिज के आगे स्थापना की जिससे सरधने और आसपास की जनता को लाभ पहुँचे ॐ ।

यह पाँछे वर्णन हो चुका है कि वेगम ने ५०,०००) रुपए डायस समरु की बहन एनी मेरी के निमित्त अपनी वसोयत में व्याज पर रक्खे थे, और यह करार दिया था कि यदि एनी और उसका पति कर्नल ट्रोप निःसंतान मर जाय, तो उसके व्याज की आय पुण्यार्थ लगा दी जाय। संतानहीन कर्नल ट्रोप ५ जुलाई १८६२ को मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसके ५ वर्ष पीछे १८ मार्च सन् १८६७ को उसकी स्त्री भी पतिलोक में उसके पास चली गई। इस पर लेडी फौरेस्टर ने धरोहर की पूँजी अर्थात् ५०,०००) रुपए से हास्पिटल और डिस्पेन्सरी के लिये नवीन ट्रस्ट (Trust) १५ अप्रैल सन् १८७६ को बनाया, जो सन् १८८० तक बनकर तैयार हो गए। उसने इस शुभ कार्य के लिये १७२५ वर्ग गज माफ़ी भूमि दी, जिस पर एक गृह पहले से ही बना हुआ था, ताकि राफाखाने का कार्य प्रचलित हो जाय। यह रुपये इन दिनों इन्हाबाद के खैराती कामों के महकमे के हाथों में है।

जॉर्ज थॉमस

वेगम समूह के अफसरों में जॉर्ज थॉमस एक ऐसा प्रसिद्ध असाधारण योग्य वीर पुरुष हुआ है जिसका नाम और काम उस समय के इतिहास में अंकित हो गया है। ईसवी सत्रहवीं और अठारवीं शताब्दी में भारतवर्ष में आकर अनेक युरोपियनों ने अधिक गुण प्रकट किए हैं और इस देश के इतिहास में वे अपना नाम छोड़ गए हैं। जॉर्ज थॉमस भी उनमें से एक था। वेगम के चरित्र में थॉमस का वर्णन विशेष कर कई कारणों से आया है; और उससे इसका इतना घनिष्ठ और अनिवार्य सम्बन्ध हो गया है कि वेगम के अंगरेजी चरित्र-लेखक पादरी की गन साहब ने थॉमस का वृत्तांत अपनी पुस्तक में वेगम के चरित्र के अतिरिक्त पृथक् भी लिखा है। अतएव इस पोथी में भी उसका ही अनुकरण किया जाता है।

मिस्टर जॉर्ज थॉमस आयरलैंड (Ireland) देश के टिप्पेररी (Tipperary) स्थान का निवासी था। वह अंगरेजों के एक जंगी जहाज (Man of war) में मल्लाह होकर भारत में आया था। पुनः अपने जहाज को छोड़कर करनाटक में मारा मारा फिरा और थोड़े वर्षों तक उसने मदरास के दक्षिण में पोलीगारों की सेवा कर ली। तदनन्तर उत्तरीय भारत को चल दिया और सन् १७८७ ई० में दिल्ली में पहुँचा; और वहाँ वह वेगम की सेना में अफसर के पद पर नियत हो गया।

अनन्तर उसने किस प्रकार गोकुलगढ़ में अपनी अतुलित वीरता का परिचय देकर शाह आलम बादशाह के प्राण बचाए, कैसे वेगम पर अपना पूर्ण प्रभाव डाला और उससे अपना विवाह करना चाहा, परन्तु इसमें उसे सफलता के बदले उलटी यह निराशा हुई कि उसका प्रतिरोधी फराँसीस अफसर ली वैश्यू वेगम का पति बन गया, जिससे वह वेगम की सेवा छोड़ने पर विवश हुआ और पहले उसने अँगरेजी छावनी अनूपशहर में नौकरो की और पुनः मराठे सरदार अण्णू खंडेराव की सेवा में नियत होकर उसने अपनी स्वतंत्र पृथक् जागीर प्राप्त की, किस भाँति ली वैश्यू के बहकाने पर वेगम ने उसके स्वामी और उसके साथ छेड़ छाड़ की जिसका उसने यथार्थ उत्तर दिया, और अंत में उसने कैसा विकट प्रपंच रचा कि जिससे वेगम का सब खेल बिगड़ गया, क्योंकि उसके पति के प्राण नष्ट हुए और वह आप बंदी हो गई जिससे लाचार होकर पुनः उसकी शरण ली और उसने भी अपनी पूर्व स्वामिनी की रक्षा और सहायता करके फिर उसे सरधने की गद्दी पर बैठा दिया, जिसके उपलक्ष्य में वेगम ने अपनी निज मुख्य गोरी ख्वास मेरिया नामक उसे व्याह दी और उसके साथ बहुत सा द्रव्य दहेज में दिया, यह सब सविस्तर कथा यथास्थान और यथा अवसर वेगम के जीवन चरित्र में पहले आ चुकी है।

थॉमस ने अपना बल बहुत बढ़ा लिया था और वह बड़ा

प्रभावशाली हो गया था। वह पश्चिम और उत्तर पश्चिम की ओर लड़ाई लड़ता रहा। घरेलू आपदा में फँसने और समीप की जातियों के साथ लड़ने भगने से ही उसको अवकाश नहीं मिलता था। बड़ी कठिनाई से उसने अपने कपटी स्वामी से मेल किया था और मेवात में जैसे तैसे शान्ति हुई थी कि उसको यह दुःखदायी संवाद मिला कि अण्णू खंडेराव ने नदी में डूबकर आत्मघात कर लिया और उसका पुत्र और उत्तराधिकारी वामनराव अपने पिता के समान टेढ़ी चाल चल रहा है। दुआव के ऊपरी भाग में एक छोटा सा संग्राम करने के अतिरिक्त, जिसमें उसने केवल किलेबन्द कस्बे शामली और लुखनाऊटी को जीता, थॉमस ने और कोई युद्ध नहीं किया, जब तक कि वह वामनराव से पूर्ण रूप से अलग नहीं हो गया।

थॉमस अब बिल्कुल स्वतंत्र और स्वाधीन हो गया था। कौन जानता था कि आयरलैंड देश का मल्लाह भारत में आकर एक बड़े राज्य का स्वामी बन बैठेगा। हरियाना प्रान्त में, जो दिल्ली और सिन्ध के बड़े रेगिस्तान के मध्य में स्थित है, हाँसी नगर को थॉमस ने पहले अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसने किलों को, जो टूटे फूटे पड़े हुए थे, फिर नए सिरे से बनवाया और लोगों को बुला बुलाकर अपनी भूमि में बसाया। उसके यहाँ ऐसा आराम और चैन दिखाई दिया कि निकटवर्ती इलाके की प्रजा, जो उजड़ू भूटीना जाति के मनुष्यों

और पंजाब के जाटों द्वारा लुटती रहती थी, तुरंत इसके आश्रय में चली आई। तदनंतर थॉमस ने क्या क्या किया और वह आगे को और क्या क्या करना चाहता था, यह उसके अपने इन शब्दों से विदित होगा—

“मैंने अपनी एकसाल स्थापित की जिसमें मैंने रूपए गढ़वाए और उन्हें अपनी सेना और देश में प्रचलित किया। इसके अतिरिक्त मैंने अपनी तापें ढलवाई और बन्दूकों व बारूद बनवाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि मेरा राज्य इतना फैल गया कि जिसकी सीमा सिक्खों की भूमि से जा भिड़ी। मैं चाहता था कि ऐसी सामर्थ्य और शक्ति प्राप्त करूँ कि अजुकून अवसर मिलने पर पंजाब को विजय करने का प्रयत्न करूँ। मेरे मन में यह लालसा लग रही थी कि मुझे ऐसा गौरव प्राप्त हो जाय कि अटक नदी के तट पर पहुँचकर वहाँ ब्रिटिश झंडा गाड़ दूँ।”

थामस को अपनी पुरानी जायदाद से, जो मराठों की सेवा में उसे प्राप्त हुई थी और अब तक उसके अधिकार में बनी हुई थी, डेढ़ लाख रूपए के लगभग आय होती थी। पोल्टे से चौदह परगने उसके हाथ लगे, जिनमें न्यूनाधिक नौ सौ पचास गाँव सम्मिलित थे। इनसे प्रायः तीन लाख रूपए राजस्व के प्राप्त होते थे। यह हलका कर भी थॉमस ने किसानों के इच्छानुसार नियत किया था।

अपने राज्य की जब इस प्रकार व्यवस्था कर चुका, तब

थॉमस ने अपने पूर्व संरक्षक अम्बू खंडेराव के पुत्र वामनराव का साथ महाराज जयपुर पर आक्रमण करने में दिया । इस लड़ाई में उसके प्राण ही प्रायः जा चुके थे । परन्तु तो भी उसने अपना सहकारी जान मौरिस (John Morris) और अपने कई सौ चोटी के सिपाही गँवाकर अपनी जान बचा ली । उपरान्त थॉमस ने सिंधिया के प्रिय जनरल अम्बाजी से मित्रता जोड़ ली, जो उदयपुर राज्य में लुकवा दादा से पुनः लड़ाई करने की चेष्टा कर रहा था ।

इस युद्ध में लुकवा दादा की सर्वथा विजय हुई जिसके अधिकार में राजपूताने का बहुत सा भाग आ गया ।

थॉमस इस संग्राम में क्या सम्मिलित हुआ कि उसके सिपाही ही उससे फिर गए । परन्तु उसने उनके नेताओं को पकड़कर तोप से उड़ा दिया । इससे शान्ति स्थापित हो गई ।

सन् १८०० में मल्लाह राजा थॉमस ने पुनः उत्तर और उत्तर-पच्छिम को चढ़ाइयाँ करके कीर्ति प्राप्त की । उस समय उसने अपने मन में यह संकल्प किया था कि समस्त पंजाब को विजय करके इंग्लैंड के सम्राट् तीसरे जॉर्ज को अर्पण कर दूँगा । परन्तु अँगरेजों के शत्रुओं ने उसके मार्ग में नाना प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर दीं ।

जब फ्राँसीस जनरल पेरन (Perron) का डंका भारत में जोर शोर से बज रहा था और सतलज से लेकर नर्मदा तक उसी की तूती बोल रही थी, तब उसने अपने सिक्खों

तथा मराठे सरदारों और उन युरोपियन अफसरों से प्रत्यक्ष में बिगाड़ न करके जो उसकी डोर में न थे, इस प्रकार उन पर दबाव डालना चाहा कि उसने जॉर्ज थॉमस को दिल्ली बुलाया और उससे कहा कि सिंधिया की सेवा में आ जाओ, जिसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह था कि तुम पैरन को अपना स्वामी बना लो। परन्तु अंगरेजों और फराँसीसों में परस्पर वैर और द्वेष था। अतः थॉमस ने पैरन के इस मंतव्य को अपनी जाति के अपमान का कारण समझा और उसे दृष्टापूर्वक अस्वीकार किया। इस पर फराँसीसों और मराठों की बलिष्ठ सम्मिलित सेना ने लुइस बोर्क्विन (Louis Bourquin) की अध्यक्षता में थॉमस के इलाके पर चढ़ाई की। थॉमस भली भाँति सोच विचार कर काम नहीं किया करता था; बल्कि जो उसे सूझ गई, उसके अनुसार ही कार्य करता था। ऐसा ही उसने अब किया। शत्रु को इधर उधर से हटाकर यह उस सेना पर दृष्ट पड़ा जो उसके दुर्ग जॉर्जगढ़ को घेरे हुए थी और उन्हें क्षति पहुँचाकर वहाँ से उनको भगा दिया और आप उस स्थान में जमकर बैठ गया। सुदृढ़ रोक थाम खड़ी करके उसने आगे की रक्षा कर ली और पुनः होलकर की ओर से अपने पास कुमक आने की प्रतीक्षा, अथवा अनुकूल अवसर प्राप्त होने पर अपने वैरी पर दूसरी चोट मारने का विचार करने लगा।

किन्तु उन घटनाओं ने जो पीछे घटित हुईं, यह सिद्ध

कर दिया कि उसकी यह तजवीज ठीक न थी; क्योंकि होलकर की ओर से कोई कुमक उसके सहायतार्थ नहीं आई, प्रत्युत् फराँसीसों को मदद मिल गई; इसलिये उन्होंने इसकी छावनी को चहुँ ओर से घेरकर इसका निकास रोक दिया। इसके अतिरिक्त कोढ़ में खाज यह और उत्पन्न हुई कि वैरी ने थॉमस के सैनिकों के जेब घूँस से भर दिए। इस कारण वे अपने स्वामी को छोड़कर भागने लगे। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि थॉमस के पास अपने प्राणों की रक्षा के लिये इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा कि वह भी पीठ दिखाकर भाग जाय। तारीख १० नवम्बर सन् १८०१ को प्रातः काल नौ बजे के लगभग वह एक उत्तम ईरानी घोड़े पर चढ़कर और अपनी अर्दली के सवारों को साथ लेकर अचानक घर से बाहर निकल पड़ा और चकरदार मार्ग से दौड़ लगाकर सौ मील से ऊपर चल कर तीन दिन से भी कम समय में हाँसी पहुँच गया। परन्तु उसके मन्द भाग्य के कारण यहाँ भी उसकी रक्षा न हो सकी; क्योंकि शत्रु बुरी तरह से उसके पीछे पड़ा हुआ था। उसने हाँसी में भी पहुँचकर थॉमस की राजधानी को अपनी सेना से घेर उसी भाँति हँसली में ले लिया जैसे कि पहले उन्होंने उसकी छावनी को अपने वश में कर लिया था। थॉमस ने अपने ऐसे गिने हुए मुट्ठी भर स्वामी-भक्त सिपाहियों से मुकाबला करके अपने वैरी लूइस बोरेक्विन को चकित और

विस्मित कर दिया, जो आशा अथवा भय के वश होकर कदापि अपने स्वामी के पास से टाले नहीं टल सकते थे। इतने पर भी थॉमस अपने प्रिय सैनिकों को दुश्मन की बड़ी फौज से कब तक लड़ा सकता था ! उसके अच्छे दिन व्यतीत हो चुके थे, उसके भाग्य ने उसे जवाब दे दिया था; अतएव उसने हारकर अन्य अफसरों के द्वारा बोरक्विन से यह वचन ले लिया कि अँगरेजी इलाके में चले जाने की उसे आज्ञा दे दी जाय; और वह अपने राज्य के नष्ट होने पर और अधिकार से च्युत होने पर तारीख १ जनवरी सन् १८०२ को चल दिया।

समय की बलिहारी है कि आज थॉमस ऐसा लुट गया कि उसके पास न राज्य ही रहा, न सेना ही रही और न धन ही रहा। थोड़े दिन ही हुए कि जब एक विशाल राज्य पर उसका आधिपत्य था और वह रणक्षेत्र में छः हजार पलटन, दो हजार घुड़-सवार सेना और पचास तोपें खड़ी कर सकता था। उसका जीवन निरन्तर पटियाला और भींद के सिक्खों, जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के राजपूतों तथा मराठों से लड़ने में बीता था।

अँगरेजों की वर्तमान नाजुक मिजाजी और भोग विलास की प्रकृति की तुलना पुराने समय के युरोपियनों से, जिनमें से एक थॉमस भी था, जिनका जीवन नित्य नई आपत्तियों में बड़ी कठिनाइयों और कष्टों से व्यतीत हुआ करता था, अँगरेजी ग्रंथ मुगल एम्पायर के ग्रंथकार मिस्टर हेनरी जार्ज

कीनी साहब ने इन खरे और चुभते हुए वाक्यों में की है—

“आज कल के पतित युरोपियों को जिन्होंने अपनी ऐसी मनमानी दिनचर्या (Programme) बना ली है कि जिससे सदैव वे छुट्टियों पर जाकर शीतल पहाड़ों के जलवायु का सेवन करें, समय समय पर फरलो लेकर इंग्लैंड चले जायँ, और जब वे भारत में रहें तो अपने निवासस्थान को विदेशों से मँगाई हुई भोग-विलास की सामग्री से ऐसा सुसज्जित करें कि जिसमें फिर उन्हें किसी भाँति लेशमात्र गरमी की भी सम्भावना ही न रहे, उनको प्रायः यह बात कपोतकम्पित और मिथ्या प्रतीत होगी कि कोई ऐसा जमाना भी हुआ है कि जब हमारे पूर्वजों को देश-निकाह में अपना इतना दीर्घ जीवन व्यतीत करना पड़ता था कि जिसमें लगातार वर्षों पर्यन्त उनको अँगरेजी भाषा का एक शब्द तक नहीं सुनाई देता था, जहाँ मोटे मोटे गुदड़ी के परदों और साधारण लकड़ी के किवाड़ों के भीतर रहना ही उनको बहुत बड़े भोग-विलास के भवन का सा जान पड़ता था। यदि उनको कभी बाजारमें बिकती हुई भड़ी मदिरा के कुछ घूँट मिल गयें, तो उसके नशे में जो समय उनका कटता था, वह उनको अति प्रिय और आराम चैन का प्रतीत होता था। परन्तु ऐसे अवसर भी उनको भूलें भटके और बड़ी दुर्लभता से प्राप्त होते थे; क्योंकि उनको तो रात दिन लड़ाइयों के विचार घेरे हुए रहते थे, जिनमें सफलता पाना ही सर्वथा निज योग्यता का परिचय देना समझा जाता

था । थामस के जीवन का भी ऐसा ही मुख्य पारतोषिक था ।”

फिर हम भारतवासियों के पतन का क्या कहना है जिनमें न श्रल है, न पुरुषार्थ है, न साहस है । हम सब गुणों से रहित और सर्वथा पतित हो गए हैं । आज भगवान रामचन्द्र, कृष्ण-चंद्र, भीष्म पितामह आदि की संतानों की क्षीण-हीन दशा देखकर उस पर जितना रोया जाय, जितना उस पर खेद किया जाय, वह थोड़ा ही है ।

अंगरेजी इलाके में पहुँचकर थामस को अपनी जन्मभूमि की याद आई और उसने आयरलैंड जाने का संकल्प किया । स्वदेश प्रयाण करने से पूर्व वह सरथने में समरु की वेगम के पास गया, जहाँ उसने अपनी स्त्री और तीनों पुत्रों जॉन, जेम्स और जॉर्ज (John, James and George) और पुत्री जुलियाना (Juliana) को वेगम के संरक्षण में छोड़ा; और आप उसने कलकत्ते को गमन किया । किंतु मौत ने उसे मार्ग में ही आ घेरा और २२ अप्रैल सन् १८०२ को ४६ वर्ष की अवस्था में बहरामपुर में उसके प्राण छूट गए ।

थामस की मृत्यु के पीछे वेगम उसके परिवार का उदारता-पूर्वक पालन पोषण करने लगी । लड़की और लड़कों के विवाह भी हो गए । जॉन संतानहीन ही रहा और मर गया । जेम्स ने एक पुत्र जार्ज नामक छोड़ा जो दोनों आँखों से अंधा होकर मरा, जिसकी पुत्री जॉना (Joanna) थी । थामस के तीसरे पुत्र जॉर्ज के केवल एक बेटी थी जो उस पीढ़ी से मृत्यु

को प्राप्त हुई जो उसे दिल्ली से सन् १८५७ ई० के विद्रोह में निकल भागने से हुई थी। उसका विवाह हो गया था और उसे बच्चे भी पैदा हुए थे; परन्तु वे उससे पहले ही मर गए थे। अब रही थॉमस की पुत्री जुलियाना। उसके एक पुत्र जोज़फ़ (Joseph) नाम का हुआ जो आगरे में निःसंतान मर गया। जॉर्ज थॉमस के वंश में अब उसको परपोती जौना जीवन है। उसका विवाह मिस्टर एलेक्जेंडर मार्टिन पेनशन प्राप्त क्लर्क से हुआ है और वह दो पुत्रों की माता है।

भारतवासी अधिकारीगण

वेगम के जीवन चरित्र में अब तक अधिकतर उसके युरोपियन अफसरों के नामों और कार्यों का वर्णन हुआ है, जो उसके गौरव और महत्त्व का अवश्य पूर्णतया प्रकाश करता है; क्योंकि भारतीय इतिहास के उस युग में, जब कि अराजकता और हलचल तथा लूट मार चारों ओर हो रही थी, उसने अपनी ऐसी अति प्रशंसनीय और उत्कृष्ट योग्यता के अनेक गुण प्रकट किए जिनसे विदेशीय गोरी जातियों के मनुष्यों ने, जिन्होंने भ्रम में आकर अपने मन में यह मिथ्या कल्पना कर रखी है कि हमारा जीवन तो अन्य महाद्वीपों के निवासियों पर शासन और अधिकार करने के ही लिये है, उसकी सेवा में रहना और उसकी आज्ञा मानना स्वीकार किया। परन्तु इसका अर्थ किसी प्रकार यह नहीं है कि भारत-

वासियों के लिये बेगम के शासन में राज-सेवा में प्रविष्ट होने के लिये कुछ रोक टोक थी। उसने हिन्दू मुसलमानों को भी अपने अधिकार में बड़े बड़े उच्च पदों पर नियुक्त किया था।

बेगम ने सन् १७७८ से लेकर सन् १८३६ ई० पर्यंत ५८ वर्ष तक राज्य किया। इस दीर्घ काल के भीतर उसकी सेना और जागीर में समय समय पर अनेक परिवर्तन हुए। इस बीच में विविध हिन्दुस्तानी कर्मचारी विविध समयों पर विविध छोटे बड़े पदों पर नियुक्त और पृथक् होते रहे। इसलिये इस प्रकरण में सविस्तर उनके नामों और कार्यों का परिचय नहीं दिया जा सकता; और न उन सब लोगों का कोई ऐसा विस्तृत और व्योरेवार लेख या तालिका ही विद्यमान है; किंतु इसमें किञ्चित् मात्र संदेह करने का स्थान नहीं है कि बेगम को अपने स्वदेशी भाई भी ऐसे ही प्यारे थे जैसे कि युरोपियन अफसर, जिनके साथ अनेक कारणों से वह बहुत हिल मिल गई थी।

पीछे गिरजे के वृत्तान्त में बतलाया जा चुका है कि स्मारक भवन में दीवान रायसिंह और सरदार इनायतउल्लाह, बेगम की घुड़सवार सेना के अध्यक्ष, और उसका फर्स्ट एडी कांग इन् वेटिंग (Commandant of Cavalry and first aid-de-Camp in waiting) की मूर्तियाँ रक्खी हैं। एक अबुलहसीर बेग हैं जिनको २०००) वसीयतनामे में देना लिखा है।

लाला चिरंजीलाल नायब रजिस्ट्रार कानूनगो तहसील

बुढ़ाना जिला मुजफ्फरनगर ने अपने पत्र में वेगम के निम्न लिखित अफसरों का वर्णन किया है ।

राव हरकरणसिंह प्रधान मंत्री थे जिनका वेतन एक हजार रुपए मासिक था । उनकी न जाने किस कारण से मौज़े बामनोली तहसील बागपत जिला मेरठ में हत्या हो गई । उनके स्थान में उनके पुत्र राव दीवानसिंह मंत्री बनाए गए । राव जौकासिंह उपमंत्री थे । इनके अतिरिक्त लाला गुलजारीमल दीवान, मुन्शी कान्हसिंह मीर मुन्शी और वंसीसिंह जमादार थे । वेगम के दस्तखती एक फारसी परवाने से, जो कोतलिप साहिब हाकिम बुढ़ाने के नाम तारीख ६ सफर सन् १२१४ हिजरी को लिखा गया था, प्रकाशित होता है कि चौधरी रामसहाय को उसके द्वारा गिरदावर कानूनगो नियुक्त किया गया था ।

इतिहास के पता चलता है कि राजा मन्नूलाल और जवाहरमल और मोहम्मद रहमत खाँ वेगम की सरकार के वकील थे । कसबा टप्पल के पुराने मनुष्यों के कथन से ऐसा विदित हुआ है कि वहाँ के कानूगो कुल के लाला गिरिधारी लाल वेगम के राज्य के देश दीवान हुए थे । इसी वंश के द्वितीय पुरुष लाला बख्शीराम॥ वेगम के शासनकाल में

* यह सज़्जन इस पुस्तक के लेखक के पितामह थे, जिनके हाथ का लिखा हुआ एक फारसी जमाखर्च महसूल साहर चबूतरा कस्बा पहासऊ अंतिम अशरा मास (बोअर उलसानी सन् १२४८ हिजरी वा सन् १८२९ ईस्वी का अब तक मौजूद है जिसकी ६६ वर्ष न्ययतीत हुए । इसमें रुपए आना पाई के स्थान पर रूपे, आने, टके

तोन कसबों अर्थात्, जेवर, टप्पल और पहासऊ के मशरफ़ हुए। मशरफ़ के अधिकार में पुलिस विभाग और महकमा सायर अथवा शुल्क विभाग का प्रबन्ध था।

फुटकर बातें

अब कुछ ऐसी लोकोक्तियों का वर्णन करके, जिनका आधार विशेषतः बेगम के समय से अब तक सुनने सुनाने पर चला आता है, इस पुस्तक की समाप्ति को जातो है। ये बातें साधारण हैं; परन्तु इनसे भी बेगम के चित्त की वृत्ति

और दाम है। मेरी इच्छा हुई कि उसकी प्रतिलिपि इस पुस्तक में भी उद्धृत करूँ; किन्तु इस कारण से कि यह तान तालिकाओं में से एक है, अतएव इसके जोड़ों का ठीक मिलान नहीं होता; ऐसे अधूरे हिसाब के प्रकाशित करने से क्या लाभ हो सकता है, वह यहाँ नहीं दिया। परन्तु इससे यह अवश्य परिणाम निकलता है कि इस देश में पहले वस्तुएँ इस बहुतायत से होती थी कि दाम अर्थात् ४ कौड़ी का जैसा छोटा सिका भी प्रचलित था। दूर क्यों जायँ, युरोप के महायुद्ध सन् १९१४-१८ से पूर्व भी यहाँ कौड़ियों से लेन देन होता था। गरीब लोग घेले छदाम बल्कि अद्धी से भी साग पात, नोन तेन आदि नित्य के आवश्यक पदार्थ मोल ले सकते थे। किन्तु अब तो कौड़ियों का व्यवहार ही बिलकुल जाता रहा। उनका पूर्ण रूप से अभाव ही हो गया। थोड़े वर्षों में इस विचित्र और बिस्मयजनक परिवर्तन का क्या ठिकाना है कि पैसा भी कौड़ियों के मोल का न रहे। क्या अब भारतवासी घनाढ्य हो गए? कदापि नहीं, वरन् इस से उल्टा यह सिद्ध होता है कि उनके देश की पैदावार की इतनी अधिकता और प्रचुरता से निष्कापी होती है कि जित भावों पर यहाँ की सामग्री विदेश में बिकती है, लगभग उन्हीं पर वह इस देश में भी बिकती है जहाँ कि वह पैदा होती है।

का सोचने और समझनेवाले मनुष्य को भली-भाँति पता लग सकता है।

(१) लाला भरनलाल चौकड़ात कस्बा टप्पल जिला झलीगढ़ का, जिनके पूर्व पुरुषों के यहाँ बेगम का मोदीगाना था, कथन है कि एक बार बेगम का एक चपरासी उनके बुजुर्ग लाला इन्दरमन चौकड़ात के पास आया और व्यर्थ बकवाद करने लगा। उन्होंने उस चपरासी से कहा कि तेरा तो हमें कुछ डर नहीं है; परन्तु जो सरकारी चपरास तू बाँधे है, उसका सम्मान और भय हमें बहुत है, जिसके कारण ये तेरी अनुचित बातें हम सुन रहे और सह रहे हैं। इस पर उस मूर्ख चपरासी ने आग बबूला होकर सरकारी चपरास को अपनी कमर से खोलकर फेंक दिया और बिगड़ कर चौकड़ात से बोला कि अब तुम मेरा क्या कर सकते हो ! इस पर उन्होंने उसे खूब ठोका। वह पुकारता हुआ बेगम के हज़ूर में गया और वहाँ जाकर उसने बहुत धावेला मचाया। बेगम ने चौकड़ात को बुलाया और इस घटना का समाचार पूछा। उक्त चौकड़ात ने जो कुछ बीती थी, सब कथा सुना दी और कहा कि अम्मा जान ! जब इसकी दृष्टि में सरकारी चपरास की प्रतिष्ठा न रही, तो फिर हमने भी इस शठ को अच्छी तरह पीटकर सरकारी वर्दी और चपरास का सम्मान करने के निमित्त इसे यथा योग्य शिक्षा दी।

बेगम ने चौकड़ात के व्यवहार को पसन्द किया और चपरासी को उसके अपराध का दंड दिया ।

(२) बेगम का कोई सेवक दौलत नाम का था । उससे ज्ञाने क्या अपराध हो गया जिसके कारण बेगम ने उसे अपनी सेवा से पृथक् कर दिया । दौलत एक चतुर मनुष्य था । वह प्रातःकाल बेगम के समक्ष उपस्थित हुआ और पूछने लगा—“हज़ूर ! दौलत जाय या रहे ?” यह विलक्षण प्रश्न सुनकर बेगम को यही उत्तर देना पड़ा कि दौलत तो अवश्य रहे ॐ ।

(३) “समरू संतति” शीर्षक के पढ़ने से विदित होता है कि समरू की अनेक सन्तानें बाल्यावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुईं । इन कष्टों से बेगम का हृदय विदीर्ण हो गया था । वह वीर रमणी, जो युद्ध में तोप बंदूकों को मार को तनिक भी परवाह नहीं करती थी, वही इन असह्य दुःखों से कातर और अधीर हो गई थी ॐ ।

बेगम समरू को अपने ग्रहण किए हुए रोमन कैथलिक ईसाई धर्म पर जो अपूर्व श्रद्धा थी, उसका वर्णन हमारे पाठकों

* ये दोनों बातें वर्तमान लेखक ने अपनी बाल्यावस्था में टप्पल में सुनी थीं । पहली के विषय में तो स्मरण नहीं कि किससे सुनीं, किंतु दूसरी के संबंध में अच्छी तरह से याद है कि वह इलाहाबाद पतंगबाज से सुनी थी, जिसे हजारों शेर प्रत्येक ज़िले के जबानी याद थे और जिसने बेगम का समय भी देखा था ।

ने पीछे “धार्मिक भावना” नामक अध्याय में पढ़ा ही होगा । परन्तु यह भी निश्चय है कि भारत में अन्य धर्म के अनुयायी जो मनुष्य थे, उनसे भी उसको किंचित् मात्र द्वेष न था; वरन् उनके साथ सहानुभूति और प्रेम प्रकट करने और उनके धर्म में भी चाहे किसी कारण उसके श्रद्धा रखने का परिचय मिलता है । इन पंक्तियों के लेखक को हाल में ही एक प्रमाण मिला है जिसको वह इस कारण से कि आज कल नास्तिकता का बड़ा जोर है और एक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायी के रक्त का प्यासा बन रहा है, वह भूटा नहीं समझ सकता ।

मिती ज्येष्ठ कृ० १३ संवत् १९८२ तदनुसार तारीख २१ मई सन् १९२५ को जब इस पुस्तक के अभागे लेखक को अपनी इकलौती संतान अर्थात् प्रिय पुत्र वेदप्रकाश के फूल गंगाजी में प्रवाह करने के लिये हरिद्वार जाना पड़ा, तो उसे अपने कुल के तीर्थ-पुरोहित बडुलदास गंगाशरण के स्थान पर ठहरने का अवसर हुआ । उस समय उनकी बही से यह प्रतीत हुआ कि उनके पूर्वज गंगा पुरोहित मानकचंद के समय में तीन बार वेगम समरू गंगा स्नान करने आई थी और उनके यहाँ ठहरी थी; अर्थात्—

(१) प्रथम बार संवत् १८७६ (सन् १८२२) में, जब उसके साथ चौधरी हरसुख और गुलाब टप्पलवाले थे ।

(२४८)

(२) द्वितीय बार संवत् १८८७ (सन् १८३०) में, जब उसके साथ चौधरी हीरासिंह टण्णलवाला राजपूत था ।

(३) तृतीय बार संवत् १८९० (सन् १८३३) में, जब उसके साथ चौधरी साँवतसिंह जमींदार था ।

मनोरंजन पुस्तकमाला

अपने ढंग की यह एक ही पुस्तकमाला प्रकाशित हुई है जिसमें नाटक, उपन्यास, काव्य, विज्ञान, इतिहास, जीवन-चरित आदि सभी विषयों की पुस्तकें हैं। यों तो हिंदी में नित्य ही अनेक ग्रंथ-मालाएँ और पुस्तक-मालाएँ निकल रही हैं, पर मनोरंजन पुस्तकमाला का ढंग सब से न्यारा है। एक ही आकार प्रकार की और एक ही मूल्य में इस पुस्तकमाला की सब पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। इसकी अनेक पुस्तकें कोर्स और प्राइज बुक में रक्खी गई हैं; और नित्य प्रति इनकी माँग बढ़ती जा रही है। कई पुस्तकों के दो दो, तीन तीन संस्करण हो गए हैं। इसकी सभी पुस्तकें योग्य विद्वानों द्वारा लिखवाई जाती हैं। पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या २५०-३०० और कभी कभी इससे भी अधिक होती है। ऊपर से बढ़िया जिल्द भी बँधी होती है। आवश्यकतानुसार चित्र भी दिए जाते हैं। इन पुस्तकों में से प्रत्येक का मूल्य १।) है; पर स्थायी ग्राहकों से ॥) लिया जाता है जो पुस्तकों की उपयोगिता और पृष्ठ संख्या आदि देखते हुए बहुत ही कम है। आशा है, हिंदी-प्रेमी इस पुस्तकमाला को अवश्य अपनावेंगे और स्थायी ग्राहकों में नाम लिखावेंगे। अबतक इसमें भिन्न भिन्न विषयों पर ४४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी सूची इस प्रकार है—

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
- (२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्मा ।
- (३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक बेणीप्रसाद ।
- (४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।
- (७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।
- (८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।
- (९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दुबे ।
- (१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस०सी० ।
- (११) लालचीन—लेखक व्रजनंदनसहाय ।
- (१२) कबीर-वचनावली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
- (१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए० ।
- (१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।
- (१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा ।
- (१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्मा ।
- (१७) वीरमणि—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेव-
बिहारी मिश्र बी० ए० ।
- (१८) नेपोलिशन बानापाई—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।
- (१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।
- (२०, २१) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए० ।
- (२२) महर्षि सुकरात—लेखक बेणीप्रसाद ।
- (२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस०सी० ।
- (२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और पं० शुक-
देव बिहारी मिश्र बी० ए० ।
- (२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता पुराहित हरिनारायण शर्मा बी० ए० ।

- (२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।
 (२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए०जी० ।
 (२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।
 (३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए० ।
 (३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक बेणीप्रसाद ।
 (३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
 (३५) अहिल्याबाई -- लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी ।
 (३६) रामचंद्रिका—संकलन कर्त्ता लाला भगवानदीन ।
 (३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।
 (३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दर-
 दास बी० ए० ।
 (४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र,
 शुक्रदेवविहारी मिश्र ।
 (४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्मा ।
 (४२) मंक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास ।
 (४३) शिशु पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्मा ।
 (४४) शाही दृश्य—लेखक बा० दुर्गाप्रसाद गुर्ग ।
 (४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।
 (४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १।) है :
 पर स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें ॥१) में दी जाती हैं ।

उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाइए ।

प्रकाशन मंत्री,
 नागरीप्रचारिणी सभा,
 बनारस सिटी ।

सूचना

मनोरंजन पुस्तकमाला की मूल्य-वृद्धि

जिस समय सभा ने मनोरंजन पुस्तकमाला प्रकाशित करना आरम्भ किया था, उस समय प्रतिज्ञा की थी कि इसकी सब पुस्तकें २०० पृष्ठों की होंगी । पर, जैसा कि इसके ग्राहकों और साधारण पाठकों को भली भाँति विदित है, इस पुस्तकमाला की अधिकांश पुस्तकें प्रायः २५० पृष्ठों की और बहुत सी ३०० अथवा इससे भी अधिक पृष्ठों की हुई हैं । यही कारण है कि सभा को १२ वर्षों तक इस पुस्तकमाला का संचालन करने पर भी कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ । भविष्य में भी सभा इस माला से कोई लाभ तो नहीं उठाना चाहती, पर वह इस माला में अनेक सुधार करना चाहती है । सभा का विचार है कि भविष्य में जहाँ तक हो सके, इस माला में प्रायः २५० या इससे अधिक पृष्ठों की पुस्तकें ही निकला करें और इसकी जिल्द आदि में भी सुधार हो । अतः सभा ने निश्चय किया है कि इस माला की अब तक की प्रकाशित सभी पुस्तकों का मूल्य १) से बढ़ाकर १।) कर दिया जाय । पर यह वृद्धि केवल फुटकर बिक्री में होगी । माला के स्थायी ग्राहकों से इस माला की सब पुस्तकों का मूल्य अभी कम से कम ५० वीं संख्या तक ॥) ही लिया जायगा ।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीपचारिणी सभा
काशी ।

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला

शाहपुरा के श्रीमान् महाराज कुमार उम्मेदसिंह जी का स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती महाराज कुंवराणी श्री सूर्यकुमारी के स्मारक में यह पुस्तकमाला निकाली गई है। हिंदी में अपने ढंग की एक ही पुस्तकमाला है। इस माला की सभी पुस्तकें बहुत बढ़िया मोटे पेंटीक कागज पर बहुत सुन्दर अक्षरों में छपती हैं और ऊपर बहुत बढ़िया रेशमी सुनहरी जिल्द रहती है। पुस्तकमाला की सभी पुस्तकें बहुत ही उत्तम और उच्च कोटि की होती हैं और प्रतिष्ठित तथा सुयोग्य लेखकों से लिखाई जाती हैं। यह पुस्तकमाला विशेष रूप से हिंदी का प्रचार करने तथा उसके भांडार को उत्तमोत्तम ग्रंथ-रत्नों से भरने के उद्देश्य और विचार से निकाली गई है; और पुस्तकों का अधिक से अधिक प्रचार करने के उद्देश्य से दाता महाशय ने यह नियम कर दिया है कि किसी पुस्तक का मूल्य उसकी लागत के दूने से अधिक न रक्खा जाय; इसी कारण इस माला की सभी पुस्तकें अपेक्षाकृत बहुत अधिक सस्ती भी होती हैं। हिंदी के प्रेमियों, सहायकों और सच्चे शुभचिंतकों को इस माला के ग्राहकों में नाम लिखा लेना चाहिए।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी।

जायसी ग्रंथावली

सम्पादक—श्रीयुक्त पं० रामचंद्र शुक्ल

कविवर मलिक मुहम्मद जायसी का लिखा हुआ “पद्मावत” हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है। ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य और भावों की गंभीरता के विचार से यह काव्य बहुत ही उच्च कोटि का है। पर एक तो इसकी भाषा पुरानी अवधी; दूसरे भाषा गंभीर; और तीसरे आजकल बाजार में इसका कोई शुद्ध और सुन्दर संस्करण नहीं मिलता था, इससे इसका पठन-पाठन अब तक बंद सा था। पर अब सभा ने इसका बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिससे यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। अंत में जायसी का अखरावट नामक काव्य भी दिया गया है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है।

प्रकाशन मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी ।

हिंदी शब्दसागर

संपादक—श्रीयुक्त बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०

इस प्रकार का सर्वांगपूर्ण कोश अभी तक किसी देशी भाषा में नहीं निकला है। इसमें सब प्रकार के शब्दों का संग्रह है। इसमें आपको दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत, कलाकौशल इत्यादि के पारिभाषिक शब्द पूर्ण और स्पष्ट व्याख्या के सहित मिलेंगे। और और कोशों के समान इसमें अर्थ के स्थान पर केवल पर्याय-माला नहीं दी गई है। प्रत्येक शब्द का क्या भाव है, यह अच्छी तरह समझाकर तब पर्याय रखे गए हैं। प्रत्येक शब्द के जितने अर्थ होते हैं, वे सब अलग मुहावरों और क्रिया प्रयोगों आदि के सहित मिलेंगे। जिन प्राचीन शब्दों के कारण पुराने कवियों के ग्रंथ-रत्न समझ में नहीं आते थे, उनके अर्थ भी इसमें मिलेंगे। इस बृहत्कोश के तैयार करने में भारत-सरकार और देशी राज्यों ने सहायता मिली है। प्रत्येक पुस्तकालय, विद्यालय और शिक्षा-प्रेमा के पास इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के विद्वानों ने भी इस कोश की बहुत अधिक प्रशंसा की है। अब तक इसके ३५ अंक छप चुके हैं। प्रत्येक अंक ९६ पृष्ठ का होता है और उसका मूल्य १) ३। पहले से लेकर तीसवें अंक तक ६, ६ अंक एक साथ सिले हुए मिलते हैं, अलग अलग नहीं मिलते।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा

काशी।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अब नागरीप्रचारिणी पत्रिका त्रैमासिक निकलती है और इसमें प्राचीन शोध संबंधी बहुत ही उत्तम, विचारपूर्ण तथा गवेषणात्मक मौलिक लेख रहते हैं। पुरातत्व के सुप्रसिद्ध विद्वान् राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा इसका सम्पादन करते हैं। ऐसी पत्रिका भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं में अभी तक नहीं निकली है। यदि भारतवर्षीय विद्वानों के गवेषणापूर्ण लेखों का, जिनसे भारतवर्ष के प्राचीन गौरव और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बातों का पता चलता है, आप देखना चाहें तो इस पत्रिका के ग्राहक हो जाइए। वार्षिक मूल्य १०); प्रति अंक का मूल्य २।।) है। परंतु जो लोग ३) वार्षिक चंदा देकर नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के सभासद हो जाते हैं, उन्हें यह पत्रिका बिना मूल्य मिलती है। इस रूप में यह पत्रिका संवत् १९७७ से प्रकाशित होने लगी है। पिछले किसी संवत् के चारों अंकों की जिल्द-बैधी प्रति का मूल्य ५) है।

हमारे पास स्टॉक में नागरीप्रचारिणी पत्रिका के पुराने संस्करण की कुछ फाइलें भी हैं। सभा के जो सभासद या हिंदी प्रेमी लेना चाहें, शीघ्र भंगा लें; क्योंकि बहुत थोड़ी कापियाँ रह गई हैं। मूल्य प्रति वर्ष की फाइल का १) है।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

